ओ३म् भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

Regd. No. D. 1631

अध्यात्म के स्रोत   महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि
दयानन्द
जीवन
विशेषांक

एक प्रति
६० पैसा

ओ३म्

साप्ताहिक-

श्रावणी-अंक

सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

INTERNATIONAL ARYAN LEAGUE
Maharishi Dayanand Bhawan, New Delhi-1

सम्पादकः—
रामगोपाल शालवाले, सभा मन्त्री

सह सम्पादकः
रघुनाथ प्रसाद पाठक

सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०६८
दयानन्दाब्द १४३
विक्रम सम्वत् २०२४
श्रावणी, रविवार
२० अगस्त १९६७
वर्ष २, अंक ३४

साप्ताहिक १ प्रति १५ पैसा
विदेश में १ पौंड
वार्षिक ७) रुपया

दूरभाष : २७४७७१

ईश्वर-प्रार्थना

असतो मा सद् गमय

मुझे असत्य से हटा कर सत्य की ओर चला।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

अन्धकार से हटा कर प्रकाश की ओर चला।

मृत्योर्मा अमृतं गमय।

मृत्यु से हटा कर अमृत की ओर ले चल।

वैदिक प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्।

यजुर्वेद २२। २२॥

हे प्रभो ! इस वृहद् राष्ट्र में तेजस्वी वेदवित् ब्राह्मण उत्पन्न हों। शस्त्रास्त्र विद्या में निपुण, दुष्टों का दमन करने वाले, महाबलवान, निर्भय और वीर क्षत्रिय उत्पन्न हों। दूध देने वाली गौएं, भार ले जाने वाले बैल, शीघ्र गामी घोड़े, व्यवहार कुशल स्त्रियां, शत्रुओं के विजे महारथी पुरुष उत्पन्न हों। यजमान का घर वीर पुत्रों से भरा हो, समय पर वर्षा हुआ करे, हमारे लिए उत्तम फलों को देने वाली औषधियां पकें और हमारा योग क्षेम हो।

महर्षि दयानन्द जीवन विशेषांक

जिस विशेषांक की पाठकों को इतने दिनों से प्रतीक्षा थी, वह विशेषांक अब श्रावणी के पुण्य पर्व पर हम अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं।

चातुर्मास्य में वेदों का तथा वैदिक वाङ्मय का स्वाध्याय करना प्राचीन आर्यों की परम्परा रही है। आजकल भी श्रावणी का पर्व ब्राह्मणों का पर्व माना जाता है। उसके पीछे मूल भावना स्वाध्याय और आर्ष ग्रन्थों के पारायण की ही रही है। जब ब्राह्मण लोग वेद और वेदांगों का अध्ययन ही अपने जीवन का मुख्य ध्येय माना करते थे, वह युग तो अब चला गया। किन्तु विद्वानों के प्रवचन और उनकी कथा-वार्ता के श्रवण आदि की परम्परा अभी तक कायम है। संन्यासी और महात्मा लोग चातुर्मास्य के निमित्त एक स्थान पर रहकर धार्मिक प्रवचनों से जनता को धार्मिक प्रवृत्तियो की ओर उन्मुख करते हैं. जनता भी सोत्साह उन प्रवचनों में भाग लेती है। पौराणिकों और जैनियों में चातुर्मास्य की परम्परा का अर्थ इस प्रकार ज्ञान यज्ञ का विस्तार ही है। आर्य समाजी भी श्रावणी के अवसर पर कम से कम एक सप्ताह तक वेदों की कथा अवश्य कराते हैं और इसीलिए यह सप्ताह आर्य-जगत् में वेद प्रचार सप्ताह का पर्यायवाची बन गया है।

वेदों वाला सन्त

इस अवसर पर अपने पाठकों को कुछ न कुछ विशेष स्वाध्यायोपयोगी सामग्री भेंट करने की परम्परा का सूत्रपात हमने किया है। ऋषि दयानन्द से बढ़कर वेदों का भक्त और कौन होगा ? 'वेदोद्धारक' और 'वेदों वाला सन्त' जैसे विरुद-विशेषण ऋषि दयानन्द के नाम के साथ अविच्छिन्न रूप से

जुड़ गए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखा जाए तो गत पांच सहस्र वर्षों में ऋषि दयानन्द से बढ़कर वेदाभिमानी, वेदों के यथार्थ स्वरूप का व्याख्याता, समस्त देश को नाना मत-मतान्तरों के जाल से छुड़ाकर और पारस्परिक विद्वेष को नष्ट करके धार्मिक दृष्टि से एकता के सूत्र में बांधने के वेद के महान् सामर्थ्य को उजागर करने वाला, एवं आर्य जाति के अस्तित्व को वेद के सुदृढ़ आधार पर स्थापित करके उसे आकल्पान्त स्थायी बनाने वाला और कौन हुआ है ? इसलिए ऋषि दयानन्द के जीवन का पारायण भी किसी आर्षग्रन्थ के पारायण से कम नहीं है।

प्रेरणा की स्रोतस्विनी

ऋषि दयानन्द की जीवनी क्या है--जैसे प्रेरणा की अक्षय स्रोतस्विनी है। जो लोग महापुरुषों को परमात्मा का अवतार समझकर अपने जीवन के निर्माण में स्वयं उन महापुरुषों के अथक परिश्रम और निजी कर्तृत्व को आंखों से ओझल कर देते हैं, हम उन लोगों में से नहीं हैं। पूर्वजन्म की सिद्धि, साधना तथा संस्कार एवं ईश्वरीय प्रेरणा से हम इन्कार नहीं करते, परन्तु अपने जीवन के निर्माण में सदा स्वयं सम्बद्ध मनुष्य का ही सबसे अधिक योग होता है। ऐसा न हो तो मनुष्य के रूप में जन्म लेने की और उसके स्वतन्त्र कर्तृत्व की कहीं संगति नहीं रहेगी। यह याद रखने की बात है कि मनुष्य-योनि पशुओं की योनि की तरह केवल भोग-योनि नहीं है, वह कर्म-योनि भी है। इसलिए कर्म के महत्व को मनुष्य के जीवन में कभी कम नहीं किया जा सकता।

आरोहण का इतिहास

हम समझते हैं कि ऋषि दयानन्द पर महापुरुषत्व किसी ने थोपा नहीं था, न ही केवल जन्म से या जन्मकालीन परि-

स्थितियों ने उन्हें महत्ता प्रदान की थी, प्रत्युत अपने परिश्रम से उन्होंने महत्ता अर्जित की थी, अपने जीवन का निर्माण किया था और इतने श्रम और इतनो तपस्या से ही वे महापुरुषों के शिरोमणि बन सके थे। उनकी जीवनी क्या है—जैसे सतत् प्रकाश पुंज की ओर अग्रसर एक ज्योतिर्मयी किरण है, जैसे निरन्तर साधना का इतिहास है, जैसे सत्य की खोज की अदम्य मूर्तिमान लालसा है। उनकी जीवनी क्या है—जैसे "असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय" इस वैदिक सूत्र का भाष्य है। आत्मिक विकास के एक शिखर से दूसरे, तीसरे, चौथे और फिर उच्चतम शिखर तक आरोहण की प्रक्रिया ही है उनका समग्र जीवन।

मानवता का आदर्श

मानव जीवन में शरीर, मन और बुद्धि का जो ऊंचे से ऊंचा मानदण्ड या आदर्श स्थापित किया जा सकता है, ऋषि दयानन्द उससे कभी घटकर नजर नहीं आते, हमेशा बढ़कर ही नजर आते हैं। उनके जैसा अविप्लुत नैष्ठिक ब्रह्मचर्य और तेजस्वी शरीर-सम्पदा और कहां दृष्टिगोचर होगी? उनके जैसा करुणा-शील, अपने विषदाताओं को भी बन्धन मुक्त करने वाला क्षमाशील, अपमान करने के लिए अपशब्दों के अलावा कीचड़ ईंट-पत्थर तथा अन्य अनेक प्रकार के निकृष्ट हथियार प्रयुक्त करने वालों के प्रति भी दयाशील और उदार मन वाला व्यक्ति और कहां मिलेगा? कहां मिलेगा बुद्धि-वैभव का ऐसा धनी कि विपक्षियों के तर्कजाल को ऐसे समेट कर रखदे जैसे मेघजल को सूर्य का भास्वर प्रकाश और विद्याभिमानी समस्त पण्डितमण्डली को एकाकी ही ऐसे खदेड़ दे जैसे मृग-मण्डली को बनराज सिंह? कहां मिलेगा ऐसा योगी? कहाँ मिलेगा ऐसा वेदों का मर्मज्ञ?

पाठक वृन्द ! महापुरुषों की सुदीर्घ पंक्ति में दीपक लेकर तलाश करिए और देखिए कि उन सबमें क्या कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो शरीर, मन और बुद्धि के वैभव में ऋषि को मात दे सके ? इससे बढ़कर मानव जीवन की पूर्णता की आप क्या कल्पना कर सकते हैं ?

सहस्र सूर्य सन्निभ

गीता में लिखा है—

दिवि सूर्य सहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भा: सदृशी सा स्याद् भासस्तस्य महात्मन: ।।

—"अर्थात् यदि आकाश में सहस्रों सूय एक साथ चमकने लगें तो उन सबकी मिलकर जैसी चमक होगी वैसी ही चमक उस महात्मा की है ।" ऋषि दयानन्द के वैशिष्ट्य को बताने के लिए कुछ इसी प्रकार की बात कही जा सकती है । अन्य महापुरुष आकाश में चमकने वाले एक एक सूर्य के समान हैं, पर ऋषि का तेज सहस्र सूर्यों और सहस्र महापुरुषों के समान हैं ।

इसीलिए हम कहते हैं कि ऐसे तेजस्वी महापुरुष की जीवनी का पारायण किसी आर्ष ग्रन्थ के पारायण से कम नहीं हैं ।

जीवनी की विशेषता

फिर यह जीवनी भी कैसी है ? यों अमर शहीद पं० लेखराम, स्वामी सत्यानन्द और बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित जीवनियां भी मिलती हैं और वे सब एक से एक बढ़कर हैं । परन्तु इस जीवनी की अपनी कुछ विशेषताएं हैं जिनके कारण यह संग्रहणीय बन गई है ।

सबसे पहली विशेषता तो यह है कि यह जीवनी ऋषि के निर्वाण के उपरान्त दस वर्ष के अन्दर लिखी गई थी। पहले यह उर्दू में लिखी गई थी, फिर यह अनूदित होकर हिन्दी में प्रकाशित हुई। उर्दू वाली जीवनी अब अप्राप्य है। अनेक प्रयत्न करने पर भी हमें उसकी एक भी प्रति कहीं से नहीं मिल पाई। पहले वह जीवनी उर्दू में प्रकाशित हुई थी, यह बात भी इस हिन्दी पुस्तक को देखने से ही विदित हुई। इस हिन्दी पुस्तक की एक जीर्णशीर्ण प्रति स्वर्गीय श्री महाशय कृष्ण के पुस्तकालय की खोज-बीन करते हुए उनके सुपुत्र, पंजाब के यशस्वी आर्यनेता, श्री वीरेन्द्र जी को मिली और उन्होंने कृपा कर सार्वदेशिक सभा को वह प्रति भेज दी। दूसरी प्रति एक अन्य सज्जन के पास से प्राप्त हुई। दोनों प्रतियों में शुरू के और अन्त के एक-एक दो-दो पृष्ठ गायब हैं जिससे यह पता लगाना कठिन है कि पुस्तक कौन से प्रेस में छपी थी। इसके अतिरिक्त दोनों प्रतियों की पृष्ठसंख्या में भी अन्तर है, जिससे यह निश्चय होता है कि कम से कम इसके दो संस्करण अवश्य निकले होंगे। मूल पुस्तक ५२१ पृष्ठों की है जिसमें १४८ पृष्ठों की बहुत सुन्दर भूमिका है। पुस्तक का मोटा टाइप होने के कारण वह पूरी सामग्री हमारे सवा तीन सौ पृष्ठों के इस विशेषांक में आ गई है। ७५ वर्ष पुरानी पुस्तक का जीर्णोद्धार आर्य समाजियों के लिए किसी पुरातत्त्व की वस्तु के जीर्णोद्धार से कम दिलचस्पी का विषय नहीं है।

दूसरी विशेषता इस पुस्तक की यह है कि आर्य समाज के आदिकालीन इतिहास पर जैसा सुन्दर प्रकाश इससे पड़ता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। पुस्तक के लेखक स्वयं उस समय आर्य समाज के कर्णधार थे और आर्यसमाज के इतिहास की आदिकालीन घटनाओं के निर्माण में उनका बहुत बड़ा

हाथ था। इसके अलावा आर्य समाज के अन्य आदिकालीन प्रमुख नेता उस समय जीवित थे इसलिए घटनाओं के वर्णन में प्रत्यक्ष दर्शिता की झलक है।

लाला लाजपतराय की कलम

तीसरी और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस जीवनी के लेखक स्वनामधन्य लाला लाजपतराय हैं। लालाजी वाणी और लेखनी के कैसे धनी थे, यह आर्य जगत् को बताने की आवश्यकता नहीं। इस दृष्टि से यह तथ्य-संकलन परक नीरस जीवनचर्या नहीं, प्रत्युत एक महापुरुष द्वारा दूसरे महापुरुष के जीवन की समीक्षा है। लाला लाजपतराय ऋषि दयानन्द को अपना गुरु मानते थे, पर शिष्य के लिए समुचित अन्ध-श्रद्धा की भावना से उन्होंने यह पुस्तक नहीं लिखी है। लाला जी जैसे खरे और बेबाक राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक नेता थे, उसी खरेपन और निस्संगता के साथ लाला जी ने ऋषि के जीवन का चित्रण किया है।

पुस्तक की भाषा आज से ७५ वर्ष पुरानी है, इसलिए आधुनिक साहित्यिक भाषा के मानदण्ड के अनुसार वह कहीं कहीं अटपटी लग सकती है, पर हमने इसमें परिवर्तन करना उचित नहीं समझा। इतिहास की दृष्टि से यह बात भी कम महत्व की नहीं है कि अब से ७५ वर्ष पूर्व लाला लाजपतराय जैसे व्यक्ति कैसी भाषा लिखते थे। उस समय हिन्दी और उर्दू के कई शब्द आज से कुछ भिन्न अर्थों में भी प्रयुक्त होते थे। आखिर वह खड़ी बोली का शैशव काल था। फारसी लिपि में लिखी जाने पर वह खड़ी बोली उर्दू कहलाती थी और देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर हिन्दी, वैसे दोनों में विशेष अन्तर नहीं था, यह तथ्य भी इस पुस्तक से सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

भूमिका की समाप्ति पर लाला जी ने नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए लिखा है।

"आओ नौजवानों ! तुमको बालजितेन्द्रिय, पूर्ण ब्रह्मचारी महा परोपकारी, देश हितैषी, विद्वान्, योगी, महर्षि दयानन्द के जीवन की कहानी सुनाएं। परमात्मा से प्रार्थना करो कि ऋषि के जीवन चरित्र से यथायोग्य लाभ उठाने के लिए वह तुम्हारी बुद्धि को निर्मल और शुद्ध करे।"

भूमिका के इन्हीं शब्दों के साथ हम यह संग्रहणीय विशेषाँक पाठकों के हाथ में सौंपते हैं। प्रत्येक पाठक को ऋषि के जीवन से अपना जीवन उन्नत बनाने की प्रेरणा मिले यही कामना है।

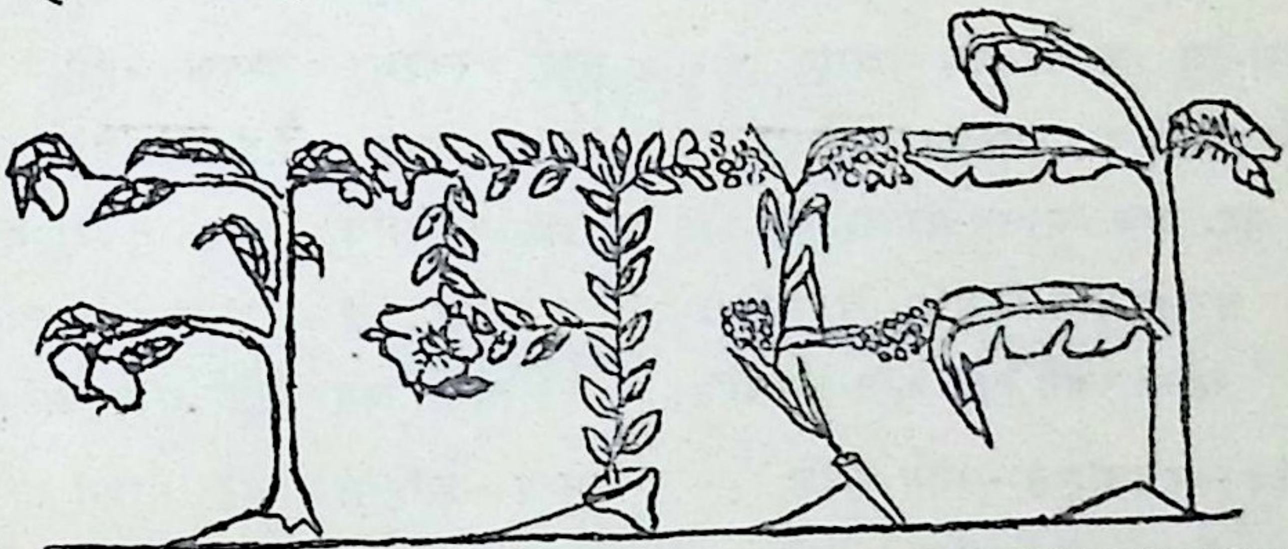

आवश्यकता है

महर्षि दयानन्द छात्रावास के लिये एक पूर्ण समय अध्यक्ष की आवश्यकता है। अच्छी शिक्षा, आर्य समाजी तथा वैदिक धर्म का अध्ययन अनिवार्य है। हायर सैकण्डरी स्कूल के लड़कों को प्यार से नियन्त्रण की योग्यता हो। मासिक अलाऊन्स २००) रु० तथा रहने के एक आदमी वाले क्वार्टर मय-बिजली, पानी की सुविधा है।

प्रार्थना-पत्र दिनांक २०-८-६७ तक प्रबन्धक, आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल, श्री गंगानगर (राजस्थान) को भेजें।

समुज्ज्वल ज्योति

(पद्मश्री डा० हरिशंकर जी शर्मा डी० लिट् आगरा)

दयानन्द ऋषि ज्योति आपकी
जगी, जग रही और जगेगी ।।

अभिनव भारत के निर्माता,
जाति-जननि के भाग्य-विधाता,
प्राणिमात्र के संकट-त्राता,
फहरी धर्म्म-ध्वजा फहरेगी,-
जगी, जग रही और जगेगी ।

सत्ता का स्वरूप निखरेगा,
समता-स्नेह वारि बरसेगा,
धर्म्म, कर्म्म के साथ रहेगा,
विमल ज्ञान गंगा उमड़ेगी,
जगी, जग रही और जगेगी ।

धर्म्म-हेतु धरणी पर आए,
वर वैदिक सन्देश सुनाए,
मुद मन मानव-मंगल गाए,
बरसी पुनि विभूति बरसेगी-
जगी, जग रही और जगेगी ।

सुखी, स्वस्थ, सम्पन्न रहेंगे,
सब सुभद्र सद्भाव गहेंगे,
आधि-व्याधि, संकट न सहेंगे,
रसना से रस-धार बहेगी-
जगी, जग रही और जगेगी ।

ऋषि - वचनामृत - पान करेंगे,
सच्चरित्र – निर्माण करेंगे,
सब सबका कल्याण करेंगे,
वसुधा वृहत् कुटुम्ब बनेगी-
जगी, जग रही और जगेगी ।

सत्य - अहिंसा - व्रत धारेंगे,
शुचिता – समता संचारेंगे,
अन्ध अविद्या तम टारेंगे,
सद्गुण-स्नेह - लता उलहेगी-
जगी, जग रही और जगेगी ।

निर्भय हो शुभ कर्म्म करेंगे,
सदा पुण्य पथ पर विचरेंगे,
धर्म्म हेतु हीं जिएं-मरेंगे,
धरणी स्वर्ग तुल्य सरसेगी-
जगी, जग रही और जगेगी ।

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का

अंग्रेजी मासिक

वैदिक लाइट

प्रभावशाली लेख सुन्दर गेट-अप

बढ़िया छपाई

प्रधान सम्पादक

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री एम० ए०

चन्दा	वार्षिक	एक प्रति
देश में	१० रु०	१ रु०
विदेश में	१ पौंड	२ शि०

प्रचार का अपूर्व साधन

ग्राहक तथा अन्य विवरण के लिये लिखें

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, महर्षि दयानन्द भवन,
रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

महर्षि के सत्संग से पवित्र

मुनिवर गुरुदत्त एम० ए०

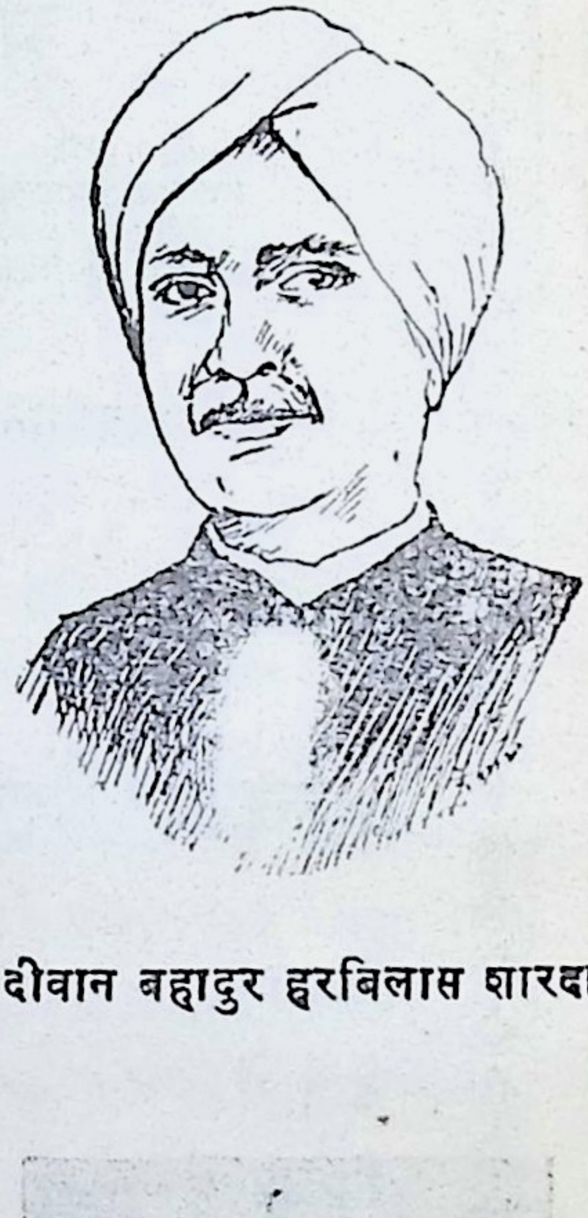

दीवान बहादुर हरबिलास शारदा

राव बहादुरसिंह जी मसूदा

पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या

राजपंडित वाबूराम नागर

ला० साईंदास जी लाहौर

रावराजा श्री तेजसिंह जी वर्मा

रायबहादुर दुर्गाप्रसाद जी

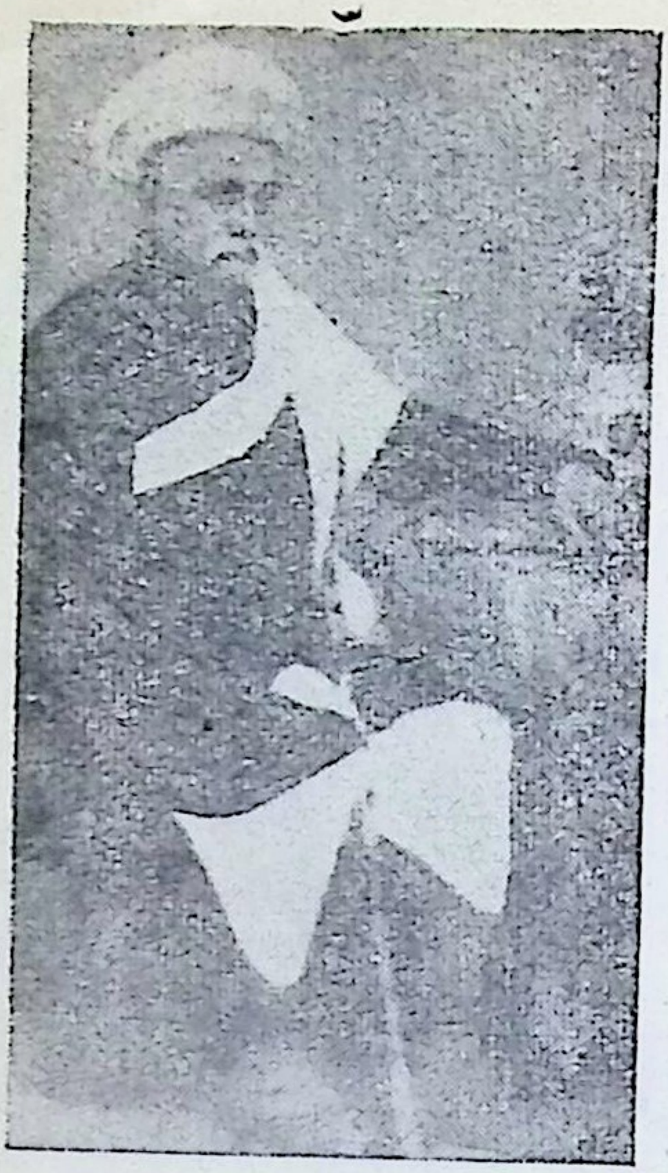

रावबहादुर गोपालरावहरि देशमुख जज

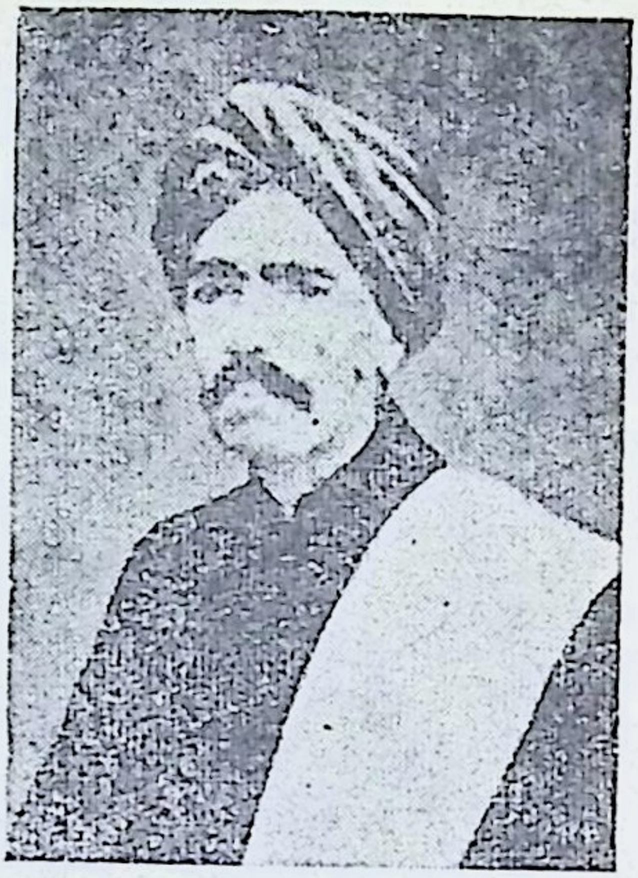

श्री पं० गणेशप्रसाद जी शर्मा

ला० रामचरण जी रईस

ला० कालीचरण जी रईस

ट्रांस्पोर्ट की उत्तम सुविधा

आप अपने ट्रांसपोर्ट की समस्या विश्वासपूर्वक हमारे ऊपर छोड़ सकते हैं क्योंकि समस्त भारत में हमारी अपनी १५० शाखाएं निरन्तर आपकी सेवा के लिए तत्पर हैं।

कुमारी अन्तरीप (नागकोल) से लेकर उत्तर पठान कोट, पूर्व में डिब्रूगढ़, पश्चिम में समस्त राजस्थान, और सौराष्ट्र में फैली हैं।

कुशल कार्यकर्ताओं और अपनी स्वयं की ट्रकों से आपको विश्वसनीय सेवा प्रदान की जायगी।

सभी स्थानों पर अपने पक्के गोदाम एवं माल न्यु इंडिया इंश्योर कं० से इंश्योर्ड।

ट्रांस्पोर्ट कारपोरेशन आफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड

हेड आफिसः—कलकत्ता, २५/२७. कालीकृष्ण टैगोर स्ट्रीट, कलकत्ता-७।

फोन :— ३३३५६५ चार लाइन

रीजनल आफिसः—देशबन्धु गुप्ता रोड, दिल्ली।

फोन :— २७४०८१-८२-२७७५६८

बम्बईः—६०-६२, शेरिफदेव जी स्ट्रीट

फोन :— ३२१८६१—तीन लाइन

मद्रासः—१/६५, ब्राडवे।

फोन :— २२०३३, २६४६६

वैदिक धर्मोद्धारक, आर्यसमाज संस्थापक, आर्य संस्कृति, आर्य जाति, आर्य भाषा के प्रबल प्रचारक गो आदि पशुओं के रक्षक, वर्णाश्रमधर्म के समर्थक

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज

महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र के लेखक, महर्षि के अनन्य भक्त, भारत रत्न, पंजाब केशरी, देशभक्त स्वनाम धन्य

श्री लाला लाजपतराय जी

॥ ओ३म् ॥

दुनियां के महापुरुषों के जीवन—संख्या ४

सार्वदेशिक का विशेषांक

महर्षि स्वामी

दयानन्द सरस्वती

और

उनका काम

लेखक :

लाला लाजपत राय

प्लीडर चीफकोर्ट पंजाब लाहौर प्रणीत

प्रकाशक :

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१

(सं० १९५५ विक्रमी में लाहौर में प्रथम प्रकाशित)

वेदोपदेश

एतं शर्द्ध धाम यस्य सूरे रित्यवोचन् दश तपस्य नं शो ।
द्युम्नानि येषु वसुताति रायन् विश्वे शृन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥

अर्थ--पूर्ण विद्याओं के जानने वाले जो विद्वान् मनुष्य समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं, वे यशस्वी होते हैं।

समर्पण

यह पुस्तक मैं अपने प्रिय मित्र श्रीयुत लाला हंसराज जी अवैतनिक (आनरेरी) प्रिंसीपल दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज की सेवा में अर्पण करता हूं। आशा है कि उक्त मान्यवर्य मेरे इस क्षुद्र कार्य को स्वीकार कर कृतकृत्य करेंगे।

—लाजपतराय

भूमिका

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के अनुपम परोपकारी काम तथा जीवन का वृत्तान्त सर्व साधारण को सामान्य और आर्य सभासदों को विशेष करके परम लाभदायक है, इसलिये यह उद्योग किया गया है। मुझे यह कहने में किंचित् भी विलम्ब नहीं कि यह पुस्तक उस महापुरुष के योग्य नही जिसका नाम इस पुस्तक के टाइटिल पर लिखा है। उर्दू में भी यह पुस्तक छप जाने के अनन्तर बहुत से सज्जन भद्रपुरुषों ने हिन्दी भाषा में भी इस पुस्तक को प्रकाशित करने की इच्छा प्रगट की और प्रेरणा की कि यह अति शीघ्र प्रकाशित होनी उचित है, इस शीघ्रता के कारण तथा निज शरीर की अस्वस्थता से यदि इस आवृत्ति में कुछ न्यूनाधिक हो तो सज्जन महाशय क्षमा करें।

यह हिन्दी अनुवाद मेरी सम्मति व प्ररणा से पण्डित गोपालदास देवगुण शर्म्मा क्लर्क डैडलैटर आफिस लाहौर ने बड़े परिश्रम से किया है और प्रूफ भी देखे है। परन्तु यथोचित् समय इनको भी नहीं मिल सका और यद्यपि इस अनुवाद को मैंने भी सुन लिया है परन्तु शरीर की अस्वस्थता से मैं भी यथोचित् ध्यान नहीं दे सका, मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि उक्त पण्डित जी को अधिक समय मिलता तो यह पुस्तक और भी उत्तम छपती। अन्त में प्रार्थना है कि यदि इस आवृति में भ्रम भूल है या न्यूनाधिकता हो तो विद्वज्जन कृपापूर्वक संशोधन करके सूचना दें जिससे पुनराबृत्ति में उन पर ध्यान किया जावे।

— लाजपत राय

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

(१) हमारा देश और इसका नाम

आज कल हमारे देश का नाम हिन्दुस्थान है, यह संयुक्त शब्द दो शब्दों के मेल से बना है, अर्थात् हिन्दु और स्थान से, जिसका आशय यह है कि यह देश हिन्दुओं का स्थान है। हिन्दु शब्द नवीन प्रतीत होता है, क्योंकि मुसलमानों के इस देश में आने से पहले यह शब्द हमारे देश के साहित्य में नहीं मिलता। जहां तक आजतक की विवेचना से पता मिलता है, सारी प्राचीन संस्कृत में यह शब्द वर्त्ताव में नहीं आया। कई मनुष्यों की यह सम्मति है कि यह शब्द "सिन्धु" से बिगड़ा हुआ है, परन्तु यह भी ठीक नहीं, क्योंकि "सिन्धु" किसी जाति का नाम नहीं वरं नदी का नाम है। प्रायः यह विचार ठीक है कि इस देश के असली निवासियों अर्थात् आर्य्य लोगों का यह नाम मुसलमानों ने रक्खा है। फारसी भाषा में इस शब्द का अर्थ "गुलाम" (दास) है। मुसलमानी धर्म्मानुसार जो प्रजा मुसलमान न बने "दास" समझी जाती है। इसलिये कुछ आश्चर्य नहीं कि मुसलमानों ने इस देश पर अपना राज्य करने के पीछे इस देश के निवासियों को "हिन्दु" उपाधि (लकब) दी हो। मुसलमानों के आने से पूर्व प्रायद्वीप भारत के दो बड़े भाग समझे जाते थे अर्थात् उत्तरीय भाग और दक्षिणीय भाग। उत्तरीय भाग को आर्य्यावर्त्त और दक्षिणीय भाग को केवल दक्षिण कहते थे। इस विभाग का कारण यह नहीं था कि आर्य लोग केवल उत्तरीय भाग में ही रहते थे और दक्षिणीय में नहीं, क्योंकि रामायण से विदित होता है कि उन दिनों में भी प्रायः आर्य्य दक्षिण में भी थे, वरंच इसका यह कारण प्रतीत होता है कि संस्कृत ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा गया है कि ब्रह्मर्षि देश केवल उस भाग का नाम था जो सरस्वती नदी और गंगा के मध्य में है। कई ग्रन्थों में समस्त देश को भरत खण्ड लिखा है।

(२) समस्त हिन्दू आर्य वंश से हैं

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि वे समस्त लोग जो इस समय हिन्दू पुकारे जाते हैं, आर्य वंश में से हैं। यह सम्भव है कि कई जातियां या कोई विशेष भाग इस जाति के "मिक्स्ड" मिश्रित वीर्य से अर्थात् एक आर्य जाति के और द्वितीय किसी अन्य जाति के संयोग से हो, परन्तु तो भी क्योंकि इनमें आर्य जाति प्रधान थी, और ऐसे समस्त पुरुषों ने उन्हीं की भाषा और उन्हीं के धर्म को स्वीकार करके उन्हीं में अपने आपको मिला दिया था, वे सब पूर्ण रीति से आर्य्य कहला सकते हैं।

(३) आर्य वास्तविक यहीं के निवासी थे या कहीं बाहर से आये

आर्य जाति वास्तव में आदि से इस देश में आबाद थी या कहीं बाहर से आकर बसी ? यह ऐसा प्रश्न है कि जिस पर बहुत सा विवाद या सोच विचार होता रहा और अब तक हो रहा है, यूरोप निवासी विवेचकों ने जिस दिन से संस्कृत के अनखुट भण्डार को खोलना आरम्भ किया, उसी दिन से इस प्रश्न पर बड़े मनोवेग से चर्चा होने लगी। क्योंकि संस्कृत भाषा, इसकी रचना, इसकी बनावट को यूरोप की विद्यामयी और देशीय बोलियों से जो (मुकाबला) तुलना की, तो उनमें एक विचित्र समता पाई गई। जिससे विस्मय होकर यूरोप निवासी संस्कृत के विद्यार्थियों ने भिन्न २ परिणाम निकाले। एक बड़ी बलवान् श्रेणी की यह सम्मति है कि यूरोप निवासी फारस, अफगानिस्तान और भारत निवासी सब लोग एक वंश के हैं, जिसका नाम आर्य था। प्राचीन समय में इनके पुरखा मध्य एशिया में रहते थे और फिर वहां से भिन्न २ भागों में बट गये। चुनांचे जो श्रेणी भारत में आई उसने तो अपना नाम नियत रखा, शेष श्रेणियों ने बदल लिया। इस विद्वन् मण्डली की यह सम्मति भाषाओं की उसी समता पर निर्भर है, जिसका हमने ऊपर वर्णन किया है। उनका कथन है कि बटने से पहिले सब जातियों की भाषा एक ही थी। वह भाषा प्रायः संस्कृत से

अधिक मिलती जुलती थी और इसी से लैटिन, यूनानी, फारसी और जन्द प्रभृति भाषा निकली हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की इसमें निम्नलिखित सम्मति है जो कि हम सत्यार्थप्रकाश से लेकर लिखते हैं--(प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई। (उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् तिब्बत में। (प्र०) उत्पत्ति के आदि में एक जाति के मनुष्य थे या अनेक जातियों के? (उ०) एक के, पीछे विद्वान् और देवता पुरुषों का नाम आर्य तथा बुरे लोगों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख पड़ गया। इस प्रकार आर्य और दस्यु दो नाम हुए। आर्यों में उक्त रीति से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से ४ वर्ण हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य और अनपढ़ों का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी शूद्र हुआ। (प्रश्न) फिर वह यहां कैसे आये? (उत्तर) जब आर्य, विद्वानों, देवताओं का दस्यु असुर व राक्षसों अर्थात् मूर्खों में सदैव लड़ाई झगड़ा होने लगा और विवाद बहुत बढ़ गया तो आर्य जन सारी धरती में से इस भूमि को सबसे श्रेष्ठ समझ कर यहीं आ बसे। इसी लिए इस देश का नाम आर्यावर्त्त हुआ। (प्र०) आर्यावर्त्त की सीमा कहां तक है? (उ०) उत्तर में हिमालय पर्वत, दक्षिण में विन्ध्याचल पूर्व और पश्चिम में समुद्र, या यह कहें कि पश्चिम में सरस्वती नदी वा अटकनद, (जो उत्तरीय पर्वतों से निकल कर दक्षिण में अरब सागर में जा गिरता है) पूर्व में दृशदवती (जो नैपाल देश के पूर्वीय भाग के पहाड़ों से निकल कर बंगाल की पूर्वीय सीमा में और ब्रह्मा की पश्चिम की ओर होकर दक्षिण की ओर समुद्र में मिल गई है, जिसको ब्रह्मपुत्र भी कहते हैं) हिमालय की मध्य रेखा से दक्षिण और पर्वतों के बीच और रामेश्वर तक विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं इन सबको आर्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह देश आर्यावर्त्त देवता अर्थात् विद्वानों ने बसाया है और आर्य पुरुषों की निवास भूमि है। (प्र०) पहले इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन रहते थे? (उ०) पहले इस देश का नाम कुछ भी नहीं था और न कोई यहां रहता ही था, क्योंकि

आर्य मनुष्य उत्पत्ति के आरम्भ में कुछ समय व्यतीत हो जाने के अनन्तर तिब्बत से सीधे इस देश में आकर बसे। (प्र०) बहुतों का कथन है कि आर्य लोग ईरान से आये, इसी लिये इन लोगों का नाम आर्य है। इनसे पहले यहां जंगली मनुष्य रहते थे, जिनको (आर्य जन) असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बताते थे और इन दोनों में जो युद्ध हुआ, वह देवासुर संग्राम के नाम से कथाओं में वर्णित है। (उ०) यह बात निरन्तर मिथ्या है, क्योंकि यह ऋग्वेद में भी लिखा है, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, आर्य्य, धार्मिक विद्वान, सत्यवक्ताओं का नाम है, और उनसे विपरीत गुणों वाले जो मनुष्य हैं, उनका नाम दस्यु अर्थात् डाकू, कुकर्मी, अधार्मिक और मूर्ख है। इस प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य द्विजों का नाम आर्य और शूद्रों का नाम अनार्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद में यह लिखा है तो दूसरी जातियों की कल्पित बातों को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। हिमालय पर्वत पर आर्य और दस्यु, म्लेच्छ अर्थात् राक्षसों का जो संग्राम हुआ था उसमें आर्यावर्त्त के अर्जुन और महाराज दशरथ प्रभृति सम्राट देवताओं अर्थात् आर्यों की विजय और असुरों की पराजय के लिए सहायक हुए थे।

यूरप की एक अन्वेषण करने वाली श्रेणी इस प्रकार कहती है, कि भाषाओं की समता इस बात की पूरी साक्षी नहीं, कि आर्य लोग असली भारत निवासीनहीं थे और किसी प्राचीन समय में मध्य एशिया से आकर यहां बसे या किसी और स्थान से आए। निःसन्देह यहां तक तो सब का ऐक्यमत है, कि यूरप की कई भाषाएं और जंद तथा पहलवी संस्कृत से इतनी मिलती जुलती है कि पूर्ण विश्वास से यह कहा जा सकता है, कि या तो शेष समस्त भाषा संस्कृत से निकलीं या संस्कृत और यह सब भाषाएं किसी अन्य प्राचीन भाषा से जनी हैं, जो इन समस्त भाषाओं की दयालु माता थी। भारतीय विद्वान् जिनके साथ कई यूरपीय विद्वान् भी

सम्मति रखते हैं, यह कहते हैं, कि ये सब जुबान संस्कृत से निकलीं क्योंकि यह बात मानी गई है, कि संस्कृत इन सबसे प्राचीन सब प्रकार से कम्पलीट (समग्र) और सबसे उत्तम हैं। सो कोई कारण नहीं, कि यह न माना जावे, कि शेष समस्त मिलती जुलती भाषाएं इसी की पुत्रियां हैं, जैसे कि नवीन संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी भाषा, आधुनिक बङ्गाली, सामायक, गुजराती, और मरहठी, प्रभृति प्राचीन संस्कृत, से बहुत भेद रखती हैं, परन्तु तो भी इस में किसी को भी संदेह नहीं कि इन सब की माता प्राचीन संस्कृत है। इसी प्रकार चाहे फारसी, जंद, पहलवी, लातीनी, और यूनानी प्रभृति सब प्राचीन संस्कृत से भिन्न हैं, परन्तु तो भी उनमें इतनी समता है कि हिन्दुस्थानी आधुनिक भाषाओं के समान उनको भी संस्कृत से निकली हुई माना जा सकता है। दूसरी ओर कई यूरपीय विद्वान् यह चरचा करते हैं, कि भारत की आधुनिक भाषाओं की संस्कृत से जितनी समता है, उसी पदवी और उतनी ही समता लातीनी यूनानी प्रभृति को नहीं, इसलिये माना जा सकता है, कि इन सब भाषाओं की माता एक ही भाषा थी, जो भिन्न २ प्रान्तों में जाने से पूर्व आर्यवंश में बोली जाती थी। परन्तु तो भी यह पूर्ण साक्षी इस बात की नहीं, कि संस्कृत को ही सब की माता मान लिया जावे, निःसंदेह भाषाओं के सम्बन्ध से यह परिणाम तो अवश्य निकाला जा सकता है, कि जिन वंशों में यह भाषा अब प्रचलित हैं, उन वंशों में भी कुछ न कुछ प्राचीन सम्बन्ध अवश्य होगा। क्या ये सब वंश किसी समय मध्य एशिया में बसती थीं और वहां से इधर उधर चली गई या इन सब वंशों के पूर्व पुरुष हिमालय के बर्फानी पहाड़ों के दक्षिण या उत्तर में निवास करते थे, और उनकी संतान संसार के भिन्न २ भागों में फैल गई। यह ऐसे प्रश्न हैं कि जिनके विषय में अभी तक निश्चयात्मक उत्तर नहीं मिला। हमारी सम्मति में लार्ड अलफिस्टन और उनके साथी विवेचक बड़ी उचित रीति से यह (बहस) विवाद करते हैं, कि जो समाण, इस विचार के कि समस्त

आर्य्य जाति किसी समय मध्य एशिया में रहती थी, और वहां से हिन्दु आर्य्य भारत में आए, पुष्टि के अर्थ दिये जाते हैं, कि वह इस परिणाम पर पहुंचाने की मानो पूर्ण सीढ़ी नहीं है, केवल विचारना है, और क्योंकि जब से ऐतिहासिक साक्षी मिलती है, उस समय से हिन्दु आर्य्य वंश का निवास भारतवर्ष में ही सिद्ध होता है। इसलिये इस बात को सिद्ध करने का भार उन्हीं पुरुषों पर है जो कहते हैं, कि यह कहीं बाहर से आए हैं, और वह इस बात से प्रमाण देकर अपना भार नहीं उतार सके। ऐसी अवस्था में पूर्ण रीति से ठीक तौर पर हिन्दु विद्यार्थियों को यह शिक्षा देनी कि उनके पुरुषा भारत के असली निवासी नहीं उन को कुमार्ग मे ले जाना है ॥

(४) समस्त विद्यामयी भाषाओं में से संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है

निःसन्देह यह तो माना गया है कि यूरप की समस्त भाषा फारसी, पहलवी, जंद प्रभृति में से वैदिक संस्कृत सब से प्राचीन भाषा है, इसके साथ ही यह भी माना जाता है कि मनुष्य जाति के पुस्तकालय में ऋग्वेद से प्राचीन कोई पुस्तक नहीं। सो यह कहना किसी प्रकार से अत्युक्ति नहीं, कि विद्यामयी भाषाओं में से वैदिक संस्कृत सबसे प्राचीन भाषा है और यही ऐसा अमूल्य भण्डार है, कि जिससे प्राचीन समय के हाल विदित हो सकते हैं ॥

(५) सभ्यता के इतिहास के लिये वेद कुंजी हैं।

इतिहास हमको वेदों के पीछे के हाल तो बता सकता है, परन्तु उससे पहिले समय के हाल के विषय में तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, इसी वास्ते प्रोफैसर मैक्समूलर एक स्थान पर अपनी रचना में यह लिखते हैं, कि यूरपीय लोगों के लिये वेदों के (अस्तित्व) मौजूदगी का विदित होना मानों पुराने समय की तारीख की कुन्जी का मिलना है। उस की सम्मति में वेद एक ऐसा बहुमूल्य पदार्थ है कि जिन से अधिक पण्डितों और विद्वानों की दृष्टि में कोई और पदार्थ प्रिय नहीं हो सकता। उस की सम्मति में सभ्यता का इतिहास

वेदों के ज्ञान के बिना निरन्तर अधूरा है। जिस दिन से यूरपीय मनुष्यों को इन पवित्र पुस्तकों की मौजूदगी और इन के विषयों से कुछ २ अभिज्ञता हुई है, उसी दिन से सभ्यता की तारीख में विचित्र परिवर्तन हुए हैं, यहां तक कि इस अभिज्ञान से पहिले के सभ्यता के इतिहास इस समय के विद्वानों की दृष्टि में निरन्तर मिथ्या और व्यर्थ जान पड़ते हैं॥

(६) धर्म्म सम्बन्धी इतिहास के लिये तो वेदों का पठन-पाठन और भी अत्यावश्यक है।

इतिहास विद्या का कोई भाग ऐसा मनोहर नहीं जैसा कि भाषाओं का भाग और धर्म सम्बन्धी भाग है, इतिहास में यही दो स्थल ऐसे हैं कि जिनसे संसार की भिन्न २ जातियें पहिचानी जा सकती हैं। यही दो पदार्थ ऐसे हैं कि जिनसे संसार की जातियें विशेष करके भिन्न भिन्न नाम धराती हैं। और इनमें मजहब, धर्म या दीन तो ऐसी वस्तु है, कि जिसके नाम पर संसार में बड़े २ हलचल देखने में आए हैं। संसार भर में बड़े २ परिवर्तन धर्म के नाम से ही हुए हैं। सत्य पूछो तो समस्त पुलिटीकल तवारीख धर्म्म ने बनाई है। क्या यूरप और क्या एशिया सब स्थानों में इसी ने काम किया है, यहां तक कि वंशों की असलीयत इसी ने खोदी है। धर्म के नाम से देशों और वंशों में वह व्यत्यय (उलट पुलट) हुए हैं कि अब उनका पहिचानना कठिन है। यही फारस जो आज कल मुसलमानों का देश है, मुसलमानी धर्म से पहिले कुछ और ही था, इसी प्रकार एशियाटिक, और यूरपियन टर्की हिन्दुस्थान की वह वंश जो इस समय हजरत मुहम्मद से अपना नाम नियत करती है, वास्तव में क्या थी और धर्म के परिवर्तन से क्या हो गई। यूरप की वंशें पहिले क्या थीं और अब क्या हो गईं, यह सब धर्म महाराज का प्रताप है, और इसीलिये धर्म की तवारीख से ही मानों संसार की समस्त तवारीख बनती है। सो प्रोफेसर मैक्समूलर का यह कहना बिलकुल ठीक है कि जिन मनुष्यों ने वेदों को हम तक अर्थात् यूरपीय विद्वानों और विवेचकों

तक पहुंचाया, उन्होंने सभ्यता और धर्म्म पर बड़ा अनुग्रह किया, संसार के इतिहासलेखकों और पुस्तककर्त्ताओं को सत्य मार्ग पर चला दिया। यह विदित नहीं कि इस अभिज्ञान के बिना संसार कितनी देर तक अन्धकार में चला जाता, और कपोल कल्पित तवारीखें रचता। वेदों के विदित होने से उन को वह प्रकाश मिल गया, जिसके सहारे से इतिहासों को ठीक रीति पर लिख सकेंगे।

(७) वेद संसार भर के सबसे प्राचीन पुस्तक होने के कारण प्राचीन धर्म की शिक्षा देते हैं।

ऋग्वेद सृष्टि की सबसे पुरानी और प्राचीन पुस्तक होने के कारण संसार के सबसे प्राचीन धर्म को प्रतिपादन करती है। अर्थात् ऋग्वेद का धर्म्म पूर्ण रीति से संसार का सब से प्राचीन धर्म है, सत्य तो यह है कि क्या जानें यह समय अति निकट आता जाता है जबकि यह मान लिया जावेगा कि सारे संसार के धर्म वास्तव में वैदिक धर्म्म से निकले हैं। जिस प्रकार भिन्न २ भाषाओं की तुलना से यह विदित होता है कि वह वास्तव में एक ही स्रोत से निकली हैं, भेद जो इस समय उनमें विदित होते हैं वे सब भिन्न भिन्न अन्न जल (आबो हवा) प्रभृति के कारण से हुए हैं। इसी प्रकार भिन्न २ धर्म (सम्प्रदाय) की तुलना करने से मनुष्य यह परिणाम निकाले बिना नहीं रह सकता, कि उन सब सम्प्रदायों के कई ऐसे नियम हैं जो संसार के सब सम्प्रदायों में पाए जाते हैं, और वही नियम वास्तव में सम्प्रदाय (धर्म) के मूल नियम हैं। उन में जो विभिन्नता हैं, वह उन मूलक असूलों पर मनुष्य की बुद्धि का प्रत्यय हैं। भिन्न २ देशों, नाना प्रकार की आब हवा, भान्ति २ की मर्य्यादा व रीति और अन्य भिन्न २ अवस्थाओं में उत्पन्न हुए २ मनुष्यों के मस्तिष्कों ने इन मूलक नियमों (बुनियादी असूलों) को भिन्न भिन्न रीति से समझा और इसीलिये यह सब भेद उत्पन्न हो गये। सो निश्चय पूर्वक यह कहा सकता है, कि जिस प्रकार सांसारिक भाषाओं की उत्पत्ति स्थान किसी समय एक ही था, उसी प्रकार आधुनिक सम्प्रदायों

की बुनियाद भी किसी समय एक ही थी, और चू कि ऋग्वेद संसार के गुह्य पदार्थों की विधि और तत्व के प्रतिपादन करने से सब से प्राचीन प्रतीत होता है, इसलिये इसका धर्म्म भी सबसे प्राचीन और पुराना है। प्राचीन और आधुनिक आर्य्यों का तो यह विचार है, कि वेद ईश्वरीय ज्ञान के पुस्तक हैं। और वही समस्त सम्प्रदायों (धर्म्मों) की जड़ हैं, उन में समस्त सम्प्रदायों के (मूल के) नियम उसी निर्लेप पवित्र अवस्था में पाए जाते हैं, जिस निर्लेप अवस्था में वह आदि में थे। सो इस विचार से भी वेद ऐसे बहुमूल्य ग्रन्थ हैं, कि इन के बराबर अमूल्य ग्रन्थ और कोई भी नहीं है।

(८) वैदिक संस्कृत के विचार की आवश्यकता

सो सब प्रकार से यह आवश्यक प्रतीत होता है, कि मनुष्य जाति उस भाषा को भली भांति समझ सके कि जिस भाषा में यह अमूल्य पुस्तक इस समय मिलते हैं। हम इस भाषा को वैदिक संस्कृत या प्राचीन सस्कृत कहते हैं। यह वैदिक संस्कृत इस समय किसी स्थान पर प्रचलित नहीं और न ही किसी देश या वंश में बोली जाती है, जैसा कि वैदिक धर्म्म भी इस समय ठीक २ रीति से किसी स्थान में प्रचलित नहीं, और न कोई वंश इस पर आचरण करता है। वैदिक संस्कृत व्यत्यय होती २ उस दशा को पहुंच गई जो इस समय इस देश की भाषा की दशा है, और वैदिक धर्म्म भी बिगड़ता २ उस दशा को पहुंच गया जो इस समय हिन्दु धर्म्म की दशा है। हम इस देश की भाषा और हिन्दु धर्म्म का विशेष करके इसलिये वर्णन करते हैं, कि किसी मनुष्य को भी इसमें सन्देह नहीं कि यह भाषा और यह धर्म्म वैदिक धर्म्म और वैदिक संस्कृत की ही वंश से है, या यह कहें कि यह धर्म्म और यह भाषा वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृत की (Lineal descendants) ऐसी संतान हैं जैसे दादा से पिता और पिता से पुत्र, पुत्र से पौत्र और पौत्र से प्रपौत्र आदि २। वैदिक धर्म्म को समझने के अर्थ वैदिक संस्कृत का समझना अतीव आवश्यक है, सत्य पूछो तो दोनों का समझना, (लाजम

मलजूम) कर्म्म और क्रिया का सम्बन्ध रखता है, इस देश में धर्म्म और भाषा का परिवर्तन साथ २ होता रहा है। जैसे २ धर्म्म अपनी असली पवित्र अवस्था से गिरता गया वैसे २ ही भाषा भी बदलती गई ॥

(९) यह देश धर्म्म भूमि कहाता है

धर्म्म के साथ इस देश में केवल भाषा में ही विपर्य्यय नहीं हुआ (वैदिक संस्कृत से नवीन संस्कृत और नवीन संस्कृत से पाली और प्राकृत, प्राकृत से हिन्दी भाषा प्रभृति) अपितु इस देश की पुलीटीकल अर्थात् देशीय और सोशीअल अर्थात् सामाजिक अवस्था भी धर्म्म के साथ बदलती रही। धर्म्म का विचार सदैव सर्वदा और प्रत्येक समय में प्रधान रहा, सो इसी वास्ते इस देश को धर्म्म प्रधान भूमि कहते हैं।

(१०) जो मनुष्य वैदिक धर्म और वैदिक संस्कृत की शिक्षा देवे वह संसार के परमोपकारी पुरुषों में गिनने के योग्य है

सो जो मनुष्य हम को शुद्ध वैदिक धर्म्म बतलावे और वैदिक धर्म्म के समझने के लिये वैदिक संस्कृत की कुञ्जी देवे वह केवल हम पर ही उपकार नहीं करता, किन्तु वह सारी विश्व की विद्या सम्बन्धी उन्नति की वृद्धि की सहायता करता है, और सुशिक्षा और सभ्यता को अनुगृहीत करता है। वह इस योग्य है कि उस को संसार के परमोपकारी मनुष्यों में गिना जावे। उस की कृपा से समस्त सभ्यता को एक विचित्र प्रेरणा होती है और उन्नति का प्रवाह सीधे मार्ग पर चलने लगता है। आगे चल कर हम एक ऐसे ही महापुरुष की जीवनी लिख, पाठकों की भेंट करेंगे। लोगों को वैदिक संस्कृत के सत्यार्थ आशय की विधि बतला कर स्वामी दयानन्द जी ने केवल इस देश के मनुष्यों को अनन्त लाभ नहीं पहुंचाया है, वरन् संसार की सुशिक्षा और सभ्यता का अतीव विचित्र प्रकाश किया है ॥

(११) हिन्दु आर्यों के लिये स्वामी दयानन्द का जीवन अलभ्य था

हिन्दु आर्य तो जितना उपकार मानें थोड़ा है, धर्म से पतित,

सैंकड़ों वर्षों से पुलीटीकल अधोगति में फंसे हुए, सोशीअल अवस्था में लज्जातुर हिन्दुओं के वास्ते तो इन का जीवन मानो अमृत की वर्षा थी, उसने अतीव परिश्रम से वैदिक संस्कृत को विचार कर हम लोगों पर विधि पूर्वक प्रकट किया। आधुनिक हिन्दु वास्तविक वैदिक धर्म्म से कितने पतित हैं। और वही (पतन) हमारे सब दुःखों का कारण है। उस ने यह भी बताया है कि वह अधःपतन एकाएक नहीं हुआ, वरञ्च भाषा और वण क्रमशः नीचे २ पतित होते गये, यहां तक कि इतने गिरे कि अब उससे नीचे गिरने का स्थान ही नहीं रहा। और वह समय आ गया है, कि प्राच्य सन्तान अपने उस पतन और हानि को अच्छी प्रकार जान कर फिर ऊपर चढ़ने का यत्न करें। ऐसे मनुष्य के जीवन के वर्णन पढ़ने से वही मनुष्य आनन्द पा सकता है, और उसके महत्व को जान सकता है, जो इस धर्म्मप्रधान देश के धार्मिक इतिहास के पद पद से यथाक्रम अभिज्ञता रखता हो। उसकी धार्मिक तवारीख ही उसकी सांसारिक तवारीख की कुन्जी है। उसका धार्मिक इतिहास ही उस की सामाजिक अवनति को भली भांति वर्णन करता है। इसलिये हम आवश्यक समझते हैं कि स्वामी दयानन्द जी का जीवन चरित्र लिखने से पूर्व संक्षपरूप से एक चित्र इस देश की धार्मिक तवारीख का खींचकर अपने देश निवासियों को अर्पण करें, ताकि वह उसको विचारने के अनन्तर उस महोपकारी पुरुष के जीवन चरित्र से यथायोग्य और यथोचित लाभ उठा सकें॥

(१२) वैदिक धर्म सृष्टि का सबसे प्राचीन धर्म्म है, भारत का सबसे प्राचीन धर्म्म होने में तो संदेह ही नहीं

आर्य समाज का यह मन्तव्य है कि वेद ईश्वरीय वाणी (इलहामि) के पुस्तक हैं, जो परमात्मा की ओर से मनुष्य को सृष्टि के आदि में मिले थे। सो वेदों का धर्म्म केवल भारत का ही सबसे प्राचीन धर्म्म नहीं था, किन्तु मनुष्य जाति का प्राचीन और आदि का धर्म्म था। परन्तु यदि इस पक्ष को विचार के वास्ते क्षण भर के लिये न भी

माना जावे, तो भी इसमें तो कुछ शका ही नहीं, कि वेदों का धर्म्म सबसे प्राचीन आदि धर्म्म हैं, जिससे पहिले के धार्मिक विचार का कोई नमूना या पता पास मौजूद नहीं, सो सबसे पहिले यह देखना है, कि वैदिक धर्म्म क्या है ?

(१३) वैदिक धर्म क्या है

वैदिक धर्म्म के विषय में लोगों के विचारों में प्रत्यक्ष रीति पर बहुत कुछ विभिन्नता है। इस समय दो श्रेणियें हैं जो वेदों के धर्म्म पर सम्मति प्रदान करती हैं। एक श्रेणि में भारत के संस्कृत पंडित और संन्यासी और २य, श्रेणि यूरप के उन संस्कृतज्ञ विद्वानों की है, जिन्होंने वेदों के विषयों पर कुछ सम्मतियें प्रकट की हैं। हिन्दुस्थानी पण्डितों और देशीय संस्कृतज्ञों में भी एक ऐसा भाग है, जो अंग्रेजी की अभिज्ञता से यूरपीय विवेचकों से अनुयायी हैं हम उनकी यूरपीय विद्वानों में ही गणना करते हैं। वेदों के धर्म्म पर विचार करते हुए सबसे पहिला प्रश्न मनुष्य के हृदय में यह उत्पन्न होता है।

(२) वेद कौन सी पुस्तकों का नाम है ?

वेद किन पुस्तकों का नाम है ? भारत के संस्कृतज्ञ पण्डित आर्य्य सामाजिक पण्डितों के सिवा इस विषय में एक मत हैं कि वेदों में कम से कम चारों संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ, और उपनिषद् तो अवश्य ही गिने जाते हैं। चाहें एक बड़े गण का जो अपने आपको सनातन धर्म्मी बतलाता है, यह विचार है कि पुराण भी उसी पद के पुस्तक हैं जिस पद के शेष वैदिक साहित्य पुस्तक अर्थात् संहिता, ब्राह्मण और उपनिषदें हैं। संस्कृत साहित्य में समस्त धार्म्मिक पुस्तकों को दो भागों में बांटा है, अर्थात् श्रुति और स्मृति में। श्रुति को ईश्वर का ज्ञान और स्मृतियों को ऋषियों का उपदेश माना गया है। श्रुति से कहीं केवल मंत्र भाग और कहीं वेद संहिता, ब्राह्मण और उपनिषदों से आशय है। और स्मृति से शेष धर्म्म पुस्तक लिये हैं। जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है, कि पुराण कभी श्रुतियों में नहीं गिने गये और इसीलिये उनको वैदिक लिटरेचर से सदैव भिन्न समझा गया है, जैसा कि समस्त

यूरपीय संस्कृतज्ञ विवेचक भी इस विषय में एक मत हैं, कि वैदिक साहित्य में संहिता, ब्राह्मण और उपनिषदें हैं और पुराण वैदिक साहित्य का भाग नहीं। इससे प्रकट होता है कि वैदिक साहित्य और देववाणि पुस्तक जिनको वेद कहना उचित है एक ही आशय का प्रतिपादन नहीं करते। वैदिक साहित्य में वह समस्त साहित्य लिया है जो वेदों पर टीका वा आशय खोलने के अर्थ लिखा गया है और जिसके द्वारा ऋषियों ने वेदों के अर्थ खोलने के लिये परिश्रम किया है, परन्तु ईश्वरीय ज्ञान केवल उस भाग को माना गया है जो संहिता के नाम से प्रसिद्ध है, और जिस को साधारण रीति से ऋग्, यजु, साम और अथर्व के नाम से पुकारते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में इस प्रकार के कई वाक्य विद्यमान् हैं जिनसे यह स्पष्टरीति से विदित होता है कि वह मनुष्य कृत पुस्तक हैं, परन्तु असल वेदों के सहारे बनाई गई हैं। उनमें कई स्थानों पर वेद संहिताओं के मन्त्र प्रमाण की रीति पर लिखे हैं, वेद की भिन्न भिन्न ऋचाओं को लेकर उन पर टीका और विचार की गई है, वरंच कई स्थानों पर उन ग्रन्थों में वेदों की गणना भी की है। इनके सिवा वैदिक व्याकरण अष्टाध्यायी के कर्त्ता पाणिनी-मुनि और अन्य सूत्रकारों के लेखों से भी ऐसा ही सिद्ध होता हैं। इनके सिवा वेदों के भाष्यकारों ने भी संहिता मात्र को ही वेद माना है और उन को ही ईश्वर ज्ञान वा देव वाणि बतलाया है। यूरपीय विवेचक भी वेदों के वर्णन में केवल मंत्रों का ही सहारा लेते हैं, यदि कुछ उनको संदेह है, तो इतना कि क्या अथर्व वेद भी वास्तव में सदा मंत्र भाग अर्थात् देव वाणी (इलहामी) रहा या नहीं। इसलिये यह स्मर्ण रखना चाहिये कि जहां हम वैदिक धर्म्म का वर्णन करते हैं, तो हमारी आशा उस धर्म्म से होती है जिसको ऋग्, यजुः, साम और अथर्व वेद के मंत्र प्रतिपादन करते हैं, यद्यपि हिन्दुओं का इस विषय में परस्पर विवाद है कि वेद या श्रुति से ठीक-ठीक क्या आशय है और पुराण ब्राह्मण और उपनिषदे भी वेद हैं या केवल संहिता मात्र ही वेद हैं, परन्तु इस बात को हिन्दु मात्र मानते हैं कि वेदों का मंत्र भाग

जो ऋग्यजु साम अथर्व वेद संहिता के नाम से प्रसिद्ध है वह निसंदेह ईश्वर की ओर से है और (इलहामी) देव वाणि है। सो पौराणिक धर्म्म ठीक हो या न हो किसी हिन्दू की दृष्टि में मंत्रों अर्थात् संहिता का प्रति पादन किया हुआ धर्म्म मिथ्या नही हो सकता और मंत्रों में जो शिक्षा दी गई है, उसकी आज्ञा पालन सब मनुष्यों का कर्त्तव्य है। इसके सिवा यह भी बुद्धि मानती है, कि परमात्मा (बुद्धि दाता और सत्य, पूज्य तथा सत्य सार है) के ज्ञान में पूर्वापर विरोध न हो। सो यदि यह सिद्ध हो जावे कि वेद संहिता के धर्म्म में और शेष धार्म्मिक पुस्तकों में अर्थात् ब्राह्मणों, उपनिषदों और पुराणों के धर्म्म में कुछ भेद है तो हमें मानना पड़ेगा कि वह दोनों ईश्वर कृत नहीं हो सकते और इनमें से एक अवश्य मनुष्य की रचना है। इस सिद्धान्त पर पहुंच कर फिर यह प्रश्न उत्पन्न होगा, कि इन दोनों में से कौनसी ईश्वरकृत और कौनसी मनुष्य कृत मानी जावे? परन्तु यह स्पष्ट है, कि मनुष्य कृत होने का फैसला उस पुस्तक पर लग सकता है, जिसके विषय में सम्मति का विरोध है, अर्थात् वह ईश्वर कृत है या नहीं, जिसकी दोनों (इलहामी) ईश्वर कृत है या नहीं, जिसको दोनों (इलहामी) ईश्वर कृत मानते हैं, उसके ईश्वरकृत होने में कुछ संदेह ही नहीं हो सकता। इतनी भूमिका के अनन्तर हम यह दरसाने का यत्न करेंगे कि वेदों का धर्म्म क्या है, और वेदों के धर्म्म के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों और विवेचकों की क्या सम्मतियें हैं।

(१५) वेदों का धर्म्म क्या है? (हिन्दुशास्त्रकारों का मत)

पुराणों और पौराणिक साहित्य को छोड़कर समस्त हिन्दुशास्त्रकारों का यह मत है कि वेद ईश्वर के एकत्व और उसी ही की पूजा को नियत करते हैं। वेदों में न मूर्त्ति पूजा है और न देवी देवताओं का वर्णन है। जिन शब्दों से भिन्न-भिन्न देवी देवता माने जाते हैं, वे शब्द सबके सब परमेश्वर के भिन्न-भिन्न नाम हैं, और उस के भिन्न-भिन्न गुणों को प्रतिपादन करते हैं। समस्त शास्त्रकारों का यह मत है कि वेद ईश्वरवादी हैं परन्तु पुराण और पौराणिक साहित्य.

मूर्त्ति पूजा और देवताओं की पूजा का प्रतिपादन करते हैं। परमेश्वर के इन भिन्न-भिन्न नामों को जो वेदों में या वैदिक साहित्य में आते हैं, भिन्न-भिन्न देवी-देवता मान कर मूर्त्तियां बनाते हैं, और उनकी पूजा करने की शिक्षा देते हैं। हम अगले पृष्ठों में यह सिद्ध करने का परिश्रम करेंगे, कि मूर्त्ति पूजा वेदों का मत नहीं है। और न ही देव पूजन की वेद आज्ञा देते हैं। और यह भी दिखला देंगे कि मूर्त्ति पूजा और देव पूजन किस प्रकार इस देश में प्रचलित हुई। इस समय हम इतने पर ही शान्ति करेंगे, कि निर्पक्ष विवेचकों की सम्मत्ति से प्रकट करें कि वेदों में किस प्रकार ब्रह्मज्ञान भरा है, और वेद स्थान २ में कैसे सुललित मनोहर वाक्यों से केवल एक परमात्मा की पूजा की शिक्षा देते हैं।

(१६) यूरपीयविद्वानों की सम्मति (अ) वेदों में मूर्त्ति पूजा का वर्णन नहीं और न मन्दिरों का (इ) वेदों में ब्रह्मज्ञान की शिक्षा ही है

बहुत से वरंच लगभग समस्त यूरपीय विद्वानों की सम्मति है कि वेदों में मूर्त्ति पूजा और मूर्त्तियों के लिये मन्दिरों का कुछ भी वर्णन नहीं, (देखो रमेशचन्द्र का इतिहास प्राचीन भारत, व मिसमैनिंग की पुरानी तारीख (Ancient and-Medieval India) आदि २) यह भी बहुत से यूरपीय विद्वान मानते हैं कि वेदों में अद्वैत की पूर्ण शिक्षा है, माना कि इसके साथ ही इनमें से बहुत से यह भी मानते हैं कि वेदों में अद्वेत की शिक्षा क्रमशः विदित होती है। उनका विचार है कि प्राचीन आर्य्य पुरुषों ने पहिले पहल प्रकृति के नियमों से चकित होकर उनके मूल कारण ईश्वर की ओर ध्यान किया। पहिले-पहिले उनका धर्म्म पञ्चभूत वा प्रकृति की पूजा करता था, और धीरे-धीरे वे प्रकृति की पूजन से उन्नति करते-करते जगत् के एक आदि कारण के विचार तक पहुंचे। मिस्टर दत्त अपनी तारीख भारत के पृष्ठ ११२ पर निम्नलिखित वर्णन करते हैं, "कि हमको भली भांति विदित है कि ऋग्वेद का धर्म्म प्रकृति पूजन हैं। जैसे कि आकाश

सूर्य्य प्रातः वायु और अग्नि आदि"। मिस्टर दत्त की सम्मति में पहिले-पहिले हिन्दुओं के पुरुषा इन देवताओं के गुण गाते थे और इन का पूजन करते थे। अब प्रश्न यह है कि जिन शब्दों से प्रकृति के नाना प्रकार के आदर्शों से आशय है, उनके क्या अर्थ हैं, क्या वास्तव में वेदों में ईश्वर के विचार के विना इन प्रकृति के आदर्शों और आकारों को देवता मानकर उनकी पूजन नियत की गई है, या यह कि यह शब्द परस्पर विरोधी हैं, और ईश्वर परमात्मा के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यह समय नहीं कि हम विद्या इतिहास और संस्कृत भाषा की तारीख के प्रमाणों से यह सिद्ध करें कि वास्तव में पिछला विचार ठीक है और पहिला विचार ठीक नहीं परन्तु तोभी यूरपीय विद्वान् विवेचकों की सम्मतियों से यह फल निकलता है कि पिछला विचार ठीक है। इसके कारण निम्नलिखित हैं। पहला यह कि यूरपीय विद्वान् इस बात को मानते हैं कि कई रीतियों पर प्रार्थना और स्तुति के मन्त्रों में किसी देवता के गुणवर्णन करते हुए गायक ऋषि ने इस प्रकार की भक्ति और शुद्धता को प्रकट किया है कि मानो उसकी दृष्टि में सृष्टि में और कोई देवता विद्यमान् न था और वह एक ही अद्वितीय परमात्मा का ध्यान बांधे हुए था।

यही कारण है कि बहुत से विद्वान् वेदों के धर्म्म को शुद्ध अद्वैत के सिवा और कुछ नहीं बतला सकते। वे वेदों के धर्म्म को (Polytheistic) अर्थात् बहुत से देवी देवताओं की पूजन नहीं बतला सकते, क्योंकि देवपूजन में देवताओं के भिन्न-भिन्न पद होते हैं, यद्यपि यह स्पष्ट है कि वेदों में जहां तहां यूरपीय महाशयों के वचनानुसार किसी देवता की स्तुति की गई है, तो उसको उत्तम से उत्तम गुण दिये गये हैं, और किसी दूसरे को उसके तुल्य या उससे अधिक नहीं वर्णन किया। जैसा कि इस कठिनता से निकलने के लिये प्रोफैसर मैक्समूलर साहिब ने वेदों के धर्म्म को (He, notheistic) वतलाया है, अर्थात् एक ही सामर्थ्य वाले भिन्न-भिन्न देवताओं का पूजन है। (देखोप्रोफैसर-मैक्समूलर साहिब की पुस्तक इण्डिया हमको क्या सिखला सकता है,

१ म, आवृति पृष्ठ १४५ से १४७) परन्तु ऋग्वेद की आभ्यन्तरिक शिक्षा जो प्रोफैसर मैक्समूलर की उक्त पुस्तक के ४४ पृष्ठ पर वर्णित है, हमको यह सिखलाती है, कि वेद मन्त्रों में एक परमात्मा और उसके गुणों का वर्णन ऐसी मनोहर रीति से स्पष्ट वर्णित है, कि उक्त प्रोफैसर जी के कथनानुसार अंजील या कुरान की किसी आयात से कम नहीं कहा जा सकता। जैसा कि ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ मन्त्र ४६ में वर्णन किया गया है, कि जो एक है उसको ऋषियों ने अनेक प्रकार से प्रकट किया है, जैसे कि अग्नि, यम और मातृश्वन् आदि।

इसी प्रकार १० मण्डल सू० ११४ के ५ म, मन्त्र में आता है "कि विद्वान् ऋषि अपने शब्दों से वहुत सी रीतियों से उसी को प्रकट करते हैं जो एक हैं।" आदि आदि। फिर उसी मडल के १२१ सूक्त में जहां परमात्मा का हिरण्यगर्भ के नाम से वर्णन किया है, इसको समस्त देवताओं का आदि देव एक ही पूजनीय देवता बताया है।

इससे बढ़कर अद्वैत उक्त प्रोफैसर के कथनानुसार अंजील में भी वर्णित नहीं है। इसी प्रकार १० मं० के ८२ वें सूक्त के २य, वा ३य, ऋचा अतीव मनोहर रीति से अद्वैत पुरुष का वर्णन करती है।

२ य, ऋचा का अर्थ यह है "कि वह जो समस्त सृष्टि का कर्त्ता अर्थात् विश्वकर्म्मा है, महान् है वह सबको उत्पन्न करता है, सबका आश्रय है, सबसे पर तर है, सर्व द्रष्टा है और सप्तर्षियों के स्थान से भी परे है" आदि॥

इसी प्रकार १२९ सूक्त में अतीव मनोहर और विचित्र वाक्यों में अद्वैत परमात्मा और उसकी रचना का वर्णन किया है॥

इन प्रमाणों से यह न समझना चाहिये कि ऋग्वेद में केवल इन्हीं मन्त्रों (स्थानों) में अद्वैत प्रतिपादित है, नहीं कदापि नहीं किन्तु सारा ऋग्वेद आदि से अन्त तक परमात्मा के अद्वैत स्वरूप और उसके गुणों और उसी के पूजन का प्रतिपादन करता है, ऋग्वेद में पूर्ण रीति से वर्णित है कि परमात्मा अद्वितीय है, उसके गुण अद्वितीय हैं

और केवल एक वही पूजनीय है। हमने केवल यह मन्त्र नमूने की रीति पर लिखें हैं जो यूरपीय विवेचकों ने आप चुने हैं, और उन्हीं का अनुवाद ऊपर लिखा है। ऋग्वेद के १० मण्डल हैं और जब पहिले मण्डल में ही प्रत्यक्ष रीति पर वर्णन कर दिया है कि परमात्मा एक है और अग्नि, यम, मातृश्वन् आदि उसी के नाम हैं, तो फिर बड़ा विस्मय यह है कि यूरपीय विवेचक महाशय किस प्रमाण से कह सकते हैं कि वेदों में प्रकृति पूजन का विधान है, और वेदों के ऋषियों को नेचर (प्रकृति) से परमात्मा का ज्ञान (प्रकृति के आदर्शों) से क्रमश: हुआ है। इसके सिवा उक्त विचार का यह भी अर्थ है कि वेदों से पूर्व आर्य्य लोगों को ईश्वर का ज्ञान न था। (क्योंकि यूरपीय महाशय तो वेदों को सृष्टि के आदि में उत्पन्न हुए २ नहीं मानते वरञ्च उनका विचार है कि ऋग्वेद जिसको वह सबसे पहिली और प्राचीन वेद पुस्तक मानते हैं, आर्य्यों के विद्वानों ने पंजाब के मैदानों और पहाड़ों में और पंजाब की नदियों के तटों पर रचा है)। हालांकि उन्हीं की पुस्तक (शब्द विद्या के उपदेश) Science of Language की २३८ पृष्ठ पर वर्णन किया है कि मध्य एशिया से अलहदा होने से पूव जब कि आर्य्य लोग एक स्थान पर रहते थे। परमात्मा को उस नाम से याद किया करते थे, जिससे कि वह आज तक बनारस के मन्दिरों, रोम के पूजनागारों, और ईसाइयों के गिरजाघरों में याद किया जाता है। (इस स्थान पर जो अंग्रेजी शब्द परमात्मा के लिये लिखा गया है उसका अर्थ प्रकाश और जीवनदाता का है।)

(१७) वैदिक धर्म्म पर कोई बाहर से प्रभाव नहीं पड़ा

हम ऊपर लिख आये हैं, कि यह बात मानी गई है, कि मनुष्य जाती के इतिहास में ऋग्वेद से प्राचीन और पुराना अन्य कोई लेख नहीं। केवल इतना ही नहीं, वरंच यह भी माना गया है कि वैदिक धर्म्म और वैदिक संस्कृतभाषा से, प्राचीन और आदि धर्म्म या भाषा का चिह्न भी नहीं मिलता है, और ना ही मिलने की सम्भावना है। इसके साथ यह भी माना गया है कि वैदिक धर्म्म और वैदिक भाषा

पर बाहर से कोई प्रभाव नहीं पड़ा (देखो प्रोफैसर मैक्समूलर की इण्डिया की १४० पृष्ठ) वैदिक धर्म्म के सिवा संसार के हर एक सम्प्रदायों ने कुछ २ अन्य सम्प्रदायों से सीखा है। ईसाइयों के पुराने नियम पत्र (अहदनामे) से पूर्व पैगम्बर इब्राहीम की शिक्षा विद्यमान थी और प्राचीन नियम पत्र में उसको प्रमाणिक माना है। ईसाइयों के नये नियम पत्र से पूर्व प्राचीन नियम पत्र विद्यमान था, और नया नियमपत्र पीछे बना। ईसाइयों की बाईबल या पवित्र अंजील पुराने और नये नियमपत्र के संग्रह का नाम है। मुसलमानों के कुरान से पूर्व अञ्जील और तौरेत विद्यमान थी, और कुरान की आयतों में अञ्जील और तौरेत का वर्णन है।

सो यह सब सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनकी नीव प्राचीन शिक्षा पर है, परन्तु इन सारे धर्म्मों से पहिले वैदिक धर्म्म विद्यमान था, ईसाइयों की अञ्जील से तो बौद्ध धर्म्म भी प्राचीन है, इसलिये कुछ आश्चर्य नहीं कि उन धर्मों पर बौद्ध धर्म्म का प्रभाव पड़ा हो और इनमें से कोई धर्म भी यह नहीं कह सकता कि मुझ पर बाहर का प्रभाव नहीं पड़ा। बौद्ध धर्म्म आप वैदिक धर्म्म का पुत्र है, चाहे वो अपनी शिक्षा धर्म्म भाव से यह कह दें, कि वह वैदिक धर्म्म की संतान अर्थात् आज्ञाकारी पुत्र नहीं साबत हुआ है तो कुछ झूठ नहीं होगा। चाहे यह कथन अन्य लोगों को कड़वा प्रतीत हो, परन्तु इसमें सदेह नहीं कि बौद्ध धर्म्म की शिक्षा में कोई नई सत्यता न थी, और ना ही बुद्ध देव ने नई सचाई का दावा किया है। जितनी नवीनता उस धर्म्म में थी उतनी ही भूल थी, मानो उस विषमिले भाव ने भारतवर्ष को नष्ट कर दिया। सो क्या विस्मय का स्थान है कि यदि फ्रांसीसी "जकालेट" आर्य्यवर्त्त को (Cradle Land of faith, कहता है अर्थात् वह

(नोट) यह विचार अतीव मनोहर है कि ईसाई धर्म्म पर प्राचीन भारत की धार्म्मिक शिक्षा का क्या प्रभाव पड़ा? परन्तु विस्तृति के भय से यहां पर नहीं लिखा, किसी दूसरी जगह लिखेंगे।

भूमि जिसकी गोदी में ईमान और धर्म्म ने शिक्षा पाई। सचाई धीरे-धीरे सभ्य पुरुषों पर अपना प्रभाव डालती जाती है और वह दिन दूर नहीं कि जब यह मान लिया जावेगा कि संसार में जितनी धार्मिक नहरें (कूलें) जारी हैं और मनुष्य मात्र के हृदयों को अपने शीतल जलों से ठंड करती हैं और शांतिदेती हैं सृष्टि में जितनी धर्म की नहरें जीवात्मा के बेल बूटों, बाग-बगीचों, महल-माडियों, को हरा भरा रख रही हैं वह सब वेदों के अनन्त श्रोतों से निकली हैं। क्या आश्चय्य है कि वह फिर इसी धरती पर लौटकर आवें कि जहां से कि पवित्र अवस्था में निकल कर गईं थी। और जहां पर कि वह मार्ग की धूली कूड़ा कर्कट मिट्टी ढीले आदि २ साथ लेकर उमड़ी हुई चली आती हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या उनमें इतना बल है, कि वह असली श्रोतः के पवित्र जल को गन्दा कर दें और मनुष्यों को वास्तविक श्रोत से हटाकर अपनी ओर खेंच लें। अपनी विचित्र यात्रा में उन्होंने अनेक प्रकार के रंग बदले हैं, यहां तक कि अब उनकी असलीयत और उत्पत्ति का पता लगाना भी कठिन है। परन्तु फिर भी उनका यह विचित्र सौन्दर्य्य बनावटी है इसलिये असली श्रोत में आकर वे नष्ट हो जाते हैं। मौलाना हाली ने क्या सत्य कहा है :--

वह दीन हिजाजी का बेवाक बेड़ा, निशां जिस का
अक्साय आलम में पहुंचा। मजाहम हुआ कोई खतरा
न जिसका, न अमां में ठिठका न कुलजम में झिझका।
किये पैंसपर जिसने सातों समुद्र वह डूबा दहानामें
गंगा के आकर।

भाव--वह इसलामी धर्म्म जो अनेक देशों में फैल गया जिसको कोई रोक न हुई, और जो न अम्मां में रुका न कुलजम में झिझका जो सातों समुद्र पार उतर आया वह भी गंगा में आ डूबा।

सर एलफ्रैड लायल भूतपूर्व लेफटीनैंट गवर्नर पश्चिमोत्तर प्रदेश ने भी जो संस्कृत विद्या में निपुण गिने जाते हैं, एक स्थान में ऐसा ही लिखा है।

(१८) वैदिक समय में देशीय और सामाजिक अवस्था

क्या जानें, आप यह प्रश्न करें कि वैदेक समय में देशीय और सामाजिक अवस्था क्या थी मेरा अपना यह विचार है कि हर एक देश व वंश की पुलीटीकल वा सोशियल अवस्था उसके धर्म्म और उसकी विचार का प्रतिबिम्ब है। जो मनुष्य केवल एक परमात्मा को मानता है और अपने तथा परमात्मा के बीच मुक्ति दिलाने वाला नहीं मानता. वह संसार में भी अपने प्राण और सर्वस्व किसी के आधीन नहीं कर सकता है। न किसी को भूल रहित मान सकता और न ही वह किसी पुरुष का यह अधिकार मान सकता कि उसको परमात्मा की ओर से मनुष्यों पर हकूमत करने और मनुष्य मात्र के प्राण व सर्वस्व धन का स्वामी बनने का अधिकार है। एक सच्चा अद्वैत वादी जिसका यह निश्चय हो कि वह बिना किसी की सिफारश के अपने ज्ञान और भक्ति के बल से परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है और अपने बनाने वाले के समीप जा सकता है, वह कभी राजाओं के जद्दी अधिकार को स्वीकार नहीं कर सकता और न ही वह मनुष्यों में इस प्रकार का भेद मान सकता है कि जिससे सदैव के लिये किसी विशेष श्रेणि को अन्य गणों पर हकूमत करने का अधिकार है। यह तो सर्वमान्य है, कि जात-पात का जो अन्तर आजकल हिन्दुओं में पाया जाता है, वैदिक समय में उसका नाम भी नहीं था, (देखो प्रोफैसर मैक्समूलर की "चीफ्स फ्राम ए जरमन वरकशाप" के २ भाग की १०७ पृष्ठ और प्रोफैसर लीवर का "इण्डियन लिट्रैचर" की ३८, पृष्ठ तथा वेलर और हंटर का भारत इतिहास आदि) परन्तु कौन नहीं जानता कि ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में जो १० म, मंडल में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र शब्द आते हैं, यह वही सूक्त है, जिसमें स्पष्ट रीति से उत्पत्ति का वर्णन है। इसका उत्तर यह है कि यह शब्द यौगिक विषय में आये हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र से विशेष गुण सम्पन्न मनुष्यों से आशय है उनकी जातियों से नहीं, वेदों में ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्द कई स्थान में आया है, और वह हर स्थान में क्षत्रिय से बलवान और

दृढ पुरुष और ब्राह्मण से विद्वान् और बुद्धिमान् ज्ञानी और वेदवेत्ता पुरुष से आशय लेते हैं ।

(१९) वैदिक समय की सभ्यता के विषय में यूरपीय विद्वानों की सम्मति

वैदिक समय का कोई इतिहास हमारे पास विद्यमान् नहीं और न ही हम किसी ऐतिहासिक प्रमाण से यह बता सकते हैं, कि उस समय देशीय या सामाजिक अवस्था क्या थी ? वेदों में जो कुछ वर्णन आता है, वह आज्ञा वा प्रेरणा की रीति पर है उसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह वैदिक समय का ठीक चित्र हमारे सामने खेंचता है। यूरपीय विद्वान् जो वेदों को ईश्वरकृत नहीं मानते, और ऋग्वेद आदि वेदों से इतिहास का काम लेते हैं, उनका कथन है, कि वेदों के समय में मनुष्य चिन्ता रहित थे, मानुषीय कर्त्तव्यों में जो बड़े-बड़े पेशे हैं, जैसा कि कृषिकर्म,(तिजारत) व्योपार, पोत सञ्चालन (जहाज रानी) आदि यह सब जानते थे । वरञ्च वेदों के कई मन्त्रों से विदित होता है, कि द्रव्य मुद्रा भी अब के समान उस समय प्रचलित थी। स्त्रियों को आज कल की अपेक्षा अधिक अधिकार थे। उनके लिये परदा नहीं था, वह शिक्षा की ऐसी ही पात्र थीं जैसे कि मनुष्य । स्वामी के मृत्यु के अनन्तर २य, विवाह की आज्ञा थी आदि २ ॥

(२०) ब्राह्मण ग्रन्थों का समय

भारतवर्ष के धार्म्मिक इतिहास में वैदिक समय के अनन्तर २य, वह समय आता है जिस समय में ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये । साधारण रीति से वेद के दो भाग समझे गये हैं, एक संहिता अर्थात् मन्त्र भाग और दूसरा उसका ब्राह्मण भाग । हम केवल मन्त्र भाग को ही असली वेद और ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं । ब्राह्मण भाग पीछे ऋषि प्रणीत हैं, भिन्न-भिन्न ऋषियों ने ग्रन्थ रचकर प्रत्येक वेद के साथ उनको लगा दिया है और इस प्रकार ४ वेदों के भिन्न-भिन्न ब्राह्मण हो गये, यूरपीय विद्वानों की सम्मति के अनुसार इन ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों की विधि वर्णित है । यज्ञ करने वाले विद्वान् पण्डितों के नाना प्रकार के

कर्त्तव्य, भिन्न-भिन्न रीतियों से वर्णन किये हैं, और इन कर्त्तव्यों के करते समय भिन्न-भिन्न मन्त्रों का पाठ नियत किया है। भारतवर्ष की धार्म्मिक तारीख में जो कठिनता पद पद में जान पड़ती है, वह इस समय से आरम्भ हो जाती है। वह यह है कि किसी समय का पूर्ण साहित्य विद्यमान् नहीं है। इस साहित्य को इतना समय व्यतीत हो गया है और इतने बड़े समय में कई भूकम्प पृथिवी पर आए हैं, इतने परिवर्तन हुए हैं कि मानों दिन रात्रि का भेद पड़ गया है। समय के इस अनर्थकारी परिवर्तनों ने धन, जवाहरात को नष्ट कर, स्त्रियों और बच्चों का ही विनाश नहीं किया, वरञ्च इस देश के प्राचीन विद्या कोषों को उजाड़ कर उजलती अग्नि की भेट किया है और कुछ नदियों के महाप्रवाहों में भेटा की रीति पर चढ़ा दिया है। हमारे जातीय साहित्य में अनेक ग्रन्थों की साक्षी मिलती है, परन्तु अब कुछ पता नहीं कि वह कहां गये? उनका क्या हुआ, उनका अब चिह्न तक नहीं रहा, प्रबल वायु वेग ने उनकी भस्म भी न छोड़ी कि हम किसी सामयक (वली) महात्मा के विद्या बल से उसको फिर जीवित करने का यत्न करते। इन ब्राह्मण ग्रन्थों में जो प्रतीव प्राचीन थे उनका तो कुछ पता ही नहीं मिलता। हां जो अधिक प्राचीन न थे उनमे से कुछ बचे हैं, उनमें से सबसे बड़ा और सबसे प्रामाणिक शतपथ-ब्राह्मण समझा जाता है कि असल वैदिक समय में और ब्राह्मण समय में कितना अन्तर था, और मध्य में भारत की क्या अवस्था थी। प्रोफैसर मैक्समूलर अपनी "फीजीकलरेलीजन" नामक पुस्तक के ७४ पृष्ठ पर लिखते हैं कि ऋग्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के समय के बीच में कई शताब्दियें व्यतीत हुई होंगी, यहां तक कि इस समय में कोई व्यत्यय देख नहीं पड़ता। (Complete break) हम नहीं कह सकते कि यह प्रणाली किस प्रकार टूटी। तो भी यह बात सत्य है, कि 'ब्राह्मण ग्रन्थों के रचने वाले वैदिक मन्त्रों के असली अर्थों को बिल्कुल भूल गये थे। प्राचीन,मन्त्रों के जो अनुवाद या अर्थ इन मनुष्यों ने किये वह अतीव विस्मय में डालने वाले है। उनमें यज्ञ का विचार

इतना बढ़ गया कि सब कुछ यज्ञ हो गया। यज्ञ प्रणाली में, ऐसी सूक्ष्मता दिखाई गई है कि मानों उस समय के विद्वानों को यज्ञ के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं था"

(२१) कर्म्म कांड भक्ति कांड और ज्ञानकांड

हम कह सकते हैं कि उक्त प्रोफैसर साहिब की उक्त सम्मति में अवश्य कुछ न कुछ सचाई है। वेद मन्त्रों के इस भाग को जिसको कर्मकांड बतलाते, हैं, इतनी अधिक पदवी दी गई कि यज्ञ विधि का पढ़ने वाला पाहीमां पाहीमां पुकार उठता है। वेदों के सीधे साफ और सच्चे धर्म्म को कर्म्म के जंजीरों में ऐसा जकड़ा कि असल के लुप्त होने का भय हो गया। यही वह समय है जबकि वेद के जानने वाले ब्राह्मणों ने जाति के प्रचलित परीक्षा को उन नियमों पर जमाना आरम्भ किया जिन पर कि वह पीछे ऐसे जम गये कि उनका उखड़ना असम्भव प्रतीत होता है। परन्तु अभी तक वेदों का असली धर्म देश में से लोप नहीं हुआ था। चाहे यज्ञ के सम्बन्ध में, मन्त्रों के विषय में, ब्राह्मणों में भेद पड़ता गया, तो भी भक्ति और ज्ञानकांड के दार्शनिक विचार से भरे हुए शुद्ध विषय अभी नितान्त लुप्त नहीं हुए थे। स्वतन्त्र मनुष्य, ऋषि मुनि, और विद्वान् कर्म्म कांड में ऐसे नहीं फंस गये थे, कि भक्ति और ज्ञानकांड को निरन्तर भूल जाते, कर्म्मकांड की आवश्यकता नियत रखकर भी उन्होंने उपनिषदों के भक्ति और ज्ञान से भरे हुए कोषों को भरपूर कर दिया। कर्म्मकाण्ड को मनुष्य के धार्मिक जीवन में उचित पद दिया गया और उसके लिये संक्षिप्त नियम बनाने के लिये सूत्र रचे गये। परन्तु साथ ही भक्ति और ज्ञानकाण्ड का निरादर नहीं किया गया। यदि हमको अपने विचार के अनुसार उस समय का चित्र खचने की आज्ञा दी जावे, तो हम यही कहेंगे कि वह यह समय था कि वीर आर्य्य मनुष्य एक ओर तो देशीय विजय में लगते थे अर्थात् चारों ओरसे अपने देशको शत्रुओं और पापियों से बचाते फिरते थे और दूसरी ओर उन्हीं वीरों के २य, भाई बिना जाति परीक्षा के (क्योंकि जाति अपनी भयानक अवस्था में अभी नियत नहीं हुई थी) ज्ञान और भक्ति

के बहुमूल्य मोती चुनने और इकट्ठे करने में लगे थे। गृहस्थी मनुष्य विद्वान् वेदवेत्ता ब्राह्मणों की सहायता से यज्ञ करते थे। ऋषि और संन्यासी अपनी सोच विचार और भक्ति से हमारे दिमागी और धार्मिक प्रकाश के लिये वेदों के अनमोल रत्नों को सर्व साधारण के समझने योग्य बनाते थे। विधि, विश्वास और भक्ति से किये हुए यज्ञ देश और जाति के लिये धार्मिक और सांसारिक उन्नति के दाता थे। आर्य लोग न तो सांसारिक विषयों में और न ही धर्म से अचेत थे, उनका जीवन एक ऐसी प्रणाली में ग्रंथित था, कि उनके समस्त कार्य मुक्ति तक क्रमशः ले जाने वाले थे।

(२२) जाति की दृढ़ पहिचान के लिये वाद विवाद

वैदिक समय और ब्राह्मण तथा उपनिषदों के समय में बहुत भारी अन्तर होगा। क्योंकि उन ग्रन्थों में वेद मन्त्रों के अर्थों पर विचार व विवाद का होना पाया जाता है। जिससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वैदिक संस्कृत और इन ग्रन्थों की संस्कृत में इतना भेद हो गया था कि ऋषि लोग परस्पर शब्दों के अर्थों के विषय में विरोध रखते थे। वैदिक धर्म्म के मानने वाले जात पात की पहिचान को जन्म से नहीं मानते थे परन्तु ब्राह्मणों और उपनिषदों में एक विचित्र विवाद देखने में आता है। श्रुति के जानने वाले, यज्ञ करने वाले ब्राह्मण इस बात का यत्न कर रहे हैं कि वह सबसे (श्रेष्ठ) माने जावें। उनके काम और उनके अधिकार, कर्त्तव्य और हक्क मारूसी बन जावें और उसी सीमाबद्ध को सदैव के लिये ब्राह्मण भाग का पद मिले, जिससे वह सारे वर्णों के सरदार व स्वामी बन सकें। वही श्रुतियों का प्रकाश करने वाले, वही श्रुति के जानने वाले, वही यज्ञ के कराने वाले, और वही विद्या के पढ़ाने वाले रहें। दूसरी ओर वंश का शूरवीर विभाग ब्राह्मणों के इस उच्चपद को मानने के लिये तय्यार न था, वह कहता था कि वेदों का ज्ञान और ब्रह्म का जानना किसी खास श्रेणी पर ही निर्भर नहीं हो सकता, सब को अधिकार है कि वेद को जाने और अपने आत्मा की उन्नति करे. जो जानता है उसका कर्त्तव्य है कि

औरों को बताये। उपनिषदों के समय के अन्त तक झगड़ा होता रहा। राजा जनक के धार्मिक सम्वाद बताते हैं कि ब्राह्मण लोग अपनी आशा में पूर्ण रीति से कामयाब (कृत कार्य्य) नहीं हुए। वरञ्च इसका फल यह हुआ कि लोग कर्म्मकाण्ड से हटकर सूफी फिलासफी की ओर ध्यान देने लगे। कर्म्मकाण्ड के विपरीत एक ऐसा प्रवाह चला कि जिसने भक्तिकाण्ड को भी अपने भंवर में ले लिया, ब्राह्मणों ने अपनी उत्कृष्टता और उच्चपद नियत करने के लिये इतने यत्न किये कि दूसरे मनुष्यों ने हर प्रकार के जाति पहिचान और विभाग को ही तोड़ देना चाहा।

(२४) ब्राह्मण ग्रन्थों के समय में सोशिअल और पुलीटीकल अवस्था

उस समय की सोशिअल और पुलीटिकल अवस्था का चत्र हमको रामायण और महाभारत से मिलता है। रामायण का सोशिअल चित्र सच पूछो तो सोशिअल स्वर्ग का नमूना दिखलाता है सचमुच उस समय भारत भूमि स्वर्ग भूमि थी। यह धरा कर्म्म भूमि थी और धर्म्म भूमि भी थी। प्रत्येक मनुष्य माता पिता, पुत्र वा पुत्री, पती व स्त्री, राजा व प्रजा, तथा गुरु और शिष्य अपने अपने उद्देश्य जानते थे और उन पर आचरण करते थे। सारे देश में आर्य्यों का राज्य था, मनुष्यमात्र उत्तम अवस्था में थे, और निश्चिन्त थे, चारों ओर राज्य कर रहे थे, पश्चिमोत्तर में लगभग सारा अफगान स्थान और क्या जाने कुछ तुरकस्थान का भाग आर्य्यों की राजधानी में था। भारतवर्ष धन की कान थी और माला माल था। न किसी के धावे का भय था, और न किसी अन्य जाति की चिन्ता थी। वर्णों के स्वाभाविक विभाग जिसने अभी अपना पूर्ण पांव नहीं जमाये थे, लोगों को अपने अपने धर्म्म कर्म्म पर नियत रक्खा हुआ था। प्रत्येक मनुष्य अपने धर्म्म और स्वभावानुकूल जातीय और देश के कामों में भाग लेता था। वह यह समय था कि जिसने शस्त्र विद्या में द्रोणाचार्य्य जैसे अद्वितीय गुरु और अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर और कर्ण जैसे सुयोग्य प्रसिद्ध योधा धनुष

जा मिलता है। इस विवाद का फल यह होता है कि सर्व साधारण का मन कांप उठता है और परिवर्तन की इच्छा दृढ़ होती जाती है। अर्जुन की उस समय की अवस्था वास्तव में आर्य सन्तान की सामान्य अवस्था का चित्र ठीक खेंचती है। श्रीकृष्ण भगवान् वेदों के धर्म की अपने समस्त व्यवहारों में सविस्तर वर्णन करने की आवश्यकता जिताने की जरूरत समझते हैं। महाभारत की कथा पूर्ण रीति से यह प्रकट करती है, कि मनुष्य वेदों के स्थान में वेद के अनुयायी शास्त्रों की शरण में आते जाते हैं। वेदों के स्थान में दूसरे शास्त्र जो कि वेदों के प्रमाणों से रचे गये थे मनुष्यमात्र के लिये वेदों के तुल्य वरं उनसे भी अधिक समझे जाने लगे। असली श्रोत के स्थान में वह भिन्न२ नालियें व नहरें वर्त्ताव में आने लगीं, कि जिनमें कुछ विभाग असल श्रोत के जल का माना जाता था। सीधे ईश्वर के ज्ञान भण्डार से शिक्षा और आहार ग्रहण करने के स्थान में मनुष्य के स्थापित किये भण्डारों की ओर लोगों का मन रुचित होता जाता था, धर्म तृष्णा की शान्ति के लिये, ईश्वर के वाक्यों के स्थान मनुष्य कथनों का सहारा लिया गया। भाषा भी वास्तविक भाव को छोड़कर कल्पित नदी से नालियोंमें बहनेलगी। यथा सम्भव निरुक्तकार वेदों के असली अर्थों को वैदिक संस्कृत के नियमों से प्रकट करने का यत्न करता है, परन्तु भाषा संसार की लहरों में बहती चली जाती है, व आगा देखती है न पीछा। मनुष्यों का विचार इस ओर बढ़ता जाता है, कि ब्राह्मण ग्रन्थ और उपनिषदों को भी श्रुति के समान समझा जावे और उपनिषदों को वेदों का सार और वेदों का अन्त माना जावे।

(२५) षट्शास्त्र

वंश के धर्म और भाषा की इस अवस्था में सांख्यकार (कपिल-मुनि) उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य की बुद्धि की स्वतन्त्रता को जाग लगाते हैं, परन्तु वेदों के आश्रय से बाहर नहीं जाते, उनके मत में बुद्धि को अपने खुले पक्षों पर उड़ने की आज्ञा है, परन्तु वेदों से बाहर होने की आज्ञा नहीं। मनुष्य की आत्मा जहां चाहे दौड़े, परन्तु वेदों के

आश्रय से बाहर न जावे।

न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता मानों उक्त मार्ग पर चलने वाले ज्ञान और भक्ति के प्यासे मनुष्यों के लिए मार्ग में कुएं लगाते हैं, जीवात्मा को विना रोक इन कूपों जल पीने की आज्ञा देते हैं, परन्तु वेदों के आशय से बाहर नहीं होते। और न बाहर होने की आज्ञा देते हैं, मानो स्वतन्त्र मार्ग पर चलने वालों के लिए एक राज मार्ग बनाते हैं, और इस बात पर भी ध्यान रखते हैं कि वे अन्त में ठोकरें खाकर एक दूसरे से न टकरावें, और इधर उधर ही गिरने न पावें, घुड़दौड़ के लिए मैदान खुला है, साफ है, चौड़ा है, विस्तृत है, लम्बा है, जितने चाहें घोड़े दौड़ लें, सरपट दौड़ें। मन के वेग से जितना चाहें दौड़ें किसी प्रकार की चिन्ता न रख कर कि मैदान चौड़ा और मार्ग तंग होने से मन माना न दौड़ सकें। चाहे इतना विस्तृत है परन्तु फिर भी सीमा अवश्य नियत है, यहां तक तो सब ठीक था परन्तु ईश्वरीय वाक्यों के विना किसमें सामर्थ्य थी, कि मनुष्यों की बुद्धियों को सीमा बद्ध कर सके। सीमा तो उन्होंने नियत की परन्तु उस सीमा को लोगों ने नेत्रों से दूर कर दिया, या यह समझें कि वह सीमा समय के प्रताप से मनुष्यों की दृष्टि से छिप गई। वास्तविक सीमा के स्थान में कल्पित सीमा की भ्रान्ति ने सीमा बद्ध होने के विचार को ही तोड़ दिया। ईश्वर का ज्ञान मनुष्यों की दृष्टि से लोप हो गया तो ईश्वर के फल अस्तित्व और आवश्यकता पर ही आक्षेप होने लगे। जिसका यह फल हुआ कि देश में धार्मिक कोलाहल मच गया, चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति फैल गई, धर्म के स्थान में केवल फिलासफी ही छटने लगी।

(२६) महात्मा बुद्ध की उत्पत्ति

इस अशान्ति और कोलाहल के समय एक राजपुत्र ने गृहस्थ के बन्धनों को तोड़ ज्ञान की तलाश में जंगलों का मार्ग लिया, और देर तक तप व जप के करके परिणाम यह निकाला कि न तप से और न कर्म से मनुष्य के आत्मा को शान्ति मिलती है समस्त संस्कार, जीवन की सारी विधि, भक्ति का कठिन मार्ग, उसकी दृष्टि में सब निकम्मे

से दिखलाई देने लगे। न उपनिषदें और न दर्शन उसके मन को स्थिर कर सके। अन्त को उसको ज्ञान हुआ तो इतना कि वर्त्तमानिक धर्म वा मनुष्यों को कुमार्ग में ले जाता है, वास्तव में न तो कोई धर्म हैं और न कर्म, न कोई धर्म के बतलाने वाला है, और न कोई कर्मों के फल का दाता है। विचार करके देखो तो यही महात्मा बुद्ध की शिक्षा का आरम्भ है, उन्होंने धार्मिक कर्म और भक्ति के स्थान में जीवन की नेकी को स्थापित कर दिया। लोगों को केवल धर्म सम्बन्धी कर्मकाण्ड, जिसमें मनुष्य की आयु का एक बड़ा भाग लग जाता था, उसे ही नहीं हटा दिया वरंच उनको भक्ति की प्रेम तरंगों से भी निकाल दिया। उनकी दृष्टि में जीवन के उन तत्वों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं, जो कि धर्म प्राण हैं। जब कोई उनसे पूछता था कि मनुष्य किस प्रकार बना, निर्वाण के पीछे इसका क्या होगा, तो उत्तर यह मिलता था कि यह प्रश्न हमारी समझ से बाहर है, और हमारे पास इनका कोई उत्तर नहीं। महात्मा बुद्ध की शिक्षा में न परमात्मा है, और न आत्मा हैं, न धर्म है और कर्म, न ईश्वर भक्ति है न ईश्वर प्रेम, न फिलासफी हैं और न ज्ञान। उनकी शिक्षा का सार यह है कि मनुष्य संसार में भलाई करे, बुराई से बचे, अपनी वासनाओं को न्यून कर दे, उनको मार दे। यहां तक कि वासना का लेश भी हृदय में न रहे क्योंकि इससे ही पुनर् उत्पत्ति होती है। इस शिक्षा का आवश्यक फल यह था कि बुद्ध की शिक्षा में जात पात की कोई पहिचान न रही, उसकी शिक्षा आरम्भ से जात पात के बन्धनों से विमुक्त थी, उसके समीप ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सब एक से थे। हर एक को अधिकार था कि नेकी करे बुराई से बचे। अभिलाषाओं (वासनाओं) को मार कर निर्वाण की प्राप्ति का यत्न करे। उसके समीप न किसी प्रकार का विशेष कार्य न किसी प्रकार के विशेष संस्कार, न कोई विशेष कर्तव्य, मनुष्य को दूसरे मनुष्य से उच्च बनाने के लिये आवश्यक थे।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा में परमात्मा ही की शिक्षा न थी, तो परमात्मा के ज्ञान की कहां हो सकती थी। सत्य तो यह है कि महात्मा

बुद्ध ने इन प्रश्नों को समाधान करने के योग्य न समझ कर उनको अशान्तिदाता समझा और इसी लिये मनुष्यों को दार्शनिक विचारों में न जाने दिया।

(२७) बुद्ध की शिक्षा का प्रभाव (अ) धार्मिक

समस्त धार्मिक बन्धनों से स्वतन्त्र करके सब मनुष्यों को समान पद पर लाकर महात्मा बुद्ध ने नेक बनाने के लिये प्रेरणा की। यह कब सम्भव था कि उनके जीवन की आकर्षण शक्ति, शिक्षा की सरलता नेकी की प्रेरणा, अपना प्रभाव किये बिना रहती। धार्मिक प्रश्नों में डूबे हुए अशान्त आत्माओं ने महात्मा बुद्ध की सीधी सादी शिक्षा का आश्रय लिया। समस्त दार्शनिक विचारों को, आत्मा और परमात्मा के समस्त गुप्त भावों को, गत और आगामी जन्मों के प्रश्नों को, दण्ड और फल की आशा को छोड़ कर व्याकुल आत्मा ने बुद्ध के धर्म में (यदि हम बौद्ध धर्म को धर्म कह सकते हैं) शामिल होने लगे। जिन बलवान् और बुद्धिमान् मनुष्यों ने विना अधिकार राजाओं की गद्दियों पर अपना कब्जा करके राज्य ले लिया था, उन्होंने महात्मा बुद्ध की शिक्षा से अपने स्वतन्त्र के राज्य को नियत करके बौद्ध धर्म को अंगीकार किया और उसके प्रचार में तत्पर हुए।

(इ) पुलिटीकल

पहले पहल देश की अशान्ति में अन्य वंशों के योधाओं को आर्यों के देश पर चढ़ने का साहस हुआ, आर्यावर्त्त के इतिहास में सबसे पहला धावा बाहर वालों का इस धार्मिक अशान्ति के समय हुआ, और असर केवल उत्तरीय पहाड़ियों पर और सिन्ध में किनारों तक ही रहा। द्वितीय, पुलिटीकल वार भी इसी समय में हुई। सिकन्दर आजम अपनी वीर सेना को लेकर चढ़ आया, परन्तु अभी स्वतन्त्रता में रहने वालों के पांवों में जंजीरें जकड़ी नहीं गई थीं। चाहे आत्मा में अशान्ति थी, परन्तु शरीरों में बल था, देश हित, धर्म हित और स्वतन्त्रता के लिये सामना किया और सिकन्दर आजम की उठती हुई लहर को दरिया सतलुज के किनारों पर रोक दिया। बाहर के पुलीटीकल धावे सतलुज

से उरली ओर न आने पाये, वहीं निवृत्त हो गये परन्तु आभ्यन्तरीय दशा अपने रूप में न रही।

(२८) बुद्ध धम का पुलीटीकल बल

महात्मा बुद्ध के अपने प्रचार ने, उसके शिष्यों और प्रचारकों के यत्न ने और उनके उपदेशकों और साधुओं की सीधे सादे जीवन ने अपना प्रभाव किया और अन्त को जो न्यूनता थी वह राज बल से पूरी हो गई। नई शिक्षा के जोश ने, और जीवन की पवित्रता के मार्ग पर जाने की प्रवल इच्छा ने, लोगों के मनों को आकर्षण कर लिया और सारे भारत में बुद्ध की शिक्षा ने केवल धर्म पद को ही न रोका वरंच पुलीटीकल बल भी उसी के अधीन हो गया। आर्यावर्त्त बौद्धों की राजधानी बन गया, और कुछ समय के लिये विचित्र प्रभा और अद्भुत प्रकाश उससे होने लगा। बुद्ध की शिक्षा हिमालय के बर्फ वाले शिखरों से पार हो गई, पंजाब के गहरे नदों से भी पार उतर गई, यहां तक कि समुद्र की लहरें भी उसके वेग को न रोक सकीं। पुलीटीकल वेग ने धार्मिक वृद्धि का आश्रय लिया और उसके अधीन हो छाया के अनुसार साथ २ चलने लगा। बौद्ध राजा महाराजाओं ने अपनी पुलीटीकल शक्ति को उत्तर में बाखतर्या और चीनी तातार तक, उत्तर, पश्चिम में हिन्दुकुश के हिममय शिखरों तक, दक्षिण में दक्खन वरं लंका तक और पूर्व में आसाम तक फैला दिया। ५०० वर्ष बौद्ध धर्म की शिक्षा पूर्ण यौवन में रही, और बुद्ध का पुलीटीकल बल प्रतिदिन उन्नति पाता रहा। और इस समय में शिल्प विद्या की भिन्न २ शाखाओं की भी यथोचित उन्नति हुई।

(२९) बौद्ध धर्म की हानि

इस धर्म भूमि में व वेद भूमि में अनीश्वरवादी शिक्षा कब तक बल सहित रह सकती थी, कब तक मनुष्य अपनी बुद्धि और नेकी के सहारे शान्ति पा सकते थे, मनुष्य का अभिमान कब तक प्रबल रह सकता था, यह कब हो सकता था कि जिन मनुष्यों के रोम-रोम में ईश्वर परमात्मा की भक्ति और प्रेम रस रूपी अमृत भरा हुआ था,

वह सदैव के लिये अनीश्वरवादी धर्म के पंजे में फंसे रहते। अन्त को बौद्ध धर्म की शिक्षा पुरानी हो गई, महात्मा के जीवन की आकर्षण शक्ति जाती रही, मनुष्यों को विदित हो गया कि मनुष्य बुद्धि बल से चलाई हुई शिक्षा ने मनुष्यों को जिन बन्धनों से छुड़ाने के लिये प्रण किया था उसने उनको आगे से भी अधिक बन्धनों में फंसा दिया है। संस्कारों, रिवाजों और कर्म काण्ड में घृणा उत्पन्न करनी बौद्ध धर्म का उद्देश्य था। बौद्ध धर्म आप ही थोड़े से समय में अनेक रसमों की भेटा--हुआ। शास्त्रों के बाद विवाद से हटाना बौद्ध धर्म का २य, उद्देश्य था, परन्तु अभी, थोड़ा सा भी समय व्यतीत नहीं हुआ था, कि बौद्ध धर्म के शास्त्र बरसाती जीवों के समान फैलने लगे और वही झगड़ा आरम्भ हो गया। जाति भेद से आर्यों को निकालने की बुद्ध ने प्रतिज्ञा की थी, परन्तु थोड़ा भी समय न व्यतीत हुआ कि बौद्ध लोगों में पहिले से भी अधिक पदवियों और श्रेणियों की प्रथा चल पड़ी। बुद्ध की शिक्षा पर मत-मतान्तर नियत हो गये। उपदेशकों और प्रचारकों में भेद पड़ने लगा। ईश्वर और ईश्वर ज्ञान मानने वाले मनुष्यों के लिये तो कुछ सहारा था परन्तु बौद्ध धर्मियों का वाद विवाद के समय और फूट के समय कोई सहारा न रहा। परमात्मा के स्थान में महात्मा बुद्धदेव का पूजन होने लगा। परमात्मा तो निराकार थे, जिनके गुण असंख्य होने से मनुष्यों का उद्देश्य अतीव उच्च रह सकता था, और उसके नीचा होने का किञ्चित् भय नहीं था, परन्तु महात्मा बुद्ध अन्त में तो एक मनुष्य ही और अनन्त नहीं हो सकते थे, इसलिये जिन मनुष्यों ने ईश्वर के स्थान में एक मनुष्य का पूजन आरम्भ कर दिया उनका उच्च पद अवश्यमेव अधः पतित होना ही था। निराकार अनन्त अनादि परमात्मा के पूजन के स्थान में बौद्ध धर्म ने देहधारी मनुष्यों के लिये मनुष्य पूजा और मूर्त्ति पूजा स्थापित कर दी। और जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हुए तो उनके शरीर की मूर्त्ति बनाने की आवश्यकता हुई। ईश्वरोपासक आर्य बौद्ध धर्म की कृपा से मूर्त्ति पूजक बन गये। आर्यावर्त के इतिहास में सबसे पहिली वार मूर्त्ति

पूजा का व्यवहार बौद्ध धर्म ने प्रचलित किया, उसकी छत्र छाया में मूर्त्तियें बनीं, उसी की शिक्षा से मूर्त्तियों के लिये मन्दिर बनाने आरम्भ हुए।

(३०) फिर वदिक धर्म सिर उठाता है

परन्तु इस समय में वैदिक धर्मानुयायी नष्ट नहीं हुए, किन्तु कुछ काल के लिये बौद्ध धर्म के नीचे दवे रहे परन्तु कभी अपने उद्देश्यों से शिथिल नहीं हुए। पहिले तो बुद्ध के फिलासफी की वाद-विवाद से पहले ही पातञ्जल, जैमिनी और व्यास जी ने भक्ति, प्रेम और कर्म-काण्ड के दार्शनिक विचार से सांख्य वैशेषिक और न्याय की ज्ञान और विद्या से भरपूर फिलासफी को पूर्ण कर दिया था, जिसके सहारे से वैदिक मत के अनुयायियों ने बुद्ध के अनीश्वर वादी धर्म का खण्डन आरम्भ कर दिया। बौद्ध धर्म के अनुयायी तो महात्मा बुद्ध और अन्य महात्माओं को पूर्ण पुरुष के नमूने पेश करते थे। वैदिक मतानुयायी श्रीराम और श्री कृष्ण को उनसे उच्च पदवी देकर अवतार प्रकट करने लगे। वाद-विवाद में नियम है कि उच्चयुक्ति में तूं तूं मैं मैं पर आ जाते हैं और अन्त में तुम ऐसा करते हो और तुम ऐसा करते हो, इस पर झगड़ा समाप्त होता है। बुद्ध और वैदिक धर्मानुयायियों के वाद विवाद भी लोगों में यह ही चित्र खैंचने लगे।

जहां एक ओर बुद्ध, लोगों के हृदय में विराजमान था, वहां दूसरी ओर परमात्मा से हट कर वैदिक पण्डितों ने परमात्मा के अवतार बनाने आरम्भ कर दिये, बुद्ध के स्थान में उन अवतारों की अद्भुत् मूर्त्तियें, सर्व साधारण मनुष्यों के लिये नियत की गईं। बहुत देर तक यही वाद विवाद होता रहा और वैदिक मत वालों ने वाद बिवाद के लिये जो शस्त्र बौद्धों से छीने थे उनको अपनी रक्षा के लिये काम में लाये। यहां तक कि आकार और मूर्त्ति के परिवर्तन से यह शस्त्र उन्होंने अपने बना लिये।

सर्व सावारण मनुष्यों को बहकाने, उनकी दृष्टि में अपने धर्म को मनोहर बनाने के लिये पुराणों की कथायें घड़ी जाने लगीं और इस

प्रकार पौराणिक साहित्य का प्रारम्भ हो गया ।

(३१) बौद्ध धर्म और वैदिक धर्म्म में महासंग्राम

पाठकगण ! आप इस वर्णन से यह सार न निकाल लें कि बौद्ध धर्म चुपके से या अमन से भारत में फैल गया और फिर चुपके से या अमन से निकल गया, नहीं, जैसे महा संग्राम (धार्मिक और जंगी) वैदिक धर्म पर विजय पाने के लिये हुये थे, वैसे ही जाते समय भी संग्राम हुए । सैकड़ों मनुष्यों का इस घरेलू युद्ध से नाश हुआ, राजा महाराजा इस घरेलू युद्ध में नष्ट हुए, कई वंशें विनष्ट हो गईं, कई देश से निकाले गये । महात्मा बुद्ध का अमन देने वाले, जीवन में नेकी फैलाने वाला धर्म चुपके से शान्त नहीं हुआ और न कभी ऐसी विजय पाई कि वैदिक धर्म का नाश कर दे। अन्त को कई सदियों के नन्तर फिर वैदिक धर्म ने सिर उठाया और इस अनीश्वर वादी शिक्षा को कुचलना आरम्भ किया, आस्तिकता और अनास्तिकता में यह युद्ध बड़े जोर में था, कि दो आश्चर्य्य आत्मा मैदान में आ गईं और उन्होंने आते ही विवाद का ढंग पलट दिया ।

(३२) श्रीकुमारिल भट्ट और स्वामी शंकराचार्य्य

महान् आत्मा श्रीकुमारिल भट्ट और श्री स्वामी शंकराचार्य जी थे । अन्तिम एक ऐसा पुरुष है कि जिसके नाम को भारत का बच्चा-बच्चा जानता है, पहिले महात्मा ने जैमिनी की उत्तर मीमांसा पर और स्वामी शंकराचार्य जी ने व्यास जी के वेदान्त सूत्रों पर अतीव विद्वत्ता की टीकायें लिखीं और वेदों का झण्डा ऊंचा किया । शंकर स्वामी जी ने ३५ वर्ष की आयु में बड़ी भारी उत्कृष्टता का परिचय दिया और देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बौद्ध धर्म को परास्त करके ठीक युवा अवस्था में स्वामी शंकराचार्य इस संसार से पधार गये । शंकर स्वामी उस संप्रदाय की नींव डालने वाले गिने जाते हैं, जो आजकल नवीन वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है, उन्होंने उपनिषदों को वेदों में शामिल समझ कर उनको वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध किया और उनके सहारे वेदान्त सूत्रों पर भाष्य किया । श्री स्वामी शंकरा-

चार्य जी ने बौद्ध धर्म का खण्डन करके ईश्वरवादी धर्म का प्रचार किया, और ईश्वर के प्रेम में आप यहां तक मग्न हुए कि ईश्वर अर्थात् ब्रह्म और जीव के एक होने का उपदेश किया। इसमें संदेह नहीं कि उनकी फिलासफी अतीव उच्च और मनोहर है उनकी युक्तियें भी देखने में बड़ी प्रबल हैं, परन्तु विचार कर देखें तो इस उपदेश की शोभा, फिलसफी की उच्च दार्शनिकता छोड़ कर जीव और ब्रह्म की एकता, धर्म में से वास्तव में प्राण निकाल लेती है, यदि सब कुछ एक ही है तो पूजा किसकी ? भक्ति किसकी और प्रेम किससे ? फल (नरक स्वर्ग) का नियम जड़ से उखड़ जाता है। सृष्टि का समस्त प्रबन्ध बिगड़ जाता है। जीव और ब्रह्म की एकता एक विचित्र फिलासफी है, परन्तु धर्म नहीं। न वेद जीव ब्रह्म की एकता को प्रतिपादन करते हैं। स्वामी शंकराचार्य जी ने वेदों का आश्रय तो अवश्य लिया परन्तु मन्त्र भाग को छोड़ उपनिषदों को ही वेद मान लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि चाहे बौद्धधर्म देश से निकल गया और कुछ समय के लिये वैदिक धर्म की जय हो गई और आस्तिकता का थोड़े से समय बोल बाला हो गया। परन्तु वास्तविक वैदिक धर्म फिर स्थापित नहीं हुआ। वेदों का मन्त्र भाग न लोगों के सामने आया और न उन्होंने उनका आश्रय लिया। ईश्वर के ज्ञान और मनुष्यों के बीच वह परदा बराबर बना रहा। चाहे नाम मात्र के लिये वह ईश्वर के ज्ञान के आश्रय हो गये। स्वामी शंकराचार्य ही यदि आर्य संतान को वेद मन्त्रों के शुद्ध पवित्र श्रोत तक न ले जा सके तो और किसकी सामर्थ्य थी कि इस महान् कार्य को करता। वेदों का मन्त्र भाग लोगों की दृष्टि से निरन्तर छिपा रहा। और वेद ज्ञान से उनका पूर्व के समान सम्बन्ध न हुआ, जिसको छोड़कर आर्य सन्तान धर्म के उच्च पद से गिरी थी। स्वामी शंकराचार्य आधे मार्ग तक चलकर ठहर गए। और आधे मार्ग में भी उन्होंने ऐसी फिलासफी भर दी कि लोगों के लिये छोटा मुंह बड़ी बात है, कि स्वामी शंकराचार्य जी की शिक्षा पर छिद्रान्वेषी बन विवाद करें, परन्तु प्रोफैसर गोल्डस्टकर का निम्न-

लिखित वाक्य सुवर्ण के अक्षरों में लिखे जाने के योग्य है।

"जो लोग धर्म संशोधन करने में अनुद्योगी हैं और हिन्दुस्तान की पुलीटीकल उन्नति को मन से चाहते हैं, जिनका यह विचार कि भारत निवासियों का धर्म कुछ ही रहे, परन्तु वह पुलीटीकल रीति से एक वंश बन जावें, और उनको वही अधिकार मिल जावें जो बरतानियां कलां (विलायत) को प्राप्त हैं" उनको उक्त प्रोफैसर खेद से याद दिलाते कि आधुनिक समय के देशोन्नति अभिलाषी हिन्दु रूम की हानि की कथा भूल जाते हैं और इस बात को दृष्टि से उड़ा देते हैं, कि जो वंश धर्म से पतित हो वह कभी पुलीटीकल अवस्था में उन मनुष्यों की तुलना नहीं कर सकता, जिनके समीप उनके (अर्थात् धर्म के गढ़े में गिरी हुई वंश के) धार्मिक नियम उपहास्य जनक हैं। इन उन्नति के अभिलाषी नारों को स्वामी शंकराचार्य का प्रमाण देने से कुछ लाभ नहीं हो सकता। कहा जाता है कि उस समय (जिसको लगभग १००० वर्ष हुआ) जब कि उस महान् रीफार्मर और फिलास्फर ने उन नास्तिकता के विचारों के विरुद्ध युद्ध किया, जो कि उस समय भारत के चारों ओर फैले हुए थे। तो उसने आप कई संप्रदाय और मत मतान्तर नियत किये, और उन मनुष्यों को जिनकी बुद्धियें इस योग्य नहीं थी कि निराकार परमात्मा को समझ सकें, इस बात की आज्ञा दी कि वह उस समय प्रचलित देवी देवताओं का पूजन करें, सो यदि स्वामी शंकराचार्य जैसे पक्के अद्वैतवादी ने (जो ईश्वर को समस्त जगत् का एक कारण और सर्वाधिष्ठाता मानता था) इस बात की आज्ञा दी और उपदेश किया कि भिन्न-भिन्न रीतियों से विष्णु और शिव की पूजा अद्वैतवाद के विरुद्ध नहीं है, तो क्या आवश्यकता है कि अब विद्यमान् धर्म पर धावा किया जावे "प्रोफैसर गोल्डस्टकर" इसका यह उत्तर देते हैं कि "शंकर स्वामी जो कि भारत के मध्य समय के अति प्रसिद्ध और प्रतापी विद्वानों में से एक था, आप हर एक ऐसी पूजा के विरुद्ध था जो वेदों के अनुकूल न थी, (One of the most zeal ousdenouncers of all worships if repngnant to the Vedas)

उसका उद्देश्य यह था कि एक निराकार जगत् कारण परमात्मा की पूजा फैलाई जावे। अपने वेदान्त भाष्य में उसने यह सिद्ध करने का यत्न किया है, कि वैदिक साहित्य में जो आकाश के देवी देवताओं के नाम आते हैं, वह वास्तव में अलंकार रूप से परमेश्वर के नाम हैं, उपनिषदों के भाष्य में ऐसे देवी देवताओं को दूतों Demons से उपमा देते हैं, और मनुष्य वंश का शत्रु बताते हैं, परन्तु यह कथन सत्य है कि उसने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के देवी देवताओं के पूजन को अनुचित न समझा (परन्तु यह याद रखना चाहिये कि जनश्रुति है, इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं) तो इससे सिद्ध होता है कि उनका ऐसा करना यदि निर्बलता और धार्मिक विवाद न समझा जावे, तो अधिक से अधिक एक शिक्षा सम्बन्धी की परीक्षा तो मानी जाती है। जिसके विषय में उनका यह विचार था कि क्या जाने उससे वह उद्देश्य पूर्ण हो जिसका कि उनके मन में चित्र खैंचा हुआ था। हमारे विचार में १००० वर्ष स्वामी शंकराचार्य जी की भूल साबित करने के लिये पर्य्याप्त समझना चाहिये। यह परीक्षा की कसौटी पर रक्खा गया तो अतीव बुरे प्रकार से हानिकारक सिद्ध हुआ। और यदि ऐसे ही तजरबे में १००० वर्ष और व्यतीत हो जावे तो हमको पूर्ण विश्वास है कि इस १००० वर्ष के समाप्त होने पर कोई हिन्दू शेष न रहेगा, जिससे इन विचारों को झूठा या हानिकारक साबित करने की आवश्यकता रहै। (fallacious and mischievous)

प्रोफैसर गोलडस्टकर के उक्त शब्द प्रकट करते हैं कि बौद्ध धर्म से युद्ध करने वाले उन्नति के अभिलाषी हिन्दुओं ने पौराणिक मत मतान्तरों का सामना न करने में कैसी भूल की, और उस भूल से कितनी हानि आर्य संतान को भुगतनी पड़ी। यदि स्वामी शंकराचार्य अपने उच्च स्वर को उन मत मतान्तरों के विरुद्ध उच्चारण करते तो शायद आर्य सन्तान इस हानि से बच जाती, जो कि स्वामी जी के समय से कुछ पीछे भारत और भारत निवासियों पर पड़ी। परन्तु ब्रह्म और जीव की एकता को मानने वालों के लिये एक सच्चे परमात्मा

की उपासना नियत करनी कठिन थी। और आर्य संतान के भाग्यों मे ही यही लिखा था कि वेदों के नाम पर वेदों का आश्रय लेकर भी वह वेदों के धर्म से उतने ही दूर रहें जितने कि वह वेद को छोड़कर आस्तिकता से दूर हो गये थे। हा खेद !!!

(३३) पौराणिक पुलीटीकल बल

हम ऊपर लिख आये हैं कि बौद्धों से युद्ध करते हुए ईश्वरवादी पौराणिकों ने बौद्ध धर्म के शस्त्र ग्रहण किये। पौराणिक धर्म स्वामी शंकराचार्य की उत्पत्ति से पूर्व ही प्रबल हो गया था। आस्तिकता का जो प्रकाश पौराणिक धर्म ने व्याकुल आर्य संतान को दिखलाया था उसने कुछ काल के लिये असर उत्पन्न किया और पौराणिक धर्म ने बौद्ध धर्म को निकाल कर बौद्ध धर्म का पुलीटीकल बल भी छीन लिया। कुछ काल के लिये हिन्दुधर्म का बल फिर स्थापित हो गया, और उसने उन सीमाओं तक अपना झण्डा फहराया कि जहां तक बौद्ध धर्म अपना पहिले राज्य बना चुका था, वरञ्च कुछ थोड़ा बहुत उन सीमाओं को भी पार कर गया। विद्या और साहित्य के विषय में भी वह अमूल्य रत्न प्रकट हुए जो आज तक हिन्दुओं के वास्ते उत्कृष्टता का कारण हैं। विक्रमादित्य के नवरत्न हिन्दुओं के विद्या वृद्धि के मुकट हैं, कालीदास और भवभूति के नाम संसार में चिरस्थायी हैं उस समय के गुण व हुनर भी श्लाघा के योग्य हैं। परन्तु यह सब उस आस्तिकता की थोड़े काल के लिये झलक थी जो कि बौद्ध धर्म को पराजय करने से देश में एकाएक फैली थी।

(३४) अन्त को हानि शीघ्र आरम्भ हो गई

इस झलक ने बहुत ही संक्षिप्त सा काम किया, अन्त को तो केवल झलक ही थी चिरस्थायी ज्योतिः के समान दीर्घ काल तक प्रकाश का काम नहीं दे सकती थी। जो वंश पौराणिक ग्रन्थों में लीन हो जावे, जो वंश पौराणिक मिथ्या विश्वास में फंस जावे, जो वंश पौराणिक रीति से जात पात के जंजीरों से अपने को इस दृढ़ता से जकड़ लेवे, जैसे कि हिन्दुओं ने जकड़ा, जो वश अपनी बुद्धि को एक सीमा बद्ध

सम्प्रदाय के हाथ में कैद कर दे, जो वंश अपने धर्म और अपनी बुद्धि को एक श्रेणी के अधीन कर दे, जो वंश धर्म कार्य को एक विशेष श्रेणी के हाथ में छोड़ दे, जो वंश विद्वता को छोड़ कर बुराइयों का शिकार बन जावे, वह वंश कब तक सुखी और विपत्ति रहित रह सकता था। इस वार तो ब्राह्मणों ने ऐसा सिक्का जमाया कि वंश जकड़ी जाने से बाहर के धावा करने वालों का शिकार हुई। उनके जंजीरों में यजमानों की प्रसन्नता के लिये नाना प्रकार के नियम रचे गये। जितने हिन्दू घर थे उतने हिन्दू देवी देवता थे, यजमान के हर एक कार्य को उचित बनाने के लिये तन्त्र शास्त्र निर्माण किया गया, जो वंश की हर एक प्रकार की बदमाशी (अनुचित व्यवहार) को धार्मिक आज्ञा से दृढ़ कर दे और उसके प्रमाण निकाल ले, वह वंश कब तक प्रसन्न रह सकती थी। वाम मार्ग पौराणिक विचारों की प्रसिद्धि का योग्य फल था। पौराणिक मत मतान्तरों में से वाम मार्ग ने कुछ काल हिन्दुओं की बुद्धि पर ऐसा बल दिखलाया कि महीधर जैसा विद्वान् पण्डित इस अनर्थ कार्य में प्रवृत्त हुआ, जिसने प्रत्येक प्रकार के अनुचित व्यवहारों को वेदों के अनुकूल सिद्ध किया। हाय! वह महान् वंश जिसने उपनिषदकार जने, वह उच्च जाति जिसने कि प्रजा के लिये कानून (नियम) बांधे, वह वंश जिसने अत्युत्तम फिलासफी रची, वह सूक्ष्म दर्शी वंश जिसने बीजगणित, रेखागणित, ज्योतिष और राग विद्या, के अतीव सूक्ष्म तत्वों को संसार में प्रकट किया, वह शूरवीर वंश जिसने सहस्रों वर्षों क्या वरञ्च लाखों वर्षों तक अन्य जाति को अपने देश की ओर झांकने नहीं दिया, वह आर्य जाति जिसने गिरते गिरते अद्वितीय कवि वंश में उत्पन्न किये, हाय वह वंश अन्धकार और अविद्या के बन्धन में फंस कर बाहर के मिथ्या विश्वास और निर्बल धार्मिक विचारों की भेंट हुआ। कह वैदिक धर्मानुयायी आर्य और कहां पौराणिक हिन्दू, कहां वेद की पवित्र श्रुतियें और कहां पौराणिक समय के तन्त्रों की फिलासफी। कहां उपनिषदों की सच्ची और प्रेमजन्य भक्ति और कहां वाममार्ग की निर्बलता करने वाली, लीला, कहां महाभारत और रामायण

की वीरता और कहां पौराणिक समय की पहलवानी। सारांश यह है कि विचित्र दुःख जनक दृश्य है, जिनको देखकर आंसू गिर जाते हैं, छाती फट जाती है, और हृदय कांप जाता है। और ईश्वर २ का शब्द स्वमेव मुख से निकलता है। जो वंश अपने कर्त्ता से विमुख हो जावे उसकी ऐसी ही दशा होती है। जैसे इष्टदेव वैसे ही पुजारी। जीतो चाहता है कि कुछ पौराणिक गप्पाष्टक नमूने की रीति पर हम अपने पाठकों को सुनावें और कुछ तन्त्रों का भी नमूना दिखलावें, परन्तु पुस्तक बढ़ने का भय है। हम दिलेरी से केवल इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि जिन मनुष्यों को हमारे लेख पर विश्वास न हो वह कृपा कर पुराणों और तन्त्रों को पढ़ें, आशा है, कि हमारे लेख को सच्चा पावेंगे।

(२५) पौराणिक मत और पौराणिक राज इस्लाम के सामने सिर झुकाता है

जिस समय भारतवर्ष में धर्म सम्बन्धी निर्बलता अपना बल ग्रहण कर रही थी उसी समय अर्ब के जंगलों में एक महापुरुष भी अपूर्व शिक्षा दे रहा था। इस्लाम का एक ईश्वरवाद क्या था मानों एक अग्निमय प्रवाह था जिसकी उबलती हुई लहर के सन्मुख न मूर्त्ति पूजा ठहरी और न अग्नि पूजा, न मनुष्य पूजा और न ईसा की सेवा स्थित रही। जहां २ लहर पहुंची, मार्ग में सफाई करती गई। रुधिर के प्यासे कठिनता सहनशील, कड़े दिल, और कड़ी जुबान वाले अद्वैतवाद के जोर से भरपूर, दीन २ की गर्ज से देश विजय के लिये निकले। अग्नि बरसाते हरी भरी भूमि को अपने घोड़ों के पांव से रूंदते हुए उधर "हस्पानया" तक जा पहुंचे, और इधर सिन्ध के तट पर राजपूतों से आ टकरे। किसकी सामर्थ्य थी कि उनकी अग्नि और साहस के सामने ठहरता। धार्मिक जोश में भरे हुए शहीद होने के अभिलाषियों को देश और धन का स्वाद पड़ गया। अल्लाहो अकबर की आवाजें निकालते घर से यह निश्चय करके निकले कि या तो शत्रूओं को जीत कर विजय करेंगे या रण में प्राण दे स्वर्ग पावेंगे। ऐसे शूरवीरों से सामना करना कोई सुगम बात न थी। अर्ब से भारतवर्ष तक कोई वंश

उनके आगे न ठहरा, मार्ग वंश केवल पुलीटीकल रीति से ही अधीन न हुई, उन्होंने चाहे खड्ग बल से, चाहे अपने विश्वास के कच्चा होने से इस्लामी धर्म को स्वीकार कर लिया। बस फिर क्या था, इस्लाम की उठती हुई लहर पद २ में वृद्धि पाती गयी। अब घर से निकले तो गिनती के थे परन्तु जब सिन्ध तट तक पहुंचे तो असंख्य हो गये, और सब के सब मरने मारने को तय्यार थे। यहां भी अन्त को राजपूत थे जिनको युद्ध की शिक्षा माता के दूध से मिली थी, जीवन का तो उनको कोई विचार न था, परन्तु अपने धर्म से लाचार थे, मुसलमान इतिहास लेखकों के लेख साक्षी देते हैं कि भारत में वीरता और साहस की तो कमी न थी, कमी थी तो यह कि निर्बल कर देने वाली पाषाण पूजा, बल दाता ईश्वरोपासना के आगे नहीं ठहर सकती थी।

भारत पर प्रसिद्ध पहिला धावा कासम के पुत्र मुहम्मद ने देवल के बन्दर पर किया, कई दिन संग्राम होता रहा, हिन्दू अपने स्थान से न हिले, और बार२ मुसलमानों को हराते रहे। अन्त को मुसलमान धावा करने वालों के मन में यह आया कि हिन्दू मन्दिर के झण्डे को गिरा दिया जावे, तो हिन्दू लड़ना छोड़ देंगे। तीर के निशाने से झण्डा गिरा दिया गया, मुसलमानों का यह विचार उनके लिये फलीभूत हुआ। झण्डे के गिरते ही हिन्दुओं के दिल ढीले पड़ गये, उन्होंने सोचा कि हमारे देवताओं ने हमारा साथ छोड़ दिया अब हमारा लड़ना व्यर्थ है। यह सोच भागना आरम्भ कर दिया। केवल देवल ही कासम के पुत्र मोहम्मद के हाथ न आया, वरञ्च हिन्दुओं की निर्बलता की कुंजी भी उसके हाथ आ गई। और उसने फिर इसी कुंजी से भारत के दरवाजे अपने धर्म और वंश के लिये खोल दिये। कासम का पुत्र मुहम्मद आगे बढ़ता है, और मुसलमान इतिहास कर्त्ता लिखते हैं, कि हिन्दू राजा महाराजा ज्योतिषियों के बताये हुए ज्योतिष की मानों भेट होते जाते हैं, ज्योतिषी कहते हैं कि महाराज हमारी विद्या बतलाती है कि मुसलमानों के भाग्य का नक्षत्र उदय हुआ है, निस्संदेह उनकी जय होगी, इसलिये लड़ना व्यर्थ है ऐसा सुनने पर भी राजपूत वीर पुरुषों ने ही

किन्तु वीर स्त्रियों ने भी कई वार अपनी पूर्ण वीरता दिखाई, परन्तु मुसलमानों के प्रताप के आगे जो उनकी तौहीद (धर्म) के साथ था पेश न गई। और पौराणिक धर्म और पौराणिक राज मुसलमानों से दब गया।

(३६) वैदिक संस्कृत पौराणिक संस्कृत हो गई

इससे आगे की अवस्था का वर्णन करने से पहिले उचित प्रतीत होता है कि इस समय में भाषा के परिवर्तन की अवस्था का भी वर्णन किया जावे। हम ऊपर लिख आये हैं कि उपनिषदों और ब्राह्मणों की संस्कृत वैदिक संस्कृत न थी, वैदिक संस्कृत की कुदरती बनावट नित्य प्रति कल्पित वस्त्र पहिरने अंगीकार करती जाती थी, और उपनिषदों और वेदों की भाषा में बड़ा भारी अन्तर हो गया था, यहां तक कि कुछ समय के पीछे निरुक्तकार को यह जितलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई कि वेदों में अग्नि वायु आदि सब नाम परमात्मा के हैं। उपनिषदों के समय से पौराणिक समय के अन्त तक तो देश भाषा नितान्त बदल गई। उपनिषदों की संस्कृत और पौराणिक समय की संस्कृत में, दिन रात का अन्तर पड़ गया। वेदों की यौगिक संस्कृत बदलती २ पौराणिक लौकिक संस्कृत बन गई। और वह भी केवल विद्या के पुस्तकों के अर्थ वरं असल भाषा में तो बड़ा व्यत्यय हो गया। यह ठीक सिद्ध है कि महात्मा बुद्ध के समय में देश भाषा संस्कृत न थी, संस्कृत केवल विद्यामयी भाषा थी। सर्व साधारण के बोलचाल की भाषा पाली थी, बौद्ध धर्म की हानि होते ही पाली प्राकृत से बदल गई, यह वह भाषा है कि जिसके कुछ नमूने संस्कृत नाटकों में मिलते हैं और इसी भाषा में पृथिवीराज के दरबारी चन्द्र कवि ने अपना इतिहास लिखा है। वैदिक संस्कृत में जिन शब्दों के अर्थ परमात्मा के थे पौराणिक समय में उन ही शब्दों के अर्थ देवताओं के हो गये।

वैदिक धर्म और पौराणिक धर्म में उतना ही अन्तर है जितना वैदिक संस्कृत और पौराणिक संस्कृत में है। प्रोफेसर मैक्समूलर अपने "भाषाओं की विद्या पुस्तक" (Science of language) नाम की

पुस्तक में लिखते हैं, कि नवीन संस्कृत और वैदिक संस्कृत में उतना ही भेद है, जितना कि आज कल की अतालिया और लातानी भाषा में है, या इस प्रकार समझें कि जैसा पौराणिक संस्कृत और आज कल की देश भाषा में, वास्तव में तो इससे भी कुछ और ही अन्तर है। सो यह समझ लेना कुछ कठिन नहीं हैं, कि जिन पण्डितों ने पौराणिक समय में वेदों के भाष्य किये हैं, उनके भाष्य वेदों के असली अर्थ प्रकट करने के प्रमाण योग्य नहीं हो सकते।

(३७) इस्लाम के समय में हिन्दू धम

हम चलते २ उस समय तक आ गये हैं, जबकि वेदों की ईश्वर पूजा गिरते २ पौराणिक देवपूजा और नरपूजन में पलट गई, और जब वेदों की सँस्कृत गिरते २ पौराणिक संस्कृत बन गई। और जबकि पौराणिक आस्तिकता को इस्लामी तौहीद ने दबा लिया। ठीक २ सात या आठ सौ साल तक इस्लामी तौहीद का बल रहा और उसने पौराणिक अद्वैतवाद को सिर न उठाने दिया। इन दिनों में हिन्दू वंश में बहुत से महात्मा समय २ पर उत्पन्न होते रहे। जो समय की बुराइयों धर्म की बुराइयों के निवृत्त करने के उपदेश देते रहे। सत्य पूछो तो हिन्दु वंश इन्हीं भद्र पुरुषों के अनुग्रह से बचा रहा। परन्तु तो भी यह निःसन्देह सत्य है, कि इतने बड़े समय में हिन्दुओं की ओर से धर्म और सोशिअल उन्नति के लिये नियमानुसार कोई यत्न नहीं हुआ, लाखों वरं च करोड़ों हिन्दुओं ने कई एक कारणों से अपना धर्म त्याग मुसलमानी धर्म ग्रहण कर लिया। कई नीच जातियों ने जिनको ब्राह्मण और क्षत्रियों ने अपनी महत्वता के अभिमान से सोशिअल हैसीयत (जातीय पद) देने से इनकार किया और जिनको लोग सदैव घृणा से देखते रहे, इस अपमान से छूटने के अर्थ इन्होंने वह धर्म अंगीकार किया। जिस धर्म में केवल विशेष जाति या वंश में उत्पन्न होने से मनुष्य नीच कहलाने के अधिकारी नहीं होते थे। बहुत सों ने सांसारिक लोभों से अपना धर्म त्यागा। बहुतों ने जबरन और दबाव से इसलाम स्वीकार किया। ऐसे उदाहरण भी थोड़े नहीं जिन्होंने पौराणिक मूर्त्ति

पूजन और मिथ्या विश्वास से दुःखी होकर इस्लाम की ईश्वर पूजा की छत्रछाया का सहारा लिया। सार यह है कि इन सदियों में हिन्दुओं ने भिन्न २ रीति से लगभग ½ भाग इस्लाम को भेंट किया। उस समय में ब्राह्मणों की ओर से कोई यत्न इस हानि के रोकने का या निर्दोष करने का नहीं किया गया। वरंच ध्यान इधर ही रहा कि जाति के बन्धन ऐसे दृढ़ किये जावें कि तनिक से सन्देह व बहाने पर भी लोगों को अपने धर्म से निकाल दिया जावे। कभी २ जो संशोधक उत्पन्न होते रहे उनके यत्न भी अधिक फलदायक न हुए इसके सिवा कि उन्होंने धर्म परिवर्तन की उठती हुई लहर को कुछ दबा दिया और लोगों को अचिरस्थायी तसल्ली देकर अपने धर्म और अपनी जाति में रहने को उद्यत किया।

(३८) मुसलमानी राज्य में वेदों की तलाश

इस समय में प्रायः लोग पौराणिक मत के अनुयायी रहे, असंख्य देवी देवता बन गये, जो भिन्न २ जातियों को कुछ न कुछ शान्ति देते रहे। यह समय ऐसा न था कि जिसमें कोई भी विचार करने के लिये सिर उठाता। मानो ८०० वर्ष तक विचार का बीज हिन्दू हृदयों में उत्पन्न नहीं हुआ। लकीर के फकीर हिन्दुओं ने यह ही उचित समझा कि किसी प्रकार दिन कट जावें। सत्य है जहां प्राणों का भय और खान पान की चिन्ता हो वहां गहरे विचार किसको सूझते हैं। इस समय में पठन पाठन का तो कोई प्रबन्ध ही नहीं था, केवल ब्राह्मण वंशों में धार्मिक कर्त्तव्यों की पूर्त्ति के लिये कुछ साधारण सी संस्कृत की पढ़ाई आवश्यक समझी जाती थी और वही प्रचलित रही। कहीं २ किसी ब्राह्मण के पुत्र को अधिक लगन हुई, तो उसने कुछ व्याकरण शास्त्र में और कुछ धर्म शास्त्र में या दर्शन शास्त्र में कुछ विशेष योग्यता उत्पन्न कर ली, सो इससे अधिक विद्या प्रचार हिन्दुओं में नहीं हुआ। राज धर्म की आवश्यकताओं से हिन्दू फारसी आदि में योग्यता उत्पन्न करते रहे, परन्तु वेद और वैदिक धर्म और वैदिक लिट्रेचर तो इस समय में मानों भारत से लोप ही रहा। मुसलमानों के राज्य में

केवल दो बार ऐसा समय आया कि वैदिक साहित्य की ओर कुछ सामान्य सा ध्यान दिया गया, परन्तु इतिहास से विदित होता है कि या तो ब्राह्मणों ने जान बूझ कर वेदों को प्रकट नहीं किया, या यह कि वे आप ही वेदों से अनभिज्ञ थे। अकबर बादशाह को सम्प्रदायों की तहकीकात का शौक उत्पन्न हुआ, उसने भिन्न २ सम्प्रदायों की धर्म पुस्तकों के अनुवाद कराये। उसकी यह भी इच्छा थी कि वेदों का अनुवाद भी मेरे लिये किया जावे, परन्तु वेद कहां थे, किसी को विदित भी न था कि वेद क्या, और कहां है? वेदों का समझना और अनुवाद तो दूर वेदों के नाम से उपनिषदों के अनुवाद के द्वारा शाहनशाह अकबर की लगन को पूरा किया गया। वेदों की अप्राप्ति में उपनिषदों के अधूरे अनुवाद ही संसार के शेष धार्मिक पुस्तकों पर साया डालने के लिये बहुत थे। फिर शाहनशाह के राज्य में उसके युवराज दाराशिकोह को वही शौक उत्पन्न हुआ और उसकी लगन भी उसी प्रकार पूर्ण की गई। दाराशिकोह को उपनिषदों का अनुवाद क्या मिला कोई अमूल्य रत्न प्राप्त हुआ। उसने उन उपनिषदों को विचार कर जाना कि संसार के धर्म पुस्तक इन उपनिषदों के समक्ष निकम्मे हैं। दाराशिकोह को यदि राज्य मिलता तो क्या जाने वह संस्कृत के ग्रन्थ भण्डारों की तलाश करवाता, परन्तु औरंगजेबी चालों ने उसके समस्त विचारों और मनोकामनाओं को धूली में मिला दिया।

(३९) हिन्दू अद्वैतवाद की नई चाल

परन्तु अन्त को भारत में मुसलमानी हिचकोरे खाने लगी तो हजरत मुहम्मद का प्रबल अद्वैतवाद कबरों की पूजा, पीरों की सेवा और अन्य मिथ्या विश्वासों के पंजे में फंस गया और मुसलमानी धर्म की अवनति के साथ ही मुसलमानों राज्य की भी हानि होने लगी। मानो संसार के नाटक में यह खेल भी समाप्ति पर आया, और परदा गिर पड़ा।

जब मुसलमानी राज्य की मृत्यु का समय आ गया, उस समय भारतवर्ष में एक नई फिलासफी और एक नये अद्वैतवाद का आगमन

था, इस आगमन में हिन्दू अद्वैतवाद ने भी कई स्थानों में सिर उठाया, परन्तु पंजाब और महाराष्ट्र के सिवा कहीं कामयाबी न हुई, महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार को इतनी कृत्यता प्राप्त न हुई जितनी कि पजाब में हुई। पंजाब में हिन्दू अद्वैतवाद ने इस्लाम को पूर्ण रीति से दबा लिया और केवल मनुष्यों के हृदयों से ही उसका धर्म प्रभाव न निकाला किन्तु उसकी पुलिटीकल सामर्थ्य को भी छीन लिया। परन्तु यह सुधार भी किसी दृढ़ नींव पर निर्भर न था, और न उसके सहारे को विद्या और शिक्षा की सहायता थी। विद्या से शून्य कोई सुधार चिर-स्थायी नहीं हो सकता। अन्त को फिर हिन्दू धर्म ने इस सुधार को दबा दिया और जो कामयाबी हुई थी वह अपनी बनावटी शोभा दरसा कर छिप गई, और हिन्दू जन पूर्व के समान एक नये शत्रु के सामने के लिये असमर्थ और असहाय रह गये।

(४०) ईसाई धर्म का आगमन और वेदों की तलाश

इस समय में ईसाई धर्म ने धीरे २ अपने पांव जमाने आरम्भ किये। ईसाई धर्म की सहायक, विद्या और शिक्षा थीं, और ईसाई पादरियों का स्वभाव मुसलमान मौलवियों से भिन्न था। जिस समय ईसाई भारत में आये, तो उन्होंने देखा कि देश एक अन्धकार के गढ़े में फंसा है, और धर्म अति विपत्ति और भयानक अवस्था में है। उन्होंने निश्चय किया कि लोग मिथ्या विश्वास में फंसे हुए हैं। चाहे विश्वास के अतीव कच्चे हैं, परन्तु तो भी अपने सीमावद्ध विश्वासों के चक्र से बाहर निकलने के नितान्त अयोग्य हैं। न वह भक्ति करते थे, और न भक्ति को समझते थे। उन्होंने समझा कि ऐसे लोगों में, उनके नये धर्म का फैलना असम्भव है, जब तक कि कुछ शिक्षा का प्रकाश न हो, और साथ ही जब तक कि हम उनके धर्म से अभिज्ञता प्राप्त करके उनके धर्म सम्बन्धी विचार व मिथ्या विश्वासों पर धावा न करें। सो इस नियत से पादरियो ने संस्कृत विद्या को प्राप्त करने का यत्न किया और १६वीं शताब्दी के मध्य भाग तक तो उनको बिलकुल कामयाबी न हुई और न किसी ब्राह्मण ने पादरियों को संस्कृत

पढ़ाई। परन्तु १५५९ ई० में जब कि एक संस्कृत पण्डित ने अपना धर्म त्यागा, तो ईसाईयों ने उससे संस्कृत पढ़नी आरम्भ की। परन्तु फिर भी संस्कृत के जानने में पादरियों को बहुत कामयाबी नहीं हुई। यहां तक कि १६८६ ई० में "लारानग्राबरटोटीनौवल" नामक एक पादरी ने ब्राह्मण के भेष में संस्कृत का पढ़ना आरम्भ किया और अपनी आयु का बड़ा भाग इसी में लगा दिया। अन्त को उसने ब्राह्मणी वस्त्र धारणकर यज्ञोपवीत व चोटी धारण करके चंदन का टीका माथे पर लगा, अपने आपको ब्राह्मण ही बताया और अपनी नई प्राप्त की हुई विद्या के बल से ब्राह्मणों के धर्म की निर्बलता पर घाव करने लगा। उसने मनुष्यों में यह प्रसिद्ध किया कि यह ४र्थ खोए हुए वेद का प्रचार करने आया है। परन्तु इतना परिश्रम करने पर भी उसको असली वेद हाथ न आये और न ही वेदों का उसको ज्ञान हुआ। कुछ समय इसी प्रकार व्यतीत हो गया। अन्त को १८३३ में कामीट साहिब ने करनाटक (दक्षिणी भारत) से यूरोप को यह लिखा, कि बहुत से पादरी न केवल संस्कृत ही जानते हैं, वरं च वेद भी पढ़ सकते हैं। उसने सबसे पहिले यह प्रकट किया कि वेद चार हैं, ब्राह्मण उनको ईश्वर कृत मानते हैं और हिन्दु धर्म में सबसे बड़ी और माननीय पुस्तक हैं, जिनकी आज्ञा सबको शिरोधार्य है। उसने यह भी लिखा कि जिन मनुष्यों के पास यह वेद हैं, वह भी इनके अर्थों से अनभिज्ञ हैं, क्योंकि वेद एक बड़े प्राचीन समय की भाषा में हैं, इसको साधारण संस्कृत पढ़े पण्डित न पढ़ सकते हैं और न समझ सकते हैं और विना टीका या भाष्य के किसी के समझ में आ ही नहीं सकते। पादरी कामीट साहिब ने यह भी उन्हीं दिनों में लिखा कि बहुत समय तक उनको वेद नहीं मिल सके। १७५२ और १७७४ के बीच एक और पादरी ने यह लिखा कि "चाहे मैंने संस्कृत जुबान पढ़ली यहां तक कि विद्वानों के साथ संस्कृत में वाद विवाद कर सकता हूं। परन्तु तो भी मैंने आज तक वेदों के दर्शन नहीं किये। संभव है कि क्या जानें वेद लुप्त ही हो गये हों और केवल नाम ही नाम उनका शेष रह गया हो।" अन्त को

बड़ी मेहनत और तलाश और बहुत धन व्यय से पादरी "कामीट" को हाथ के लिखे वेद प्राप्त हुए। और उसने कई ब्राह्मणों की सहायता से वेदों के कई विषयों के समझने का यत्न किया, चुनांचि जब उसने उन विषयों को देखा तो उसकी आंखें खुल गईं। और उसने जान लिया कि वेद सबसे दृढ़ शस्त्र मूर्ति पूजा खंडन के लिये हैं। वह लिखता है कि "जब से वेद हमारे हाथ आ गये हैं हमने उनमें से वह वचन निकालें हैं जो कि ऐसी सत्य शिक्षा देते हैं जिनसे मूर्त्ति पूजा का नाश हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि परमात्मा का एक होना, उसके असली गुण और दण्ड व फल यह विषय वेदों में विद्यमान् हैं। "कोलबुक" साहिब ने भी एक जगह अपने लेख में वर्णन किया है कि देर तक विवेचक मनुष्यों को वेदों के होने में संदेह रहा और सत्य भी है क्योंकि भारतीय विद्वानों को भी इनके अस्तित्व में सन्देह था। वरंच उनके विषयों से भी अनभिज्ञ थे।

(४१) राजा राममोहनराय के वेद

देश के कई भागों में वेद मन्त्र पाठ मात्र लोगों को जिह्वाग्र थे, परन्तु कोई उनके अर्थ करने का साहस नहीं करता था। १९वीं सदी के पहिले ५० वर्ष ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने हिन्दु धर्म को ईसाइयों के धावों से बचाने के लिये वेदों के प्रमाण दिये और वेद के लिट्रेचर के अनुवाद प्रसिद्ध कराये। परन्तु यह अनुवाद उपनिषदों के थे और राजा जैसा विद्वान् भी उपनिषदों को ही वेद समझता रहा, असली वेदों को न कभी उन्होंने विचार किया और न कभी उन्होंने संस्कृत में इतनी योग्यता प्राप्त की कि वेदों के अर्थ समझ सकते।

(४२) ब्रह्म समाज का काय

इस समस्त अज्ञानता का परिणाम यह हुआ कि हिन्दु धर्म को इसलामी धर्म के समान ही ईसाइयों से भी सामना करना पड़ा। लोग अंग्रेजी पढ़ने लगे और होनहार योग्य हिन्दु युवक अपने पिता पितामह के धर्म को त्यागकर ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। ब्रह्मसमाज ने ईसाई

धर्म को रोकने के लिये कुछ काम किया, परन्तु यह बात प्रसिद्ध है, है, कि ईश्वरीय ज्ञान के सहारे के बिना उनको इस काम में यथोचित्त कृत कार्यता नहीं हुई। पहिले तो ईसाईयों के धर्म प्रवाह को ही कुछ अधिक नहीं रोका और २य, जो ब्राह्म धर्म स्वीकार करते थे वह आप आधे ईसाई प्रतीत होते थे। इसलिये ब्राह्म धर्म का हिन्दु सोसाइटी पर कुछ बड़ा असर न पड़ा।

(४३) पौराणिक रीति से संस्कृत शिक्षा

पौराणिक पंडित मसीह की धर्म वृद्धि को न रोक सके क्योंकि उनकी संस्कृत शिक्षा की रीति ऐसी विपरीत और बुरी थी, कि जिससे पढ़ने वालों के धार्मिक सन्देह निवृत नहीं होते थे, यदि पौराणिक पण्डित ठीक रीति से संस्कृत और शास्त्र को पढ़ाते तो कब सम्भव था, कि "रैवरंड कालीमोहन बैनरजी" और पं० नीलकण्ठ शास्त्री जैसे संस्कृत के विद्वान् शास्त्रों से अभिज्ञ अपने पिता पितामह के धर्म को त्याग ईसाइयों की अञ्जील की शरण लेते। संस्कृत शिक्षा को प्रचलित मर्यादा कैसी अधूरी और अनिश्चयात्मक थी। यह इस बात से भली भान्ति जान पड़ता है, कि इन दिनों हिन्दु ईसाइयों ने दो पुस्तक हिन्दु शास्त्रों के विरुद्ध रचकर ईसाई धर्म की अञ्जील की उत्तमता और श्रेष्टता को जताया। आज कल यदि कोई पण्डित ऐसा करे तो लोग हसी से टाल दें और इस प्रकार के यत्न को घृणा से देखें परन्तु १८६१ ई० में इन लेखों ने ऐसा तहलका मचाया था कि एक यूरपीय विद्वान् को उनकी वेहूदगी (व्यर्थ) सिद्ध करने के लिये लिखना पड़ा।

क्या आप यकीन कर सकते हैं कि कोई संस्कृत का विद्वान् केवल कपिल और कणाद ही नहीं वरं गौतम और जैमिनी को भी नास्तिक कहने का साहस कर सके। परन्तु १८६१ में इन संस्कृत के विद्वान् ईसाई हुए दो हिन्दू पुरुषों ने बड़ी दिलेरी से ऐसा सिद्ध करने का साहस किया और दर्शनों की अनुपम फिलासफी और उपनिषदों के अद्वितीय धर्म को अञ्जील के अद्वैतवाद, अञ्जील के विभागत्रय और ईसा की करामतों के सामने व्यर्थ और निकम्मा निश्चय किया और अपने हिन्दू

भाइयों से अपील की कि वह अपने धर्म को त्याग ईसाई धर्म की शरण लें। मन तो चाहता है कि उनकी पुस्तकों में से लम्बे लम्बे प्रमाण देकर बताया जावे कि उन्होंने किस प्रकार दर्शनों की फिलासफी और उपनिषदों की धार्मिक शिक्षा की नीव में तेल डालने का यत्न किया और किस प्रकार प्रोफैसर "गोलडस्टकर" ने उनका खण्डन करके उनकी मूर्खता की हंसी उड़ाई। परन्तु हमारी पुस्तक की विस्तृति आज्ञा नहीं देती, हम केवल इतने पर ही शांति करते हैं, कि इस मजमून को पढ़कर हमारे हृदयों में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के काम की और भी कदर बढ़ गई।

(४४) अंग्रेजी साइन्स ने हिन्दू धर्म और पौराणिक फिलासफी को आखिरी धक्का दिया

अपने किस्से को लगातार जारी रखने के लिये हम फिर उसी समय पर चलते हैं, जब कि अंग्रेजी सरकार ने बड़ी उदारता से यह फैसला किया, कि देशियों को केवल अंग्रेजी लिट्रेचर की ही नही, वरञ्च अंग्रेजी साहित्य साइन्स विद्याओं की भी शिक्षा दी जावे। अंग्रेजी साइन्स का पढ़ना था, कि हिन्दू धर्म की पौराणिक फिलासफी को धक्का लगा। मुसलमानो वा ईसाई धर्म के वारों से जो कुछ बचा खुचा था वह अंग्रेजी साइन्स की भेटा हुआ। जाति की नींव खोखली होने लगी। पाले पोसे होनहार वीर हाथों से जाने लगे। हिन्दू धर्म, हिन्दू रस्म-रिवाज, हिन्दू जीवन से घृणा करके, अंग्रेजी सुशिक्षित हिन्दु समूह के समूह धर्म परिवर्तन करने लगे। जिनको साइन्स ने अंजील के धर्म ग्रहण करने से रोका, वह सब नास्तिक हो गये। जो ईसाई हो गये वह तो घरों के घर (खानदान नष्ट हो गये। लाखों अबला कन्याओं को विधवा कर गये। लाखों बालकों को यतीम (अनाथ) बना गये रोते हुए वृद्ध माता पिता को धोका दे गये। धर्म ने माता-पिता पुत्रों से, स्त्रियों को स्वामियों से, पुत्र अपने पिताओं से अलहैदा कर दिये। हिन्दू सोसायटी में कोलाहल मच गया। सारे देश में दारुण रुदन की ध्वनि उठने लगी। और इस हैरानी के समय और विपदा के

दिनों में कोई युक्ति न सूझी। जिन्होंने धर्म परिवर्तन न किया उन्होंने दूसरी प्रकार अपने नास्तिकता के ख्यालों से बड़ों को जलाना प्रारम्भ किया। न बड़ों की लज्जा, न छोटों का लिहाज, न किसी का भय और न किसी की प्रतिष्ठा करते। सार यह है कि देश में एक विचित्र कोलाहल मच गया और चारों ओर से लोगों के दिलों में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि निराशा के समय में इस डांवांडोल नौका को भंवर से निकाल कर पार लगाने वाला कोई उत्पन्न हो।

(४५) यूरपीय विद्वानों की हमदर्दी

यह प्रबल इच्छा केवल हिन्दुओं के हृदय में ही उत्पन्न न हुई वरंच अंग्रेजों में भी कई ऐसे दयावान् व्यक्ति उत्पन्न हुए कि जिनके दिलों में इसी प्रबल इच्छा ने जोर किया। क्यों न होता ऐसे महान् वंश को डूबते देख, किसको दया न आती। जिन मनुष्यों ने उपनिषदों की शिक्षा को अनुभव किया था, जिन्होंने दर्शनों की फिलासफी को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा था, जिन्होंने हिन्दू धर्म, हिन्दू वश की पूर्व उन्नति की झलक को भी देखा था, उनको क्यों इस डूबते वेड़े की दीन अवस्था पर दया न आती। अंग्रेंजी हकूमत की बदौलत जब अंग्रेजी विवेचकों ने प्राचीन तारीख पर दृष्टि दी तो उनको एक बिचित्र शोभा का प्रकाशक दिखाई दिया "सर विलियम जोन्स" प्रोफैसर "कोक" "लार्ड अनफिनसटन" डाक्टर म्योर प्रभृति संस्कृत के शौकीन विवेचकों ने प्राचीन भारत के लिट्रेचर को खोजा और उनके दबे हुए भण्डारों को प्रकाश में लाने का यत्न किया, जिसका फल यह हुआ कि तत्काल सारे यूरोप में आर्य जाति के साथ एक हमदर्दी सी उत्पन्न हो गई। अंग्रेजों ने जान लिया कि जिस वंश पर राज्य करने के लिये हम आये हैं, वह वैसे पशू नहीं जैसा कि हम उनको समझे हुए हैं। हिन्दू लिट्रैचर और हिन्दू फिलासफी ने एकाएक अपने हाकिमों की दृष्टि में आदर उत्पन्न कर दिया।

(४६) प्रोफैसर गोल्डस्टकर के हिन्दुओं के ईश्वर-प्रणीत पुस्तकों पर मजमून

सन् १८६१ से पीछे और १८७१ से कई वर्ष पहले प्रोफैसर गोल्डस्टकर ने दो तीन मजमून हिन्दुओं की ईश्वर प्रणीत पुस्तकों पर लिखे जो इस प्रकार के बहुमूल्य और उत्तम विचारों से भरपूर हैं, कि हमको अपनी पुस्तक के बढ़ जाने के भय को छोड़ कर कई भाग को अपने पाठकों के पढ़ने के लिये लिखते हैं।

प्रोफैसर गोल्डस्टकर गदर के विषय में अंग्रेजों के विचारों का वणन करते हुए इस प्रकार वर्णन करते हैं कि--

गदर के पीछे हमको कुछ अधिक बुद्धि आ गई है, और अब हमको प्राचीन भारत का वह महान् और आश्चर्यमय लिट्रेचर याद आता है, जो कि अभी तक मन को पूर्ववत् ही प्रफुल्लित करता है। अब हम उन अगणित साक्षियों की ओर से अपने कान बन्द नहीं कर सकते, जो कि हिन्दू वंश की उत्तम समझ और उत्कृष्ट योग्यता की साक्षी देते हैं। अब हमको यह विदित होने लगा है, कि वह कानून, नियम या तरीके जो कि अतीव प्राचीन समय से इतने विपर्यय होने पर भी अभी तक प्रचलित हैं, इनमें अवश्य ही कोई न कोई ऐसी मनोहर आकर्षण शक्ति हैं कि जो कि वंश को उनके साथ सम्बन्धित रखती है। नहीं २ वरञ्च अपनी धार्मिक कठिनताओं को विचार कर अब हमने इसी बात को बुद्धिमत्ता माना है, कि हिन्दुओं को अपनी ही मर्यादा पर मुक्ति और सर्वदा का सुख प्राप्त करने के लिये स्वतन्त्र छोड़ दिया जावे। उक्त प्रोफैसर का इशारा इस मजहबी स्वतन्त्रता की ओर है, जोकि १८५८ के राज्य आज्ञा विज्ञापन द्वारा भारत की प्रजा को प्रदान हुई। आगे जाकर उक्त प्रोफैसर वर्णन करते हैं, कि भारत की उन्नति में सबसे कठिन प्रश्न धार्मिक प्रश्न है, और यह सम्मति देते हैं, कि मानों कोई गवर्नमेण्ट भी इस प्रश्न से अचेत नहीं रह सकती। परन्तु तो भी किसी पुलिटीकल कानून या बाहर की सभ्यता और अन्य धर्म की शक्ति से बाहर है, कि इस उक्त प्रश्न का उत्तर दे सकें। इसलिये यह बात

समय के अच्छे चिह्न प्रकट करती है, कि हिन्दू विद्वानों के मन में भी इस धार्मिक प्रश्न के सिद्ध करने की अभिलाषा उत्पन्न हो रही है। सो इससे रैवरण्ड के० एम० बैनरजी और नीलकण्ठ शास्त्री के उन मजमूनों पर विवाद करते हैं जो उन्होंने हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रों के विरुद्ध और ईसाई धर्म के पक्ष में लिखे थे। इस विवाद के आरम्भ में उक्त प्रोफैसर जी यह साबित करने का यत्न करते हैं, कि हिन्दुओं की इलहामी पुस्तकें, ईसाइयों और अन्य वंशों के इलहाम से कितने भिन्न हैं। और जिन लोगों के पास इस प्रकार का लिट्रेचर मौजूद हो उनका ईसाई बनने का परिश्रम कैसा व्यर्थ और मिथ्या है। उक्त प्रोफैसर यह भी कहते हैं, कि प्रायः कई बार धर्म परिवर्तन करने के यत्न किये जाते हैं और यह नही विचारा जाता है, कि ऐसा करना कहां तक सम्भव हैं और जो कामयाबी उसमें प्राप्त होगी उसका परिणाम क्या होगा ? यदि कोई मनुष्य केवल अपनी अभिज्ञता से या ऐसे कारणों से अपने धर्म विश्वास को नियत करता है, (१) जिनको कि वह अपने लिये परम मान्य नहीं समझता तो उसके लिये सम्भव हैं कि वह अपने उच्च स्वभाव को किसी प्रकार की हानि पहुंचाने के सिवा ज्यों ही कि उसको उससे उत्तम प्रकार के सिद्धान्त प्राप्त हों, तो अपने पूर्व विश्वास को छोड़ दे। परन्तु यदि जिस मनुष्य का धर्म किसी ऐसी पुस्तक पर निर्भर है, जिसको कि वह पवित्र और प्रमाणनीय समझता हो, तो उसका धर्म एक जातीय धर्म है, और जो मनुष्य अपने आपको उस जातीय धर्म से भिन्न करे, मान लो कि उसने अपने आपको जातीय शाखा से तोड़ लिया हैं। जो वंश अपना धर्म त्याग दे—समझो कि उसने अपनी जड़ों को कुल्हाड़े से काट डाला है।⊛ हर एक ईश्वरीय धर्म (जोकि किसी पुस्तक को पवित्र मानता है) उस वंश की तारीख का (खुलासा)

नोट (१) इसका आशय यह है कि जो मनुष्य केवल अपनी बुद्धि से अपना विश्वास नियत करता है, वह शीघ्रता से अपने निश्चय को बदल सकता हैं।

सार है, जो वंश कि उस धर्म पर चलता है मानो वह सार वंश के मन और मस्तिष्क को प्रफुल्लित करता है, जो वंश के लिये परम प्रिय वस्तु है, और उसके जीवन के लिये परमोपयोगी हैं।" उक्त प्रोफैसर महाशय यह भी बतलाते हैं कि इस सचाई को सिद्ध करने के लिये किसी मिसाल (उदाहरण) की आवश्यकता है, तो वह ईसाई धर्म से मिल सकती है। ईसाई धर्म यूरोप में फैल गया और जिन जातियों ने उसको स्वीकार किया उसने जातीय धर्म बना लया। क्योंकि उनके पास ईसाई धर्म के आने से पूर्व कोई इलहामी पुस्तक न थी। परन्तु यहूदियों ने जिनके पास एक इलहामी पुस्तक (तौरीत) विद्यमान थी, अब तक कठिन आपत्तियों के पड़ने और देश निकाला होने पर भी ईसाई धर्म न माना, हालांकि ईसाई धर्म उनकी तौरीत पुस्तक को इलहामी सिद्ध करता हैं और अपने इलहाम का विभाग मानता है। उक्त प्रोफैसर जी की सम्मति में कोई पुस्तक भी इलहामी तसदीक नहीं की जा सकती जब तक कि उसकी शिक्षा मनुष्य के स्वभाव को उच्च करने वाली न हो। और उनका विचार है कि हर एक इलहामी पुस्तक में थोड़ी बहुत इस प्रकार की शिक्षा पाई जाती है। जैसा कि, वह डाक्टर बैनरजी के उक्त मजमून ही यह सिद्ध करते हैं, कि वेदों और उपनिषदों की शिक्षा किसी प्रकार से भी अंजील से कम नहीं। और यहां तक मानकर वह वर्णन करते हैं, कि उनकी सम्मति में आधुनिक समय के हिन्दुओं के क्या कर्त्तव्य हैं। हमारी सम्मति में हिन्दुओं को ईसाई बनने या अंजील मुकद्दस को अपनी इलहामी किताब मानने की प्रेरणा करनी केवल मूर्खता ही प्रकट नहीं करती वरं नितान्त व्यर्थ है और उससे किसी प्राप्य फल की आशा नहीं हो सकती।"

हम यह चाहते हैं कि हिन्दू जाति फिर अपने वंश के उस उच्च भाव को प्राप्त करे, जिससे कि वह अपने पूर्व पुरुखाओं की सुपात्र सन्तान कहाने के योग्य हो, और जो उस उच्च पद की हैसीयत के अनुसार न हो जो उनको मनुष्यत्व की वंश की तारीख में प्राप्त हैं, हमारा विश्वास है, कि उनको यह पद इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता, कि

अपने जातीय जीवन की कामनाओं को तोड़कर अपने धर्म की शंकाओं के स्थान में अन्य वंश के कच्चे विश्वासों को ग्रहण कर लें। परन्तु इस कामना की प्राप्ति के लिये यह आवश्यकहै, कि वह आधुनिकअवस्था को भली भांति समझ लें। शायद यह सिद्ध करने की आवश्यकता नही है, कि उनके वंश का लिखा पढ़ा विभाग प्रचलित पूजन की मर्यादा को पसन्द नहीं करता। परन्तु फिर भी यह प्रकट करने की आवश्यकता प्रतीत होती है, कि इस सारी धार्मिक अधोगति की जड़ के विषय में जो उनकी सम्मति है वह ठीक नहीं।

प्रत्येक हिन्दू से जब पूछा जाता है कि तुम्हारी धर्म की नींव क्या है, तो वह वेदों का हवाला देता है। इसमें सन्देह नहीं कि कभी २ पुराणों वा तन्त्रों का भी नाम लिया जाता हैं, परन्तु इस बात को प्रत्येक हिन्दू मानता है, कि तन्त्र और पुराण स्वयं प्रमाणनीय पुस्तक नहीं हैं। जब तक यह सिद्ध न हो कि उनकी शिक्षा वेदानुकूल है, या यूं कहो कि पुराण तन्त्र वहीं तक माननीय हैं जहां तक उनकी शिक्षा वेदों से विरुद्ध नहीं। शोक है तो यह है, कि सबूत कभी पेश नहीं किया जाता। नहीं तो प्रत्येक हिन्दू को साफ तौर पर पता लग जावे कि प्रचलित देव पूजन की वेदों के धर्म से क्या अपेक्षा है। उक्त प्रोफैसर की सम्मति में वह चरखी जिसके चारों ओर भारत के समस्त धार्मिक प्रश्न घूमते हैं, वेद हैं। वह कहते हैं कि "चाहे फिलासफर हो या न हो, वैष्णव हो या शैव, वेद को सब उच्च समझते हैं। इसलिये हम फिर यह प्रश्न करते हैं, कि वेद क्या हैं, क्योंकि हमारा उत्तर चाहे अधूरा है, निश्चय कराने के अर्थ अयोग्य है, परन्तु उसके पढ़ने से यह उम्मेद हो सकती है, कि विद्वान् हिन्दू इन धर्म सम्बन्धी कठिनताओं को दूर करने का यत्न करेंगे।" इतनी भूमिका के अनन्तर प्रोफैसर गोल्ड-स्टकर अतीव योग्यता से यह सिद्ध करते है कि प्राचीन आर्य लोग उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रन्थों को मानो बड़ी प्रतिष्ठा पूर्वक देखते थे। और वेदों का आशय समझने के लिये उनकी सहायता लेते थे, परन्तु उनको मन्त्र भाग के समान ईश्वर प्रणीत नहीं मानते थे। वरंच उक्त

प्रोफैसर जी का विचार तो यह है कि वास्तव में हिन्दुओं की ईश्वर प्रणीत पुस्तक तो ऋग्वेद को ही समझना चाहिये ।

(४७) प्रोफैसर गोल्डस्टकर की अपील

अपने मजमूनों के अन्त में हिन्दु विद्वानों से वे अपील करते हैं, कि हिन्दुओं को चाहिये कि अपने वेद के पवित्र वाक्यों को एकत्र करके दुनिया को यह सिद्ध कर दिखलावें कि उनका धार्मिक विश्वास और विचार किसी दूसरे धर्म के नियमों और विचारों से कम नहीं है । उक्त प्रोफैसर मानते हैं, कि यह काम अतीव कठिन है, परन्तु वह कहते हैं, कि "इस समय यह कठिनता चाहें कितनी ही हो यह आवश्यक है कि परिणाम सदैव आंखों के आगे रहे और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस विचार से विद्वानों की सभायें नीयत की जावें जो आपस के विचारों से अपना आत्मिक प्रभाव सारी कौम पर फैला सकें । क्योंकि ऐसा करने से हिन्दु विद्वान् वह ऋण उतार सकेंगे, जो उनके पिता पितामह का उनके सिर पर है, और जिसके उतारने में वह सदियों से अचेत रहे हैं । हर एक हिन्दु इस बात से परिचित है, कि उसको अपने पिता पितामह का धन इसी शर्त्त पर मिलता है, कि वह अपने बाप-दादा की ओर से जो उस पर धर्मानुकूल कर्त्तव्य हैं, उनको पूर्ण करे । आजकल के हिन्दु बाप दादा के सर्वस्व के मालिक बनने का तो दावा करते हैं, यद्यपि उन्होंने देर से यज्ञ करना छोड़ दिया है, जिसके करने से ही वह इस विरासत के हकदार बन सकते हैं । कितने हिन्दु हैं जो ब्रह्म यज्ञ करते हैं, अर्थात् अपने धार्मिक पुस्तकों को पढ़ते हैं, हालांकि मनु महाराज और छान्दोग्य उपनिषद् के कर्त्ता इस यज्ञ को मनुष्य के तीन महाधर्मों में से बतलाते हैं । सच्च पूछो तो आधुनिक वंश के मन में उनके मान्य पुस्तक का ज्ञान एक ऐसे पतले धागे से लटक रहा है, जैसे कि महाभारत की कथा के अनुसार ऋषि व्यावरास के फूल कुशाकी सरी के सहारे गढ़ में लटक रहे थे, और उनके विषय में यह डर था कि उनके धर्मात्मा पुत्र जरतकारु की असावधानी से वह सदैव के लिये नरक में न जा पड़े" कैसी सुन्दर

उपमा है। हर एक हिन्दु अपने पितरों का श्राद्ध करना धर्म कार्य समझता है, परन्तु कितने हिन्दु हैं जो यह समझते हैं, कि प्राचीन ऋषि महर्षि और बाप-दादा का तर्पण केवल हमारे ब्रह्म यज्ञ से ही सफल हो सकता है। प्रोफैसर गोल्डस्टकर का कथन है कि "महाभारत की इस कथा से आजकल के हिन्दुओं को यह शिक्षा लेनी चाहिये, कि यदि वंश का हर एक मनुष्य इस बात से अभिज्ञ हो जावे कि अपने पितामह की ओर उसके क्या कर्तव्य हैं, तो अब भी बिगडी हुई बात बन सकती है।" क्या यह जितलाने की आवश्यकता है कि केवल हिन्दुओं की असावधानी से संस्कृत भाषा की पढ़ाई कैसी बुरी अवस्था में पहुंची हुई है। क्या यह सच नहीं है कि वर्षों की गफलत से जो हानि हिन्दुओं ने अपने लिट्रेचर को पहुंचाई है उसका जांचना असम्भव है और असंख्य बहुमूल्य पुस्तकरूप रत्न तो ऐसे छिपे कि अब उनका पता ही नही मिलता और न अब पता मिलने की सम्भावना है और बहुत से पुस्तक जो अब मिलते हैं वह भी न मिलते यदि कुछ अंग्रेज विवेकी उनकी तलाश करके उनकी रक्षा न करते। उक्त प्रोफैसर हिन्दुओं से अपील करते हैं कि 'ईश्वर के वास्ते अब उठो! तुम्हारी धार्मिक अवस्था पर जो कलंक अन्य जातियें लगाती हैं, उनको धो डालो। तुम्हारी बुद्धि और उत्कृष्टता के जो शेष चिह्न हैं उनको नष्ट न होने दो, अपनी प्राचीन और मान्य भाषा के बचे खुचे टुकड़ों को एकत्र करो, पुस्तकालय और विद्यालय नियत करो जिससे संसार में यह प्रसिद्ध हो जावे कि जो वंश अपना मान करती है वह दूसरों से भी मान पाने के योग्य है।" ईश्वर करे कि प्रोफैसर गोल्डस्टकर की यह अपील हमारे हिन्दु भाइयों के हृदय में वास करे।

(४८) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का आगमन

जिस समय राजा राम मोहन राय वेदान्त और उपनिषदों के अनुवाद से हिन्दु धर्म को ईसाइयों के धावों से बचा रहा था, उन्हीं दिनों में काठियावाड़ के एक उदीच्च ब्राह्मण वंश में एक बालक पल रहा था। जिसके मस्तक पर वैदिक धर्म का प्रचार और धर्म का सुधार

लिखा हुआ था। जिन दिनों में समूह के समूह हिन्दू युवा ईसाई हो रहे थे और हिन्दु वंश में कोलाहल मच रहा था, उन्हीं दिनों में एक दण्डी संन्यासी (वही बालक) नरबदा के वनों में इस महान् कार्य के लिये मानों तप कर रहा था, जिसके लिये कि प्रोफैसर गोल्डस्टकर ने हिन्दुओं से अपील की।

जिन दिनों में प्रोफैसर गोल्डस्टकर यह मजमून लिख रहा था, उन्हीं दिनों में एक बाल ब्रह्मचारी संन्यासी मथुरा प्रान्त में एक अन्धे विद्वान् संन्यासी से वेदों के व्याकरण में शिक्षा पा रहा था और अपने आपको इस परिवर्तन के अर्थ उद्यत कर रहा था जो अन्त को उसने कर दिखलाया।

यह ब्राह्मण बच्चा दण्डी संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती था और वह अन्धे दण्डी जिन्होंने उसको वैदिक व्याकरण की शिक्षा देकर पुराणों के खंडन और वैदिक धर्म के मंडन के लिये तय्यार किया था, स्वामी विरजानन्द सरस्वती थे। धन्य था वह गुरु और धन्य था वह शिष्य कि जिन्होंने वैदिक धर्म की डूबती हुई नौका को थाम लिया, जिन्होंने इस निराश्रय नौका को भंवर से निकाल दिया, और जिन्होंने हिन्दुओं को अधोगति से स्वतन्त्र होने का मार्ग दिखलाया।

यद्यपि प्रोफैसर गोल्डस्टकर के लेख स्वामी जी ने नहीं देखे क्योंकि स्वामी जी अंग्रेजी नहीं जानते थे और न ही उन्होंने उक्त प्रोफैसर जी की अपील वा अनुवाद ही सुना होगा। परन्तु वास्तव में यदि किसी आर्य सन्तान ने प्रोफैसर जी की अपील को हृदय में धारण किया और अनुभव कर आभ्यन्तरिक शब्द सुने और बड़े साहस से उनकी पालना का यत्न किया तो वह स्वामी दयानन्द जी महाराज ही थे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उस समय उत्पन्न हुए, जब कि हिन्दु मुसलमानी बादशाहत की बिगड़ी हुई इमारत को ठोकरें लगाकर आप अतीव प्रबल सामर्थ्य के पंजे में फंसते जाते थे। स्वामी जी ने उस समय में पालना पाई, जब कि ब्रह्म समाज प्राचीन आर्य धर्म का प्रचार करने के लिये यत्न कर रहा था, और ईसाई धर्म को भारत में जड़

जमती जाती थी। स्वामी दयानन्द सरस्वती उस समय तप कर रहा था, जब कि भारत में आत्मिक और पुलीटीकल हलचल से कोलाहल मच रहा था। स्वामी जी उस समय वैदिक व्याकरण में शिक्षा पा रहे थे, जब कि पंजाव में पाठप्रणाली के प्रबन्ध का आरम्भ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी उस समय में मैदान में निकले जब कि हिन्दुमात्र की व्याकुल आत्मायें किसी ऐसे महात्मा के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रही थीं।

ठीक आवश्यकता के समय परमात्मा ने उनके मन में प्रेरणा की कि वह वैदिकधर्म की रक्षा करें और भूली भटकी आर्य सन्तान को सीधे मार्ग पर लावें। मृत प्राय संस्कृत में फिर प्राण डाले और वैदिक लिट्रेचर में फिर प्रज्ञारोपन करे। यह कौन नहीं मान सकता, कि स्वामी दयानन्द सरस्वतो जी वैदिक धर्म संस्कृत भाषा, वैदिक लिट्रेचर और वैदिक 'फलासफी के लिये संजीवनी नहीं हुए।

॥ दोहा ॥

भारत दुर्दशा देख के, दयालु को दया आई।
महर्षि जिसने भेज के, दी यश पण्डिताई॥

(४९) स्वामी दयानन्द महा पुरुष थे

संसार में सैकड़ों लाखों मनुष्य नित्य उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों लाखों रोज मरते जाते हैं, सैकड़ों आत्मा अतीव शोभा और सज धज से दृष्टि में आती हैं, उनकी उत्पत्ति के समय असीम प्रसन्नता की जाती है, संसार के समाचार पत्र उनका राग गाते हैं, और माता पिता तथा सम्बन्धियों को बधाइयां देते हैं। देश के मन्दिरों में उनकी आयु वृद्धि के लिये प्रार्थना की जाती हैं, वड़े २ धर्मनिष्ठ उनकी कामयाबी के लिये प्रार्थना करते हैं। क्षण २ में उनकी रक्षा का विचार रहता है, हर वर्ष उनकी उन्नति की रिपोर्टें निकलती हैं, उनके जीवन के काम सृष्टि की अदभुत वातों में गिने जाते हैं, मानो यह कहो कि उनकी उत्पत्ति से ही लोगों के मन में एक इन्ट्रैस्ट (आह्लाद) पैदा हो जाता

है क्योंकि मनुष्यमात्र को उनसे बहुत उम्मेंदें होती हैं। परन्तु खेद, कि उनकी बड़ी संख्या अपने जीवन के कार्यों में यह सिद्ध कर देती है, कि उनकी उत्पत्ति कोई प्रसन्नता दायक न थी। उनमें से बहुत से अपने माता पिता और वंश को कलंकित कर और अपने देश के हानिकारक होते है और मनुष्यत्व हीन होते हैं तथा जब मर जाते हैं तो दुनियां को उनकी मृत्यु से कुछ खेद नहीं होता, वरंच कई बार तो यहां तक घृणा बढ़ जाती है कि उनकी मृत्यु से पृथिवी का भार टल जाना समझा जाता है। मनुष्य मात्र यह समझते हैं, कि धरती पर से एक बला दूर हो गई। दूसरी ओर थोड़ी संख्या उन आत्माओं की है, जो जगत् में आती हैं, बिन खबर ही उपजती है, केवल थोड़े से मनुष्यों अर्थात् सम्बन्धियों के बिना किसी को उनकी उत्पत्ति का ज्ञान भी नहीं होता उनकी उत्पत्ति समय, सृष्टि के लिये बड़ी बात नहीं गिनी जाती बहुत से इस प्रकार जन्म कर गुमनामी अवस्था में बढ़ते हैं और इसी अप्रसिद्धि में कुछ दिन निर्वाह करके संसार से यात्रा कर जाते हैं और जिस अप्रसिद्धि में जने थे उसी अप्रसिद्धि में मर जाते हैं। न उनकी उत्पत्ति, न उनका जीवन और न उनकी मृत्यु संसार के बड़े२ भवतव्यों में गिनी जाती है, लोगों को विदित भी नहीं होता कि कौन पैदा हुआ और कौन चढ़ गया। बहुत से अप्रसिद्धि में उत्पन्न होकर अप्रसिद्धि में ही शिक्षा पाते हैं, परन्तु जब युवा होते हैं तो प्रसिद्ध मनुष्यों में गिने जाते हैं, यदि सारे संसार में नहीं तो एक बड़े प्रान्त में नाम पाते हैं। जब मरते हैं तो बड़ा प्रान्त देशियों का उनकी मृत्यु पर रुदन करता है और उनके गुणों को स्मरण करके रोता हैं। उनका जीवन उनके देश निवासियों पर अपने गुणों के चिह्न छोड़ जाता है, जो चिह्न थोड़े बहुत चिरस्थाई होते हैं। परन्तु अन्त को एक दो पीढ़ी में उनका नाम भूल जाता है और फिर कभी विशेष-विशेष समय में ही मनुष्य महाशयों को याद आते हैं। उनके सिवा एक और श्रेणी मनुष्यों की है, जिनकी गिनती बहुत थोड़ी है। जो गुमनामी में उत्पन्न होकर गुमनामी में पलते हैं, परन्तु जब संसार में आते हैं, तो अपनी बुद्धि,

अपनी सचेतना, अपनी लगन, अपनी योग्यता अपने मनुष्यत्व और अपनी दिलेरी से संसार की वृत्ति को खेंचते । वह संसार के लिये एक अद्भुत् दृढ़ प्रभाव उत्पन्न करतेहैं और मनुष्यों के मनों को आकर्षण करते हैं। "कार लाईल" साहिब ऐसे मनुष्यों को उस महान् अग्नि के चिनगारों से उपमा देता है, जिसको मनुष्य परमात्मा कहते हैं। ऐसे मनुष्य पृथिवी पर सूर्य का काम देते हैं और सूर्य जैसी श्लाघा पाते हैं, सृष्टि को उनसे प्रकाश मिलता है, उनकी मृत्यु कुछ मनुष्यों के लिये या किसी विशेष श्रेणी के मनुष्यों के लिये खेदास्पद नहीं होती, वरंच मनुष्य मात्र के लिये खेद जनक होती है। उनका नाम कभी नहीं मरता और न उनका काम कभी नष्ट होता है। उनकी याद कुछ दिनों या कुछ शताब्दियों में दूर नहीं हो जाती, वरंच सदैव नवीन रहती है। उनकी फैलाई हुई ज्योति एक समय, या एक पीढ़ी को ही प्रकाश देने वाली नहीं होती, किन्तु उसका प्रतिबिम्ब तो ऊपर से सदैव के लिये जगत् में रहता है। उनकी कार्य्य प्रणाली एक वंश या किसी समय तक ही स्मरण योग्य नहीं होती, वरंच उन पर सदैव विवाद और विचार होता रहता है। ऐसे मनुष्यों के जीवन के बर्ताव संसार प्रसिद्ध कार्य्य (वाक्यात्) से होते हैं। यह मनुष्य बहुत थोड़े और गिनती के होते हैं। संसार के अन्धकार में वह प्रकाशित स्तम्भों का काम देते हैं। ससार के बड़े महावन में वह विश्रामालय के समान होते हैं, जगत् के बड़े शाहराहपर वह उन पत्थरों के समान होते हैं, जिन पर फासले (अन्तर) के चिह्न लिखे होते हैं। ऐसे लोग आत्मिक क्षुधातुरों के लिये भंडार और तृषातुरों के लिये छबीलों का काम देते हैं। लोग उनके व्याख्यानों से ही अपने आत्मा का आहार पाते हैं और अपनी व्याकुलता को शांति से बदलते हैं। कोई उनको अवतार कहले, कोई पैगम्बर, कोई ईश्वर के स्थापन्न कोई ऋषि महर्षि और कोई महापुरुष के नाम से पुकारे, परन्तु वह वास्तव में एक ही शिला के टुकड़े-एक ही अग्नि के चिंगाड़े, एक कारखाने के पहिये और एक ही कल के पुरजे होते हैं। संसार का कोई भाग ऐसे मनुष्यों के

अस्तित्व से खाली नहीं होता, महात्मा बुद्ध, महाराज कृष्णचन्द्र जी, महर्षि पतंजली और कणाद, गौतम, व्यास, जैमिनी तथा कपिल आदि इसी श्रेणी के मनुष्य थे। कालीदास, वाल्मीक जी भी इसी प्रणाली के मनुष्य थे। स्वामी शंकराचार्य, गुरु नानक महाराज, गुरु गोविन्दसिंह जी इसी गण के पुरुष थे, राजा विक्रम, राजा अशोक और महाराज शिवाजी इसी प्रकार के पुरुष थे। हमने केवल थोड़े से नाम नमूने की रीति पर वर्णन किये हैं और उनके भिन्न-भिन्न पदों और भांति-भांति के कामों का भी विचार नहीं किया। हम दृढ़ विश्वास से कहते हैं, कि स्वामी दयानन्द सरस्वती भी इसी श्रेणि के महापुरुष थे। अप्रसिद्धि में जन्में, अप्रसिद्धि में पले, अप्रसिद्धि में शिक्षा पाई, परन्तु जिस समय संसार में निकले तो जीवन पर्यन्त सिंह के समान गर्जते रहे। स्वामी दयानन्द एक पुरानी जाति को मृत्यु के आसन से उठाकर उम्मेद (आशा) के सिंहासन पर बैठा गया। एक महान् धर्म को गढ़े से निकालकर प्रकाश के उच्चशिखर पर बलती अग्नि के समान ज्योतिमान् कर गया। एक महान् भाषा (संस्कृत) को अप्रसिद्धि की अवस्था में दुनियां की जुबानों में प्रधान पद दिला गया। सांसारिक इतिहास को अन्धकार से निकालकर प्रकाशमय मार्ग पर चला गया। दुनियां की सभ्यता को भेड़चाल से निकाल सचेतता के मार्ग पर चला गया। किसी प्रकार देखो इसमें किञ्चित् संदेह नहीं कि स्वामी दयानन्द महापुरुष था। यदि शारीरिक शक्ति की ओर दृष्टि दो, तो निसंदेह स्वामी दयानन्द महान् थे। साधारण शक्ति के कुछ मनुष्य तो उसकी दृष्टि में तुच्छ ही थे। मानुषीय निर्बलता के रोकने और इन्द्रिय दमन में भी महान् थे। उत्पत्ति से मृत्यु पर्य्यन्त कभी स्त्री के समीप नहीं गया। उनका बड़े से बड़ा शत्रु भी किसी प्रकार का संदेह उनके बालब्रह्मचारी होने में नहीं कर सकता न किसी ने उनके जीते जी किया और न उनकी मृत्यु के पीछे हुआ।

स्वामी अतीव उच्चश्रेणि का वीतरागी और विरक्त था, उसने अच्छे बड़े पितृ धन को लात मारी और फिर भी कई अवसर उसको

दुनियां की दौलत का स्वामी बनने और सुख ऐश्वर्य भोगने के मिले, परन्तु उसका दिल कभी भी न डगमगाया, बुद्धि स्मृति में भी अद्भुत था, उसके समय में बहुत थोड़े मनुष्य थे, जो बुद्धि की तीक्ष्णता में उसके तुल्य कहे जा सकते हैं। विद्या और उत्कृष्टता में भी असाधारण उच्च पद विराजमान था। संस्कृत विद्या में भी अपने समयमें अद्वितीय था। निर्भयता में भी अपनी श्रेणि के अन्य महापुरुषों से कम न था। अपने विश्वास का पक्का था। एक समय था कि सारा संसार एक ओर था और स्वामी दयानन्द एक ओर था। अपने विश्वास के प्रकट करने और विचारों के प्रचार करने में अतीव निर्भय था। न राजा से डरता था, न प्रजा से न अपनी बिरादरी से और न दूसरी बिरादरियों से और न अपने वंश से, न अन्य वंशों से। काम करने में अनथक था। यदि उसकी पबलिक लाईफ (जीवन) के थोड़े से समय और उसके काम को देखा जावे, तो उसके महत्त्व की पूर्ण साक्षी मिलती है। क्या बोलने में, क्या विवाद में, क्या लिखने में एक असाधारण शक्ति रखता था। इनके सिवा उसमें एक असाधारण आकर्षण शक्ति थी जिससे वह लोगों को अपनी ओर खेंचता था। जो मनुष्य उसके सन्मुख आता था, उस पर एक छाया पड़ जाती थी। आध्यात्मिक जीवन में एक बड़े पद का योगी था, जिसको अपने योग बल का किञ्चित् भी अभिमान न था।

अभिमान तो दूर वह अपने योग बल को लोगों में प्रकट करना पाप समझता था, कठिनता में घबराता नहीं था। वरंच साहस और शूरता से उसका सामना करता था। न किसी की मित्रता और न शत्रुता की परवाह करता था। बहुत से मित्र शत्रु बन गये और बहुत से शत्रु मित्र बन गये। परन्तु उस महान् पुरुष के उद्देश्य में या कार्य में या व्यवहार में किञ्चित् भेद न आया। सार यह है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती में महापुरुषों के गुणों का पुञ्ज विद्यमान् था। यद्यपि अभी समय नहीं आया कि उसके कार्य्य का पूरा तोल किया जावे, परन्तु हमारा विश्वास है कि जब संसार स्वामी जी के नाम से

पूर्ण परिचित हो जावेगा और जब संस्कृत भाषा पृथिवी की भाषाओं में अपनी प्रधान पदवी पर विराजमान् हो जावेगी, तो ससार भी एक सम्मति होकर स्वामी जी को दुनियां के महा पुरुषों की श्रेणि में अवश्य उच्च पद देगा और उनके मिशन और कार्य को उसी दृष्टि से देखेगा जैसे कि अन्य महापुरुषों के कार्य को देखता है।

(५०) स्वामी दयानन्द सरस्वती का काम

स्वामी जी अभी बालक थे, जब उनको यह बोध हुआ कि मूर्ति पूजन ईश्वर उपासना का सच्चा मार्ग नहीं, वरञ्च बहुत बुरा और भ्रष्टाचार है। यह विचार दृढ़ता से उनके हृदय में जम गया और सारी आयु उनके हृदय से यह विचार न्यून न हुआ। बालकपन में ही अपने माता पिता के सामने मूर्त्ति पूजन का निषेध किया और अपने पिता के बड़े क्रोध करने पर भी (जो एक बालक के लिये अतीव भय जनक होता है) उन्होंने उस अपने विश्वास को छिपा न रक्खा। ब्रह्मचर्य्य और उसके पीछे संन्यास अवस्था में भी कभी अपने विश्वास को नहीं छिपाया। न किसी मण्डली से डरा और न किसी मण्डली वाले से। न किसी राजा से डरे और न किसी पण्डित से। जब तक जीते रहे अपनी सिंह ध्वनी को मूर्त्ति पूजन के खण्डन में गर्जाते रहे। सृष्टि को मूर्त्ति पूजन से हटाकर निराकारोपासना की ओर प्रेरणा करना, उनके जीवन का बड़ा उद्देश्य था और प्रत्येक मनुष्य को विदित है कि किस दिलेरी और हिम्मत से उन्होंने उस प्रकाश को बुझने नहीं दिया, जो उनको बाल्यावस्था में हुआ था। हर एक हिन्दु जानता है कि जैसे स्वामी मूर्त्ति पूजन का बडा शत्रु था, उपनिषदों के जमाने के पीछे भारतवर्ष में ऐसा साहसी, निर्भय, कड़ा और प्रत्यक्ष शत्रु मूर्त्ति पूजा का कोई नहीं पैदा हुआ और सारी दुनिया क्या ईसाई, क्या मुसलमान, क्या पौराणिक, क्या वेदान्ती और क्या बौद्ध, सब इस बात को जानते हैं कि मूर्त्ति पूजन उन विषयों में था, जिनके मानने का विचार उनके हृदय में कभी पैदा नहीं हुआ था। मूर्त्ति पूजन के खंडन से उनके सजातीय, एक भाषा वाले और एक धर्म वाले मनुष्यों

साधारण मनुष्यों ने ही नहीं वरञ्च विद्वानों ने भी उसे नास्तिक कहा है। किसी ने पादरियों का वैतनिक सेवक कहा, किसी ने धर्म का शत्रु बतलाया, परन्तु इस पुरुषसिंह ने एक की परवाह न की। कई बार उसके सजातीय पण्डितों ने छिपकर और कई वार प्रकट होकर रुदन करके उनसे यह प्रार्थना की, कि वह मूर्त्ति पूजन का खण्डन छोड़ दे, तो वह उसको अवतार बनाकर पूजने को तय्यार हैं। परन्तु उस महा पुरुष के हृदय में न उनके रोने पीटने का और न उनकी रिशवत का असर हुआ। वह एक दृढ़ आसन पर बैठा था जिससे उसको कोई हिला नहीं सकता था। बहुत से ठाकुरों, राजा, महाराजाओं ने पोशीदा और प्रकट होकर यह सम्मति दी, कि वह मूर्त्ति पूजन का खंडन छोड़ दे। उसको अनेक प्रकार का लोभ दिया गया, कभी कभी धमकियां भी दी गई, प्राणों का भय, बदनामी का डर और धिक्कारों की बुझाड़ क्रमशः उसके सामने आये, परन्तु उसके दृढ़ हृदय पर कुछ भी असर न न कर सके। मूर्त्ति पूजन जिस रीति, जिस स्थान और जिस दशा में देखी वहीं उसका बड़ी निडरता से खण्डन कर दिया। यह विषय उसके हृदय में पाषाण रेखा के समान अंकित था, जिसे कोई वस्तु मिटा नहीं सकती थी। यह एक ऐसा विषय था जिस पर वह सारे संसार की परवाह नहीं करता था। काशी जी के ३०० पण्डित कलकत्ते के विद्वान् और नदिया के दार्शनिक कोई उसको इस आसन से नहीं हिला सके। महाराजा जयपुर, महाराणा उदयपुर, महाराजा जोधपुर और महाराजा इन्दौर और महाराजा काशी सबके यत्न व्यर्थ हुए। मुसलमान और ईसाई प्रकट रीति से मूर्त्ति पूजन के शत्रु हैं, परन्तु उनमें भी जितना अंश उसने मूर्तिपूजा का देखा उसका बड़े साहस से खण्डन किया। स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि केवल बुद्धि अनुसार ही मूर्त्ति पूजा भ्रष्टाचार नहीं है, वरंच वेदों में भी उसकी मनाही है और ईश्वर ज्ञान से भी विरुद्ध है। स्वामी जी का यह दृढ़ विश्वास था कि मूर्त्ति पूजा समस्त धर्म और शिष्टाचार सम्बन्धी बुराइयों की माता है और पुलीटीकल दासभाव और अप्रतिष्ठा उसका आवश्यक फल हैं। वह

समझता था कि हिन्दुवंश कभी धर्म के सत्पथ पर नहीं चल सकती, और न सोशिअल या पुलीटीकल उन्नति कर सकती है जब तक कि वह मूर्ति पूजन को न छोड़ दे। इसलिये उसने अपनी आत्मा का समस्त बल मूर्त्ति पूजा के खंडन में उसको वेद विरुद्ध और बुद्धि के विरुद्ध सिद्ध करने में लगा दिया। कौन नहीं जानता उसने बड़े-बड़े बुतपरस्तों और बड़े-बड़े मूर्त्ति पूजा के भक्तों के दिलों को हिला दिया। उसने हिन्दु जाति के स्थिर हुए हुए जल को चलायमान कर दिया और हिन्दु पण्डितों को इस खोज में डाल दिया कि मूर्त्ति पूजा मंडन के प्रमाण ढूंडे। क्योंकि स्वामी जी वेदों के पूर्ण मानने वाले थे, यदि मूर्त्ति पूजन का प्रमाण वेदों में मिल जाता तो उसको पूर्ण उत्तर मिल जाता। सत्य तो यह है कि मूर्त्ति पूजा और देवपूजन के खण्डन में स्वामी दयानन्द ने वह काम किया कि जिसमें स्वामी शंकराचार्य जैसे महात्मा भी घबरा गए और अशक्त रहे। मूर्त्ति पूजा को वेद विरुद्ध सिद्ध करने से स्वामी दयानन्द ने हिन्दु धर्म के शत्रुओं और अन्य मजहब वालों से उनका और उससे दृढ़ भयानक शस्त्र जिससे वह हिन्दु धर्म को चकनाचूर कर देते थे, छीन लिया। मुसलमान और ईसाइयों की सबसे बड़ी शंका जो वेदों के धर्म के विरुद्ध थी, स्वामी दयानन्द की शिक्षा से छिन्न भिन्न हो गई। मुसलमान और ईसाइयों की अब यह शक्ति न रही कि हिन्दू धर्म को मूर्त्ति पूजा का धर्म बतलाकर हिन्दुओं को बहका सकें और अपने सम्प्रदाय में मिला सकें मानों कि ईसाई और मुसलमानों के हमलों का सारा बल टूट गया। मूर्त्ति पूजा के दृढ़ दुर्ग को वास्तव में शुद्ध ईश्वर पूजन का घर सिद्ध करके, स्वामी दयानन्द ने मुसलमान और ईसाइयों के धावों को निर्मूल (निर्बल) कर दिया। और वैदिक धर्म पर प्रबल आने के उनको अयोग्य बना दिया। लाखों जीवों को अपने धर्म से पतित होने से बचा लिया यदि स्वामी जी अपने जीवन में और कुछ भी न करते और केवल इतना ही कर जाते, तो भी हम समझते कि केवल इस काम में वह महापुरुष कहलाने के योग्य होते। परन्तु स्वामी दयानन्द ने और भी

महान् कार्य किये, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे। तो भी हमको यह कहने मे कुछ भी शंका नहीं कि मूर्त्ति पूजन का खण्डन स्वामी दयानन्द के जीवन का मुख्य उद्देश्य था।

(इ) २य, कार्य जो स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया वह यह था कि हिन्दुओं को ब्राह्मणों के बन्धनों से सचेत कर दिया। उन्होंने आर्य की बुद्धि को उच्च सिंहासन पर बिठा कर उसके मार्ग दृष्टान्त के लिये वैदिक मन्त्रों के प्रकाश का पताका दे दिया। जो बुद्धि सहस्रों वर्षों से जकड़ी हुई थी, जिसकी यह सामर्थ्य न थी कि अपनी बेड़ियों को काटने का विचार भी करती, जिसके सारे अंग ऐसे जकड़े हुए थे कि वह इस बन्धन से छूट नहीं सकती थी, इसके सिवा कि वह सम्प्रदाय त्याग अन्य धर्म ग्रहण कर ले, जिस पर बड़ी-बड़ी दृढ़ मोहरें लग चुकी थीं, जिसको अपने लिये विचार करने की मनाही थी, जिसको शिक्षा लेने की आज्ञा न थी, उसको स्वामी दयानन्द सरस्वती ने एक क्षण में मुक्त बन्धन कर दिया। कहां वह बन्धन और कहां यह स्वतन्त्रता। कहां यह कठिनता कि भूल से भी वेद मन्त्रों के सुनने वाले शूद्रों के कानों में शीशा डाला जावे और कहां यह स्वतन्त्रता कि उन्हें बुलाकर वेद मन्त्र सुनाये जावें और सिखाये जावें। उन्होंने समस्त आर्य सन्तान को गायत्री की शिक्षा दी और लोगों को बतलाया कि शिक्षा से बड़ी बड़ी बरकत जो परमात्मा से मांग सकते हैं, वह अपनी बुद्धि की शुद्धता और स्वच्छता है।

स्वामी दयानन्द ने लोगों को यह समझाया कि सबसे श्रेष्ठ और सबसे उत्तम और प्यारा गुरु जिसकी शिक्षा में भूल नहीं हो सकती, जिस की शिक्षा में पक्षपात नहीं, जिसकी शिक्षा में संदेह नहीं, वह परमात्मा हैं। उन्होंने जब अपने पुत्र मनुष्य को जगत् में भेजा तो उसको उस यात्रा में निर्भय रास्ता पार उतरने की शिक्षा दी। यह शिक्षा सृष्टि के आदि में अर्थात् उत्पत्ति के आरम्भ में की गई, जिससे कि मनुष्य मात्र अपनी बुद्धि की सहायता से सदैव लाभ उठाते रहें। स्वामी दयानन्द ने आर्य सन्तान को बतलाया कि जो कुछ ज्ञान और सचाई

संसार में दिखाई देती है, उसके आदि कारण परमात्मा हैं क्योंकि वही आदि गुरु हैं । आदि गुरु ने जो शिक्षा दी वह वेद मन्त्रों में वर्णित है और वह वेद मन्त्र सब मनुष्यमात्र का सर्वस्व हैं। मनुष्यों को उन वेद मन्त्रों के पढ़ने और उनसे शिक्षा के प्रकाश ग्रहण करने का अधिकार है। आदि गुरु की शिक्षा और मनुष्य आत्मा के बीच कोई परदा और कोई रुकावट नहीं। जो बनावटी परदे और रुकावटें परमात्मा के ज्ञान और मनुष्य के बीच स्वार्थता से नियत की गई थीं, स्वामी दयानन्द ने उनको उठा दिया और लोगों को स्पष्ट रीति से परमात्मा के ज्ञान की ज्योति दिखला दी। लोगों को उस श्रोत का पता दे दिया, जिससे कि सब नहरें निकलीं हैं। मनुष्यों को उस सदैव की ज्योति की झलक दिखला दी जिससे कि समस्त संसार के सारे लैम्प झाड़ और फानूस प्रकाशित होकर अन्धेरे में मनुष्य की सहायता करते हैं। स्वामी दयानन्द के जीवन का यह कार्य महान् कार्य है, क्योंकि न बडे आदमियों को वरंच वंश के विद्वानों को भी जो इस श्रोत से नितान्त अनभिज्ञ थे, और चाहे वह हठ और पक्षपात व स्वार्थता से सर्व साधारण को वेदों की शिक्षा के अपात्र बताते थे। परन्तु आप भी वेदों के विषय से नितान्त अनभिज्ञ थे। चाहे हिन्दू मात्र यह समझते थे कि हमारा धर्म वेदों पर निर्भर है। प्रत्येक ब्राह्मण भी यही मानता था और कहता था। परन्तु न तो सर्व साधारण को और ना ही उनके गुरु ब्राह्मणों को यह विदित था कि वेद क्या हैं? और उनकी शिक्षा क्या है?

१८६२ ई० में बाम्बे हाईकोर्ट में एक लायबल (अप्रतिष्ठा, हतक इज्जत का मुकद्दमा हुआ, जिसका मूल यह था कि सत्यप्रकाश समाचार पत्र के सम्पादक ने बल्लभाचार्य गुरु महाराज और उसकी शिक्षा तथा आचार व्यवहार के विरुद्ध एक बड़ा अप्रतिष्ठा द्योतक लेख छापा था, जिसमें उसने यह प्रश्न उठाया कि ऐसी बदचलनी और बदमाशी की शिक्षा हिन्दुओं के प्राचीन धर्मानुकूल कर्त्तव्य नहीं हो सकती, और बल्लभ सम्प्रदाय एक नया ढकोसला है जो थोड़े दिनों से एक स्वार्थी मनुष्य ने चलाया था। वल्लभ सम्प्रदाय के गुरु ने बाम्बे हाईकोर्ट में

अप्रतिष्टा का दावा किया। वादी प्रतिवादी का सहारा वेदों पर था। परन्तु दोनों को विदित न था कि वेद क्या हैं, और उनमें शिक्षा क्या है परन्तु वादी ने अपने बयान में यह लिखाया था, कि हिन्दुओं की प्राचीन धर्म पुस्तक यह हैं। १ पुराण, २ वेद और ३ शास्त्र। परन्तु (जिरह प्रतिवादी के प्रश्नो में) उसको स्पष्ट रीति से मानना पड़ा, कि उसको चारों वेदों और ब्राह्मणों के नाम भी विदित नहीं थे। वल्लभ सम्प्रदाय के उस गुरु की यह कथा ही, उस मूर्खता के प्रमाण के लिये बहुत थी, जो वेदों के विषय में हिन्दुओं में विस्तृत थी। वरंच दयानन्द सरस्वती के संक्षिप्त जीवन से भी इस मूर्खता का प्रमाण मिलता है। उससे और दृढ़ साक्षी की क्या आवश्यकता है कि जब स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बाल शास्त्री जैसे सुप्रसिद्ध काशी के मुखिया और सैकड़ों अन्य संस्कृत के विद्वानों को लेकर स्वामी दयानन्द से मूर्त्तिपूजन की चर्चा करने को आये, तो उन्होंने मन्त्र भाग के स्थान में गृह्य सूत्रों के कुछ पन्ने उनके हाथ में दे दिये, और उन्हीं को वेद कह कर प्रकट किया। उस समय को जाने दीजिये, अब तक लाहौर सनातन धर्म सभा का यह मन्तव्य है कि पुराण केवल इलहामी (ईश्वर प्रणीत) ही नहीं वरंच यह उसी समय उतरे हैं, जब कि वेदों का मन्त्र भाग उतरा है। हालांकि साधारण सी संस्कृत जानने वाला भी बतला सकता है, कि पुराणों के ईश्वर प्रणीत होने के विषय में कुछ ही दावा क्यों न हो, परन्तु पुराणों के समय के विषय में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। स्वामी दयानन्द सरस्वती के उपदेश से पहले यूरोप के संस्कृतज्ञ यह प्रकट कर चुके थे कि किसी समय में भी हिन्दू विद्वानों ने पुराणों को इलहामी होने की पदवी नहीं दी। प्रोफ़ैसर गोल्डस्टकर एक स्थान में क्या ठीक कहते हैं कि "जब कोई वंश अपने उपदेशकों के बहकाने से और अविद्या के अन्धकार से इस प्रकार गिर जावे, कि पुराणों जैसी पुस्तकों का ईश्वर की ओर से इलहामी मान लेवे, तो उनके विषय में एक ही परिणाम निकल सकता है और वह यह है, कि वह अपनी प्रारब्ध की उस सीमा तक गिर गई है, कि जिससे उसका फिर उठना आवश्यक है। हिन्दू

जाति उस सीमा तक पहुंच गई है, और अब देख रहे हैं, कि यह किधर पांव उठाती है। माना कि वह कई सदियों से इसी स्थान पर खड़ी हैं, परन्तु वर्त्तमान समय के भवतव्य सोशिअल और पुलिटिकल का बल ऐसा प्रबल है, कि उसका आधुनिक स्थान पर स्थित रहना असम्भव है। जब से हिन्दुओं ने पुराणों को अपने धर्म का श्रोत माना तब से धर्म सम्बन्धी ठगी के मार्ग में जो रुकावटें थी वह सब दूर हो गई, और ऐसे सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये, कि जिन्होंने केवल धर्म को ही न गिरा दिया, वरञ्च सोसायटी का चकनाचूर कर दिया। ऐसे २ नियम बनाये गये जो कि मनुष्य के मन (दिल व दिमाग) के लिये लज्जाजनक हैं, ऐसे ऐसे दस्तूर जारी कर दिये गये कि जो प्रत्येक हिन्दू के वास्ते चिन्ता और लज्जा का हेतु हैं। इस बात की आवश्यकता नहीं कि अधिक विस्तार से इन दस्तूरों की परीक्षा की जावे। जैसा कि तन्त्र लिट्रेचर की कलई खोलकर लोगों को दिखाई जावे या हिन्दुओं के बुद्धिमान विभाग को इस बात का विश्वास देने के लिये अधिक परिश्रम किया जावे, क्योंकि कलकत्ता बम्बई और बनारस से जो लेख प्रकाशित होते हैं और समाचार पत्र और रिसालों के द्वारा जो विचार प्रकट किये जाते हैं, उनसे प्रकट होता है कि जो लोग मस्तिष्क सामर्थ्य में यूरोप के पण्डितों की उच्च श्रेणियों की तुलना कर सकते हैं, उनके सामने ऐसी साक्षी देने की आवश्यकता नहीं, जिससे यह सिद्ध हो सके, कि उनके वंश की वर्त्तमान दशा प्राचीन समय से कैसी विपरीत है, परन्तु तो भी हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इन विद्वानों के समस्त यत्न उस खतरे को रोकने के लिये अपर्याप्त हैं, जो कि हिन्दू वंश को भविष्य में हैं। जब तक कि वह बड़ी दिलेरी से रोग के कारण को नहीं पकड़ते। यूरप के धार्मिक संशोधन का हवाला देकर उक्त प्रोफैसर लिखते हैं कि—

"इस बुराई को रोकने का कोई उपाय नहीं है, सिवा इसके कि सर्व साधारण को उस असली पुस्तकों के देखने की आज्ञा दी जावे, जो इस समय एक अतीव थोड़े भाग ब्राह्मणों के अधिकार में है, जो

उसके अर्थों को समझ सकते हैं। और वह लिट्रैचर का भाग हिन्दूमात्र को पढ़ाया जावे जिससे यह सिद्ध होता है कि हिन्दुओं के धर्म की असली जड़ न ब्राह्मण हैं और न पुराण वरंच ऋग्वेद के मन्त्र हैं।"

क्या हम नहीं जानते कि प्रोफैसर गोल्डस्टकर की इस योग्य अपील को न कलकत्ता और न बम्बई के विद्वानों ने सुना, और न काशी के पण्डितों ने ही, यदि किसी मनुष्य के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुए, केवल उत्पन्न ही नहीं वरं यदि किसी मनुष्य ने उन्हीं विचारों को अपने जीवन का उद्देश्य बना कर हिन्दू धर्म के संशोधन का भार उठाया तो वह स्वामी दयानन्द जी महाराज थे। स्वामी दयानन्द जी ने युक्ति बल से, प्रमाणों के बल से, इतिहास के बल से, पूर्ण रीति से सिद्ध कर दिया, कि पुराण हिन्दुओं की इलहामी पुस्तक नहीं हो सकते, और न हैं, जो कोई पुराणों के मजमून पढ़ेगा, वह तत्काल इस विषय में स्वामी जी की व्यवस्था को मान लेगा। उन्होंने सिद्ध कर दिखाया कि हिन्दुओं के इलहामी पुस्तक जिन पर उनका धर्म निर्भर है, न पुराण, न शास्त्र, न उपनिषद और न ब्राह्मण ग्रन्थ हैं, किन्तु केवल संहिता है। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि चाहे ब्राह्मण, उपनिषद और शास्त्र ऋषि प्रणीत हैं परन्तु वे आप वेदों के आश्रय हैं, और वहीं तक माननीय हैं जहां तक वेदों के अनुकूल हैं या वेद विरुद्ध नहीं। सिद्धान्त यह { कि केवल चारों वेद ही ईश्वर का ज्ञान हैं। उन्हीं पर प्राचीन वैदिक धर्म की बुनियाद है, और वही एक मात्र हमारे आश्रय हैं, वही हमारे लिये अन्तिम प्रमाण हैं। शास्त्रकारों के लेखानुसार वही स्वतः प्रमाण हैं, और वही सत्पुस्तक हैं, जिनमें सत्य के सिवा और कुछ नहीं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन का
३य महान् कार्य

(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने हमको यह बतला दिया कि

ईश्वरीय ज्ञान की पुस्तकें वेद हैं, परन्तु यह ज्ञान हमारे लिये किसी काम का न था जब तक कि वेदार्थ समझने की कुञ्जी वह हमको न देते। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जाना कि वेदों की संस्कृत और प्रचलित भाष्यकारों के समय की संस्कृत में कितना भेद हो गया था। उन्होंने विचार से जाना कि भाष्यकारों ने वेदों की भाषा को समझने और उसके अनुवाद में बड़ी २ भूलें की हैं, क्योंकि उन्होंने वैदिक संस्कृत को माडर्न (नई) संस्कृत के नियम से पढ़ा और वैदिक संस्कृत के समझने के बड़े असूलों को दृष्टि से हटा दिया। वेदों पर आज कल प्रामाणिक भाष्य सायणाचार्य का गिना जाता है, जिसका समय विवेचक अंग्रेजों के कथनानुसार केवल ५०० वर्ष पहले था। सायण मुसलमानी समय में पैदा हुआ। और उसकी समस्त रचना में पौराणिक छाया पड़ी हुई है। सायण पौराणिक देवता पूजन का प्रतिनिधि था, और महीधर तन्त्र फिलासफी का। दोनों ने भाष्य करते समय निरुक्त-कार की आवश्यक शिक्षाओं को भुला दिया। दोनों ने अपने समय की प्रचलित संस्कृत के अर्थों से वैदिक मन्त्रों का अनुवाद किया, दोनों ने इस मोटे असूल को भुला दिया, कि वेदों के शब्द यौगिक हैं, और उनके वास्तविक अर्थ तब ही निकल सकते हैं जब कि उन्हीं नियमों से उनके अर्थ किये जावें। दोनों ने पाणिनी मुनि के व्याकरण, निरुक्त और निघण्टु की परवाह न कर वेदों का भाष्य कर दिया। जिन मन्त्रों पर उपनिषदकारों, ब्राह्मण ग्रन्थों के रचनेवाले ऋषियों के अर्थ विद्यमान थे, उन पर भी अपनी बुद्धि के प्रताप का प्रकाश किया। परिणाम यह हुआ कि अर्थों के अनर्थ कर दिये। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानकर भी अपने भाष्यों के द्वारा साधारण पुस्तकों से भी गिरा दिया। जिस समय वेद अप्रकटता से प्रकट हुए, लोगों ने स्वाभाविक महीधर और सायण भाष्य पढ़े, और वेदों को अचित्य पुस्तक समझा। ईश्वरीय ज्ञान मानना दूर लिखे पढ़े हिन्दू यह न मान सके कि इन पुस्तकों को उच्चपद भी मिल सकता है। ब्रह्म समाज ने चार युवा ब्राह्मणों की साक्षी से जिन्होंने वेदों को इन्हीं भाष्यों की सहायता से काशी जी में पढ़ा था,

ईश्वर प्रणीत होने के पद से गिरा दिया। राजा राममोहनराय के स्थापित ब्रह्मसमाज ने इन्हीं ब्राह्मणों की साक्षी के सन्मुख, राजा साहिब और अन्य प्राचीन ऋषियों की साक्षी को निकम्मा मान लिया। पहले पहल तो यूरपीय विद्वानों ने भी इसी प्रकार की व्यर्थ सम्मतियां प्रकट कीं, परन्तु धीरे २ उनको यह सन्देह होने लगा कि वेदों के समझने के लिये सायण और महीधर अच्छे मार्ग द्रष्टा नहीं हैं, परन्तु आर्यावर्त्त में किसी ने यह साहस न किया कि सायण के भाष्य को हटा कर आप वेदों के अर्थ करता। इसके कई कारण थे। पहिले तो यह कि प्रायः ब्राह्मण लोग आप विचार शक्तिहीन थे। वह आप लकीर के फकीर थे, किसी की सामर्थ्य नहीं थी, कि सोचने समझने की दिलेरी करता। कुछ शताब्दियों से जिस माग पर पड़े हुए थे उसी पर चले जाते थे। कोई उस पथ से तनिक भी इधर उधर जाने की दिलेरी नहीं करता था। यदि सदियों में कोई स्वामी विरजानन्द जैसा उत्पन्न होता था, तो अपनी अवस्था में वह ऐसा समय नहीं पाता था, कि जिससे लाभ उठाकर अपने विचारों को प्रकट करे। सत्य तो यह है, कि शंकर स्वामी की मृत्यु के पीछे स्वामी दयानन्द से पूर्व किसी को साहस नहीं पड़ा, कि सायण और महीधर के भाष्यों की सहायता के विना वेद मन्त्रों के अर्थ करे। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भली भान्ति समझ लिया कि हिन्दुओं की निर्बुद्धिता की जड़ें उसी समय कटेंगी, यदि वह उस भय और निर्बलता को विद्वत् मण्डली के हृदय से दूर कर दें। जैसा कि सबसे पहले वह निकले। और ईश्वरीय ज्ञान को अपनी समझ के अनुसार सर्व साधारण तक पहुंचाने का यत्न किया। क्या जानें २००० वर्ष के पीछे इन बोदे हिन्दुओं को उन्होंने यह बताया, कि वेदों में इन्द्र, अग्नि, वायु आदि शब्द सब परमात्मा के नाम हैं। वेदों का व्याकरण अष्टाध्यायी है, और वेदों के अर्थ समझने के लिये सायण और महीधर ठीक मार्ग द्रष्टा नहीं हैं। वरञ्च असली अध्यापक निरुक्त, निघण्टु, उपनिषद् और ब्राह्मण आदि हैं। २००० वर्ष से कुछ अधिक के पीछे स्वामी जी ने हिन्दुओं को यह बताया कि

यज्ञ देवता शब्दों के असली अर्थ क्या हैं। और जहां २ वैदिक लिट्रेचर में यह शब्द आते हैं, वहां पर उनका वर्ताव किस प्रकार करना चाहिये। फल यह हुआ कि हिन्दुओं के हृदय में उनके प्रताप का साया पड़ गया। उनको स्मृति में उनके विचार में आज तक किसी मनुष्य ने ऐसा करने का साहस नहीं किया। स्वामी दयानन्द जी की इस दिलेरी को देख कर वह चकित हो गये। यद्यपि उन्होंने स्वामी जी के भाष्य को नहीं माना, तथापि किसी से यह नहीं हो सका, कि वह उनके वेद भाष्य पर यथोचित रीति से छिद्रान्वेषण करे। उधर यूरपीय विवेचकों ने इससे यह लाभ उठाया कि पहले केवल जो विचार सन्देह रूप में था वह अब निश्चय हो गया। यूरपीय विद्वानों ने सायण भाष्य को अप्रामाणिक कहने में कुछ भी विचार न किया। उन्होंने आप वेदों के अर्थ करने प्रारम्भ कर दिये। परन्तु याद रखना चाहिये कि यूरपीय विद्वानों को प्राचीन संस्कृत भाषा और संस्कृत पुस्तकों से अभी पूरी २ अभिज्ञता नहीं हुई। सच पूछो तो उनका अभी विद्यार्थी बनने का समय आया है। संस्कृत भाषा कोई ऐसी भाषा नहीं हैं कि इसके समस्त मर्म कुछ वर्षों में समझे जा सकें। इसलिये उनके अनुवाद हिन्दुओं के लिए लाभदायक नहीं हो सकते। प्रोफैसर मैक्समूलर ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों का अनुवाद छापा था। थोड़े दिन हुए हैं, कि जिसकी द्वितीय आवृत्ति उन्होंने निकाली है। दोनों की तुलना से विदित हो सकता हैं कि यूर्पीय विद्वानों की सम्मति में कितने विपर्यय हो रहे हैं। अपने इस अनुवाद की भूमिका में प्रोफैसर साहब आप मानते हैं, कि १०० वर्ष के निरन्तर यत्नों के पीछे यूरपीय विद्वान् वेदों के कई मन्त्रों को (Decipher) करने के योग्य हुए हैं। साईफर उस जुबान को कहते हैं, जो विशेष रीति से कुछ मनुष्यों के समझने के लिये बनाई जावे और उसका अर्थ समझने को डीसाईफर कहते हैं। सो उक्त प्रोफैसर की सम्मति में वेदों की भाषा ऐसी असाधारण है और जो समय को चाहती है। उसके अर्थ समझना मानो पहेलियों को बूझना या गुप्त भाव को समझना हैं। उक्त प्रोफैसर सत्य कहते हैं कि वेदों के अर्थ समझने के लिये अभी

सदियों का यत्न कर्त्तव्य है, क्योंकि उनकी जुबान पर सहस्रों वर्ष के विपर्य्यय हो गये हैं। और उनको इन व्यत्ययों से भिन्न करके समझने के लिये बहुत समय की अपेक्षा है। स्वामी जी के जीवन चरित्र में इस विषय पर अधिक विस्तार से लिखेंगे। अभी यही कहना बहुत है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन का महान् कार्य वेदों का भाष्य था।

स्वामी दयानन्द जी के जीवन का ३य, महान् कार्य वेदों का भाष्य था

(क) स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने बड़ी दूर अन्देशी से यह समझा कि हिन्दुओं के धर्म का सुधार एक मनुष्य नहीं कर सकता और न ही वह कार्य थोड़े वर्षों में सफल हो सकता है। या यूं कहो कि वैदिक धर्म को दोबारा प्रचार करने का काम ऐसा महान् कार्य था, जिसके वास्ते एक मनुष्य का तो क्या, बहुत से मनुष्यों के जीवन भी अधूरे होंगे। इसलिये उन्होंने इस बात की आवश्यकता जानी, कि एक सभा नियत की जावे जो उस काम को करती रहे, जो उन्होंने जारी किया है। और वह एक ईश्वर निराकार की उपासना करे, और सदैव मूर्त्ति पूजन का खण्डन करती रहे और मूर्त्ति पूजन को वेद विरुद्ध बतलाती रहे। और जो वेदों के अर्थ करने में प्राचीन प्रमाणों की ही सहायता लेवे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती हिन्दु वंश में उत्पन्न हुए, हिन्दु वंश में पले, हिन्दु शास्त्रों को पढ़ा और हिन्दुओं की पवित्र पुस्तकों को अपनी मुक्ति के लिये मार्ग दृष्टा बनाया। हिन्दुओं की आश्रम व्यवस्था को उन्होंने स्वीकार किया। सो यह कब सम्भव था कि उनके हृदय में हिन्दु वंश के सुधार का विचार न होता। वंश की धार्म्मिक अवस्था को अतीव पवित्र देखकर उस धर्म्मात्मा के मन में यह विचार आया, कि इस वंश में तब तक किसी प्रकार सुधार नहीं हो सकता, जब तक कि इसमें सबसे पहिले धर्म्म का सुधार न हो। उन्होंने अपने जीवन

का अमूल्य भाग सच्चे धर्म की तलाश में लगाया था। यह संभव नहीं था कि वह धर्म को छोड़कर अन्य किसी सुधार के करने में प्रवृत्त होते। दयानन्द सरीखे महापुरुष के लिये यह समझ लेना कुछ कठिन न था, कि इस धर्म भूमि में धार्मिक सुधार के बिना और किसी प्रकार की उन्नति का विचार असंभव है। सो इस विचार को अपने सुधार का उद्देश्य बना कर उन्होंने एक ऐसी सौसायटी का बीज बोया, कि जिसका मुख्य उद्देश्य यह था, कि वह देश में धर्म सुधार का बीड़ा उठावे और वेदों के सच्चे धर्म का प्रचार करे।

परन्तु याद रखना चाहिये कि स्वामी दयानन्द का उद्देश्य यह नहीं था कि वह किसी नये सम्प्रदाय की नींव डालें या कोई नवीन मत चलावें। वरञ्च उद्देश्य (Revolution) अर्थात् सूखे वृक्ष को हरा-भरा करना या मृत को प्राण देना था। उनकी आशा (Reformation) सुधार से थी न कि (Revolution) अर्थात् व्यत्यय को। इसलिये उन्होंने अपनी नियत की हुई सौसाइटी के कोई नये सिद्धान्त नहीं रचे। दो विषयों ने उनके हृदय में दृढ़ निवास किया हुआ था। एक तो यह कि "विद्या या विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उनका आदि मूल परमेश्वर है, और उस विद्या का ज्ञान पुरुषों को वेदों द्वारा परमेश्वर ने दिया है।" २य, यह कि "परमात्मा निराकार और अजन्मा है और उसी निराकार की उपासना करना धर्म है" यह दोनों नियम उनके जीवनाधार थे और उनकी सम्मति में कोई सुधार नहीं हो सकता था, जो इन असूलों के अन्तर्गत न हो। वह यह भी जानते थे कि यदि हिन्दुमत की धर्म सम्बन्धी एकता हो सकती है, तो वह भी इन्हीं दोनों असूलों के सहारे है। इन दो असूलों को छोड़कर उनकी सम्मति में किसी प्रकार की एकता नहीं हो सकती थी। सो उन्होंने आर्य वंश की धर्म सम्बन्धी एकता के लिये इन्हीं दोनों असूलों को बुनयादी पत्थर निश्चय किया।

पहिले पहिले आर्य समाज बम्बई में नियत हुआ। उस समय जो असूल बनाये गये उनमें भी यही दोनों धार्मिक नियम पाये जाते हैं

और उसके पीछे जब इन असूलों की दरुस्ती लाहौर में हुई और अन्तिमरीति पर आर्य समाज के नियम और उपनियम बनाये गये, उस समय भी इन दोनों विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया, चाहे वही विचार दो के स्थान पर तीन नियमों में प्रकट किया गया। आर्य समाज के पहले तीन असूल ही वास्तव में उसके धर्म नियम हैं।

वेदों के विषय में स्वामी जी का विश्वास उनकी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित है। वह चार वेदों को ईश्वर कृत मानते हैं और किसी मनुष्य को इस विषय में सन्देह करने की आज्ञा नहीं देते। परन्तु तो भी आर्य समाज के नियम बनाते समय उन्होंने अपने शब्द नहीं वर्त्ते, वरंच प्राचीन शास्त्रकारों के शब्दों को ही ग्रहण किया। बम्बई के नियमों में यह शब्द थे "इस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही प्रमाण माना जावेगा" और लाहौर में बनाये हुए असूलों में यह शब्द हैं "वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक है" दोनों वाक्य शास्त्रकारों के हैं, समस्त शास्त्रकार वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं अर्थात् वेद अपने लिये आप ही प्रमाण हैं, वेद विषय की सिद्धि के लिये अन्य किसी प्रमाण की अपेक्षा नहीं। बम्बई के असूलों में मुख्य शब्द इसलिये प्रायः लिखा गया था कि जिनसे वेदों का प्रकृति नियम से भेद किया जावे। प्रकृति नियम भी यद्यपि स्वतः प्रमाण होते हैं, परन्तु उनको समझने के लिये विद्या की आवश्यकता है और वह विद्या वेदों से ही मिल सकती है, इसलिये वेद मुख्य स्वतः प्रमाण किये गये, परन्तु लाहौर में और भी सीधे शब्दों के वर्त्ताव की आवश्यकता समझी गई, इसलिये स्वतः प्रमाण संस्कृत शब्द को छोड़कर उसके स्थान पर सत्य विद्याओं के पुस्तक यह शब्द ग्रहण किये गये। वेदों के विषय में स्वामी जी ने उन शब्दों का बर्ताव उचित समझा, जिसके विषय में समस्त आर्य शास्त्रकारों का एक मत था। बौद्ध मत के पुस्तकों को छोड़ कोई भी हिन्दु वा आर्य शास्त्रकार ऐसा नहीं, जो वेदों को इससे न्यून पदवी देता हो, जो आर्य समाज के ३य, नियम में दी गई है। इसके सिवा शास्त्रकारों के शब्द वर्त्तने से स्वामी जी ने अतीव

ठीक रीति पर यह प्रकट किया, कि इनका आशा उस धर्म के प्रतिपादन करने के लिये था, कि जिस पर समस्त शास्त्रकारों की एक सम्मति थी। किसी नये मत को अपने शब्दों से स्थापन करना उनका उद्देश्य न था। कई स्थानों पर मनुष्यों ने उनसे यह प्रार्थना की, कि वह ३य, नियम को निकाल दें तो बहुत से मनुष्य समाज में दाखिल हो जावेंगे। और ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज का उद्देश्य एक बन जावेगा। परन्तु उन्होंने सदैव ऐसा करने से इनकार किया। वेदों के बिना वह धर्म का चिन्तन भी नहीं कर सकते थे और वेदों से भिन्न कोई धर्म कहाने के योग्य नहीं समझते थे। वेदों पर वह बड़ी दृढ़ता से स्थित थे। ब्रह्मसमाज और आर्य समाज को एक करना उनका जीवनोद्देश्य न था। वरं वेदों को आर्य सन्तान का आश्रय बनाना, वेदों के धर्म का श्रोत प्रकट करना, उनके जीवन का मुख्य काम था और यदि वह इस बात पर हठ न करते तो हमारी समझ में वह इस उच्च पद के अधिकारी न होते जो आजकल उनको आर्य जाति की ओर से प्राप्त है। हिन्दु मत ही नहीं वरं हिन्दु धर्म भी ऐसी वस्तु नहीं जो वेदों के बिना चिरस्थाई हो सकें। धर्म ईश्वर ज्ञान के बिना निर्मूल हैं। धर्म ईश्वरीय शिक्षा के बिना अन्धा और लंगड़ा है, धर्म परमात्मा के ज्ञान बिना निर्राद है। बहुत से आर्य समाजियों ने मिन्नत की कि वह ३य, नियम के शब्द ही बदल दें। जिससे कि वेदों की वह हैसीयत न रहे, जो इस असूल में उनको प्राप्त है। परन्तु इस बात को उन्होंने कदापि स्वीकार न किया। हमारी सम्मति में यह इस बात की बड़ी साक्षी है कि स्वामी दयानन्द सच-मुच बड़ा महापुरुष था।

आर्य समाज को स्थापित करना स्वामी जी का ४र्थ महा काम था।

(५१) स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में आर्य समाज का क्या उद्देश्य था

क्या स्वामी दयानन्द की दृष्टि में केवल एक ईश्वर की उपासना

का विचार करना और वेदों को 'सत्यविद्या के "पुस्तक" सिद्ध करना ही आर्य समाज का काम था या इसके सिवा और भी कुछ आर्यसमाज का वह काम समझते थे। आर्य समाज के शेष नियम इस प्रश्न का उत्तर देने में उद्यत नहीं हैं, यद्यपि छटा नियम यह कहता है, "कि संसार का उपकार करना (अर्थात् सांसारिक धात्मिक और सामाजिक उन्नति करना) इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। परन्तु इन शब्दों से यह न समझना चाहिये, कि स्वामी जी के पुरोग्राम में वंश या देश की उन्नत्ति को कोई विशेष स्थान न था। १म, अप्रैल १८७८ के एक पत्रिका में जो दानापुर को लिखी गई, स्वामीजी इस प्रकार लिखते हैं।

●आपकी इच्छानुसार कल ३१ मार्च १८७८ को २ छपे हुए पत्र (आर्य समाज के मुख्य दस उद्देश्य) भेज चुके हैं। रसीद शीघ्र भेज दीजिये और इन नियमों को ठीक-ठीक समझ कर वेद की आज्ञानुसार सबके हित में प्रवृत्त होना चाहिये। विशेष कर अपने आर्य्यावर्त्त देश के सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति, सबके परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मेटने में सत व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने शरीर के सुख दुखों के समान जानकर सर्वदा यत्न और उपाय करने चाहियें। क्योंकि इस देश में विद्या और सुख सारे भूगोल में फैला है। हिन्दु मत सभा के स्थान में आर्य समाज नाम रखना चाहिये, क्योंकि आर्य नाम हमारा और आर्यावर्त्त नाम हमारे देश का सनातन वेदोक्त हैं।"

फिर १२ अप्रैल १८७८ की चिट्ठी में लिखा है। "अब आपकी दृष्टि देश सुधार पर होनी चाहिये" याद रखना चाहिये कि आर्यसमाज के दस नियम जून १८७७ में नियत किये गये थे, और यह चिट्ठियां अप्रैल १८७८ ई० में लिखी गई थीं। स्वामी जी की दृष्टि में आर्य समाज का क्या उद्देश्य था, वह इन चिट्ठियों से साफ प्रकट होता है। क्या इन चिट्ठियों से विदित नहीं होता, कि स्वामी जी उस मनुष्य गण

●प लेखराम कृत जीवन चरित्र का ३६९ व ३७० पृष्ठ

में से नहीं थे, जो मनुष्य मात्र के मुकावले में अपने देश और अपने वंश के कोई स्वत्व (हक्क) नहीं मानते। असल बात यह है, कि स्वामी जी पहिले संस्कृत विद्वान् थे जिन्होंने स्वार्थता के जाल में फंसे हुए हिन्दुओं को बतलाया कि परोपकार और देश उपकार धर्म के दो बड़े अंग हैं और वैदिक धर्म में उनको बहुत उच्च स्थान दिया गया है। जो मनुष्य परोपकार और देशोपकार करने के योग्य नहीं, वह कभी भी धार्म्मिक नहीं हो सकते और कोई मनुष्य धार्म्मिक नहीं हो सकता, जब तक वह अपने देश के उपकार को अपना पहला काम न समझता हो।

बम्बई में जो नियम बनाये गये थे, उनमें भी निम्नलिखित असूल अपनी आप व्याख्या करता है।

१७ "इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जावेगा। एक परमार्थ और २य, लोक व्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति की जावेगी।"

बम्बई के नियम यह भी प्रकाश करते हैं, कि स्वामी जी की सम्मत्ति में आर्य समाज के उद्देश्य प्राप्त करने में क्या साधन थे। बारहवें नियम में आर्य समाज, आर्य विद्यालय और आर्य प्रकाश के प्रचार और उन्नति के लिये १) सैकड़ा चन्दा लेने की शिक्षा है। जहां पर आर्य समाज से आशय प्रचार और आरगनीजेशन (संग्रह) के खर्च से हैं। उनीसवें असूल में विशेष करके प्रचारक भेजने की शिक्षा है। उसके अनन्तर २० वें नियम में स्त्री और पुरुषों के लिये पाठशालायें नियत करने की आवश्यकता प्रकट की गई है। लाहौर के नियमों में ३य, नियम यह कहता है, कि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है और साथ ही आठवें नियम में अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करने की विशेष आज्ञा है।

इसके सिवा देहली के कैसरी दरबार के समय पर जो कान्फ्रेन्स स्वामी जी की प्रेरणा से उनके स्थान पर हुई थी, वह हमको किञ्चित्-

मात्र स्वामी जी के देश हित का परिचय देती है, कि इस समय (देखो पण्डित लेखराज जी कृत जीवन चरित्र पृष्ठ २६४) स्वामी जी ने यह कहा कि "हम लोग एक मत हो जावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है, देश शीघ्र ही सुधर सकता है।"

इसके सिवा एक स्थान में उसी जीवन चरित्र में यह भी प्रकट किया गया है कि स्वामी जी ने स्वदेशीय वस्तु के प्रचार का एक विशेष व्याख्यान दिया। यदि यह सब बातें ठीक हैं और उनकी सत्यता में किसी को कोई हठ नहीं, तो कौन मनुष्य है जो कह सकता है कि स्वामी दयानन्द जी पैट्रीयट (Patriot) न थे, या उनमें स्वदेश और स्वजाति का हित न था। सत्य पूछो तो उच्च श्रेणि का महापुरुष देश हितैषियों की उच्च श्रेणि के उस उच्च पद पर बैठने के योग्य हैं, जो कभी-कभी ही संसार में उत्पन्न होते हैं और जाति पर प्राण देने वाले की पदवी पाते हैं। ऐसा मनुष्य का कोई पुरोग्राम स्वदेश और स्वजातीय हित से खाली नहीं हो सकता और हम निश्चय पूर्वक कह सकते हैं, कि स्वामी जी की देश सुधार की (प्रणाली) स्कीम और स्वजातीय सुधार प्रणाली में अपने आप में दृढ़ हैं।

यह सत्य है कि सत्य धर्म सबके लिये है और आर्य वैदिक धर्म का हर एक मनुष्य को उपदेश देता है, चाहे वह किसी जाति वा देश का हो। परन्तु इसका यह आशय नहीं, कि वैदिक धर्म में स्वदेश और स्वजातीय हित से कुछ सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहना मानो उस सच्चे धर्म की निन्दा करना है।

(५२) स्वामी दयानन्द सरस्वती के और सिद्धान्त

हमने ऊपर के पत्रों में स्वामी जी के महान् कार्य और उनका महान् उद्देश्य वर्णन किया। परन्तु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने थोड़े से सांसारिक जीवन में और बहुत सी शिक्षा दीं। स्वामी जी जैसे रीफार्मर के वास्ते सम्भव न था, कि अपने जीवन के बड़े नियमों के विना अन्य विषयों की शिक्षा न देते, जब वार्त्तिमानिक धर्म सम्बन्धी

धार्मिक विचार नियम, धार्मिक जातीय नियम आदिकों पर धावा करते थे, तो उनके लिये आवश्यक था, कि वह अपनी खण्डन की शिक्षा के साथ मण्डन की शिक्षा भी देते और स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ऐसा ही किया, अन्य विषयों पर सिद्धान्त यह थे।

श्राद्ध, तीर्थ और अवतार

धर्म विषय में उन्होंने केवल मूर्त्ति पूजा पर ही हमला नहीं किया वरञ्च प्रचलित श्राद्ध मर्य्यादा, तीर्थ और अवतारों का भी खण्डन किया। उन्होंने बतलाया कि मृत पितरों के नाम पर दान से मृत-पितरों की आत्मा को कुछ लाभ नहीं हो सकता। किसी जल में स्नान करने से या किसी स्थान मे जाने से पापों का विनाश नहीं होता और न मुक्ति मिलती है। परमात्मा अजन्मा और अमर होने से कभी मनुष्य देह में नहीं आता।

नवीन वेदान्त

उन्होंने नवीन वेदान्त की शिक्षा का खण्डन किया और यह बतलाया कि आत्मा और परमात्मा दो पदार्थ हैं, और प्रकृति के साथ अनादि हैं यद्यपि परमात्मा सर्वशक्तिमान् और सृष्टि का आदि मूल है।

मुक्ति

मुक्ति विषय में उनकी अन्तिम शिक्षा यह है, कि जीव मुक्त होकर और धर्मानुसार मुक्ति भोग करके फिर जन्म लेता है।

आवागमन

स्वामी जी कर्म के मसला को मानते थे, और उनका यह मन्तव्य था कि आतमा बार २ जन्म लेती है और भिन्न जन्मों के आश्रय अपने कर्मों का फल भोगता है चाहे पवित्र और शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है, और फिर एक समय के लिये जन्म मरण से छूट जाता है।

शिक्षा

शिक्षा के विषय में उनकी यह सम्मति थी कि हर एक मनुष्य वा स्त्री को, चाहे वह किसी वर्ण के हों, विद्या ग्रहण करनी चाहिये और

सबको विद्या ग्रहण करने का अधिकार है।

सोशियल व्यवहार

स्वामी जी बाल विवाह के अतीव विरोधी थे और इसको शारीरिक निर्बलता का कारण ख्याल करते थे। उनकी सम्मति में प्रत्येक मनुष्य के लिये २५ वर्ष तक और हर एक स्त्री के लिये १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य आवश्यक था। विवाह में कन्या और वर की प्रसन्नता आवश्यक समझते थे। और इसी लिये बालक कन्याओं के विवाह में उनकी सम्मति थी परन्तु जो स्त्री-पुरुष भोग कर चुके हों उनको फिर पुर्नविवाह की आज्ञा नहीं देते थे। हां सन्तानोत्पत्ति के लिये नियोग की आज्ञा देते थे।

जाति वा संस्कार

जाति को जन्म से नहीं मानते थे वरं कर्म से मानते थे, प्रत्येक आर्य के लिये यज्ञोपवीत धारण और शिखा का रखना आवश्यक समझते थे। प्रत्येक मनुष्य तया स्त्री के लिये १६ संस्कार करने जरूरी समझते थे। खान पान में अन्य वंश के हाथ का खाना उचित नहीं समझते थे। शराब पीना अनुचित समझते थे, मांस भोजन के विषय में उनकी अन्तिम सम्मति इसके विरुद्ध थी, खान पान सम्बन्धी निम्नलिखित लेख (पंडित लेखराम कृत जीवन चरित्र पृ० ५०१ से) लेते हैं। तब जोन्स साहब ने कहा,··· · ······वो आप छूत छात को क्यों मानते है, हमारे साथ खाने में क्या डर है। उत्तर दिया कि किसी के साथ खाने या न खाने में हम धर्म या अधर्म नहीं मानते, यह सब बातें देश या जाति के रिवाज से सम्बन्धित हैं, असल धर्म से इनका कुछ सम्बन्ध नहीं। जो समझदार हैं वे व्यर्थ अपने देशाचाल के विरुद्ध कार्य नहीं करते। क्या आप अपने पुत्र का विवाह किसी नेटिव क्रिश्चियन से कर सकते हैं। आदि २।

चुनांचि इस प्रकार जनश्रुति (रवायत) है कि उन्होंने देहरादून के एक ब्रह्म के घर का पका हुआ भोजन खाने से इनकार किया क्योंकि वह भंगन के हाथ का पका हुआ था।

(५४) क्या स्वामी दयानन्द सिद्ध थे

जहां हम इस बात के मानने के लिये तैयार हैं कि स्वामी जी बड़े भारी योगी थे वहां हम बड़े वेग से इस इच्छा के खण्डन करने को उद्यत हैं, जो उनको सिद्ध साबत करने के विषय में प्रकट की जा रही है। स्वामी दयानन्द ईश्वर प्राप्ति के लिये योग विद्या को बड़ा भारी कारण समझते थे, परन्तु उन्होंने अपने समस्त जीवन में कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे वह लोगों में यह प्रकट करें कि वह योग बल से भविष्य के हालात जान लेते हैं, या किसीके मन की बात समझ लेते हैं, या किसी की गुम हुई २ वस्तु या गये हुए मनुष्य का पता लगा सकते हैं। उन्होंने कभी कोई ऐसा काम नहीं किया जिससे वह भविष्य वक्ता कहला सकें और जो मनुष्य उनको ऐसे पद देते हैं हम उनको स्वीकार नहीं करते। उनकी रचना में इस प्रकार की गन्ध भी नहीं है। अच्छा हो कि वह मनुष्य स्वामी जी की इस प्रकार की श्लाघा से उनको बदनाम न करें। वरंच उस सारी लिखा पढ़ी से जो स्वामी जी ने करनल अलकाट और मैडम ब्लेवटस्की से की और उन इश्तहारों से जो थ्यासोफिकल सोसायटी के विषय में प्रकाशित किये--स्पष्ट रीति से प्रकट होता है, कि वह इस प्रकार के खेलों के विरोधी थे। जो प्रायः थ्यासोफीकल सुसायटी के कई सभ्य अपनी योग विद्या को प्रकट करने के लिये दिखलाया करते हैं।

(५५) स्वामी दयानन्द और शुद्धि

स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन में एक और महान् काम किया जिसके वर्णन करने के बिना उनके जीवन की यह संक्षिप्त समालोचना नितान्त अधूरी रहेगी। वह काम शुद्धि का है। गुरु गोविन्दसिंह जी के पीछे दयानन्द प्रथम पुरुष था जो हिन्दुओं को शुद्धि की ओर लाया। स्वामी जी के काम आरम्भ करने से पूर्व भारत में विलायत से वापिस आये हुए हिन्दुओं को शुद्ध करने का झगड़ा जारी था। सर्व साधारण पण्डित हिन्दुओं के समुद्र पार जाने को अनुचित बतलाते थे। और यह

धर्म शास्त्र की आज्ञा प्रकट करते थे, कि विलायत से वापिस आया हुआ हिन्दू फिर जाति में नहीं मिल सकता। दूसरी ओर यह यत्न हो रहे थे, कि प्राचीन स्मृति व सूत्र शास्त्र इस बात की आज्ञा देते हैं, कि आर्य लोग समुद्र पार जावें यदि आवश्यक हो तो वापसी पर प्रायश्चित आदि से उनको शुद्ध कर लिया जावे। परन्तु उस समय यह किसी को स्वप्न में भी विदित न था कि धर्म से पतित हुआ २ हिन्दू, मुसलमान या ईसाई हुआ २ हिन्दू फिर अपनी जाति में व धर्म में लिया जा सकता है। जैसा कि पंजाब में एक शुद्धि स्वामी जी ने जालन्धर नगर में अपने हाथ से की और एक ईसाई हुए २ बालक को उसकी बिरादरी में मिला दिया। (देखो पण्डित लेखराम कृत जीवन चरित्र की पृ० ३३३)। अमृतसर में शुद्धि विषय पर व्याख्यान दिया। देहरादून में एक जन्म से मुसलमान को आर्य समाज में मिलाया। लाहौर में और अन्य कई स्थानों में अंग्रेजों मुसलमानों और ईसाइयों के प्रश्न के उत्तर में कहा, कि आर्यों जैसा आचरण रखने से वह आर्य हो सकते है। शुद्धि का जो काम इस समय पंजाब में हो रहा है वह स्वामी जी की शिक्षा का फल है। वरं उनकी शिक्षा से पहले न तो सिक्खों को हौसला पड़ता था कि वह किसी अन्य जाति वाले को सिक्ख बना लेवें, न हिन्दुओं को साहस था कि वह अपने धर्म से पतित बहिन भाइयों को वापिस ले लेवें। स्वामी दयानन्द ने शुद्धि के नियमों की शिक्षा देकर हिन्दू वंश को बचा लिया, मानों डूबती हुई नौका को सहारा देकर ठहरा लिया। सैकड़ों व सहस्रों घरानों को विनाश से रोक लिया, सहस्रों बालक अनाथ होने से बचा दिये और सहस्रों स्त्रियां वैधव्य क्लेश से निकाल लीं।

(५६) स्वामी दयानन्द और अनाथ रक्षा

स्वामी जी को अपने देश के अनाथ बालकों की रक्षा का बड़ा ध्यान था। उनके जीवन में आर्य समाज का वह महान् कार्य जो फीरोजपुर अनाथालय के नाम से प्रसिद्ध हैं, आरम्भ हो चुका था। स्वामा जी आप उस परोपकारी यज्ञ में सहायता देते रहे। और अन्त

में अपने स्वीकार पत्र (वसीयत) में इस बात को विशेष रूप से लिख गये कि उनकी स्थानापन्न परोपकारिणी सभा के उद्देश्यों में से एक मुख्य कर्त्तव्य यह होगा, कि आर्यावर्त्त के दीन अनाथों की पालना और शिक्षा में इस सभा का धन व्यय किया जावेगा।

स्वामी जी के हृदय में जातीय रक्षा का विचार कूट २ कर भरा हुआ था, और हमको उनके प्रत्येक बर्त्ताव व कार्य से स्पष्ट विदित होता हैं कि उनके हमदर्दी और प्रेम से परपूरित उच्च मानस ने अति दुःख और क्लेश से जाना कि वश अपने अनाथों की रक्षा में कैसी अचेत है। भिखारी पण्डों ने अपने टैक्स इतने बढ़ा दिये हैं कि वंश से सच्चा दान जाता रहा है। जिससे लाखों अनाथ बालक अन्य जाति वालों के हाथ आकर अपना धर्म त्यागने लगे हैं। अन्य जातियों ने यतीमों के लिये विशेष प्रवन्ध करके उनको अपनी ओर खेंचने का विशेष प्रयत्न किया हुआ है। यह यत्न स्वामी जी से भूला हुआ न था। इसकी महान् आत्मा ने उस विशेष प्रबन्ध को देख कर इस बात की आवश्यकता अनुभव की कि आर्य समाज की ओर से भी अनाथ बालकों की पालना और रक्षा के लिये विशेष प्रबन्ध किया जावे। हम यह सुनकर बड़े दुःखी हुए हैं, कि कई विचार हीन आर्य यह विवाद करते हैं कि स्वामीजी की वसीयतमें यतीमों की पालना को ३य, दिया है, जिसका यह आशय है, कि जब पहले दो कर्त्तव्य पूरे हो जावें तो ३य, पर ध्यान दिया जावे। हमको यह विचार सुनकर हंसी और लज्जा भी आती है। हंसी उन महाशयों की उच्च योग्यता पर जो स्वामी जी की वसीयत का यह फल बतलाते हैं। और लज्जा इसलिये कि हमारी कौम का वह भाग भी जिसको स्वामी जी के उपदेशों के सुनने से अपने मन, अन्तःकरण से शुद्ध करने का अवसर मिला है कैसा मूर्ख है कि उस महान् पुरुष के स्पष्ट वाक्यों को बिगाड़ कर अनाथ रक्षा के उत्तम काम को पीछे डालने का यत्न करता है। हम समझते हैं कि इस अनोखे विचार पर अधिक चर्चा करनी पाठकों का समय व्यर्थ गंवाना है। वसीयत इस पुस्तक में प्रकाश की जाती है, उसको

पढ़कर आप अपनी सम्मति बना लेवें ।

(५७) अन्तिम

पाठक महाशय ! हमारी भूमिका बहुत बढ़ गई है और डर है कि कहीं आप अधिक विस्तार से घबरा न जावें । इसलिये अब हम इस भूमिका के अनन्तर उस महापुरुष के जीवन के हालात स्पष्ट रीति से सुनाते हैं, जिसके काम का संक्षिप्त सा वर्णन हमने इस भूमिका के थोड़े से वाक्यों में किया है । जो कुछ हमको अधिक कहना होगा वह निम्नलिखित पत्रों में कहेंगे । हमें विश्वास है कि यदि आप पक्षपात को छोड़ कर इन पत्रों को पढ़ेंगे तो चाहे आपके धर्म सम्बन्धी विचार दयानन्द जी से मिलते हों या न मिलते हों, आप अवश्य इतने तो हम से सहमत होंगे, कि स्वामी दयानन्द अपने समय का महापुरुष था । और उसकी उत्पत्ति पर आर्य जाति जितना मान करे थोड़ा है ।

एक शब्द हमको अपने युवकों को भी कहना है, प्रयि वंश के होनहार बालको ! स्वामी दयानन्द को तुम से विशेष हित था । वह जहां जाता था विद्यार्थी उसको चारों ओर से घेर लेते थे, विद्यार्थियों पर वह प्राण देता था, और विद्यार्थी भी उस पर न्योछावर होते थे । वह समझता था कि यह विद्यार्थी ही वंश और देश की आशा हैं, इन पर ही आगे के लिये वंश की उन्नति और प्रतिष्ठा निर्भर है । विद्यार्थी जानते थे कि यह पुरुष हमारा शुभाकांक्षी है । जिसने हमको अपने वंश और अपने लिट्रचर का मान करना सिखाया है । नौजवानों के लिये यह पुस्तक बहुमूल्य उपदेशों से भरी हैं । और हमें पूरा भरोसा हैं कि हमारी जाति के युवा उस महापुरुष के जीवन चरित्र से पूर्ण लाभ उठाकर उनकी आज्ञा पालन करेंगे ।

आओ ! नौजवानो तुमको बालजितेन्द्री, पूर्ण ब्रह्मचारी, महापरोपकारी, देश हितैषी, विद्वान् योगी, महर्षि दयानन्द के जीवन की कहानी सुनायें । परमात्मा से प्रार्थना करो कि उसके जीवन चरित्र से यथायोग्य लाभ उठाने के लिये तुम्हारी बुद्धि को निर्मल और शुद्ध करें । शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

—लाजपतराय

ओ३म्

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की जीवनी

प्रथम भाग—प्रथम अध्याय

वंश, उत्पत्ति और बालपन

स्वामी दयानन्द की वास्तविक जन्मभूमि और इनका असली नाम ठीक रीति से विदित नहीं, अपनी जन्मभूमि के विषय में उन्होंने इतना ही बताया था, कि वह गुजरात देश में उत्पन्न हुए। पण्डित लेखराम जी कई कारणों से यह लिखते हैं, कि उनका जन्म मोरवी शहर (जो अब एक छोटीसी राज्य की राजधानी है और मच्छू का महानदी के तट पर बसी है) में उत्पन्न हुए थे। और इनका असली नाम मूलशकर था। हम इस पुस्तक में मूलशंकर ही उनका असली नाम मानेंगे। स्वामी जी सम्वत् १८८१ विक्रम सन् १८२४ ई० में उत्पन्न हुए। इनके पिता अम्बाशंकर जी उदीच्य वंश के ब्राह्मण एक धनी जिमीदार थे। उनके वंश में जिमीदारी के काम के सिवा साहूकारी का काम भी किया जाता था। जिससे निर्वाह आसानी से होता था। जिमीदारी की पदवी मौरूसी थी। इस समय की यह पदवी आजकल की तहसीलदारी तुल्य समझी जाती थी। क्योंकि जिमीदारी के पद प्राप्त से इनको राज कर (मालगुजारी) लेने का काम करना पड़ता था। और इस प्रबन्ध के चलाने के लिये गवर्नमेण्ट की ओर से सिपाही भी मिले हुए थे।

पांच वर्ष की अवस्था में इनको देव नागरी आरम्भ कराई गई और उसी दिन से इनके माता पिता और वंश के अन्य वृद्धों ने अपनी वंश मर्य्यादा (रसम रवाज) की शिक्षा देनी शुरू की। आठवें वर्ष यज्ञोपवीत पहिराया गया। गायत्री और सन्ध्योपासन की रीति सिखाई स्वामी जी ने पहिले पहिल शिक्षा अपने पिता से ली। जो सामवेदी

ब्राह्मण होने से शिवोपासक थे। सो उन्होंने पहिले इनको रुद्री और फिर संहिता पढ़ानी आरम्भ की, और बचपन से ही शिवमत के संस्कार उन पर डाले गये। इनका पिता इनको इस मत से सम्बन्धित समस्त व्रतों के रखने की आज्ञा देता, और कहा करता कि मिट्टी का लिङ्ग बना कर उस को पूजा करो।

दशवें वर्ष (सं० १८९०वि०) से यह मूर्त्ति पूजन करने लगे। इनके पिता की इच्छा थी, कि वह विधिपूर्वक शिवरात्रि का व्रत धारण करे, कथा सुने, और रात्रि को जागरण करे। परन्तु उसकी माता इस प्रकार कठिनताओं की विरोधी रही। क्योंकि उनकी सम्मति में वह इतनी कठिनता सहारने के योग्य न था। इनके पिता इनको व्याकरण और वेदपाठ मात्र पढ़ाया करते थे। मन्दिरों में या अपने मित्रों के मिलने के लिये जहां जाते, इनको साथ ले जाते और सदैव समझाते रहते, कि शिवोपासना सब उपासनाओं में श्रेष्ठ और विशेष फल दायक है। १४ वर्ष की आयु (सं० १८९४ वि०) तक उन्होंने यजुर्वेद संहिता कण्ठ कर ली थी। और कुछ अन्य वेदों का पाठ भी पढ़ लिया था, और व्याकरण की छोटी २ पुस्तकें भी पढ़ ली थीं।

इसी वर्ष स्वामी जी के पिता ने उनको शिवरात्रि व्रत करने के लिये आज्ञा दी, परन्तु वह इसके लिये तय्यार न हुए। इसलिये उनको इस व्रत के महात्म की कथा सुनाई गई, जो इनको अच्छी जान पड़ी और उन्होंने व्रत रखने का इरादा कर लिया। उनका स्वभाव प्रातः-काल ही कुछ खाने का था। इस वास्ते उनकी माता इस व्रत के रखने के लिये कुछ विघ्नकारिणी हुई, उन्होंने कहाकि मेरे बालक का स्वभाव प्रातःकाल ही कुछ खाने का है, यदि यह व्रत रखेगा तो बीमार हो जावेगा। परन्तु उसके पिता जी ने कुछ हठ किया और कहा कि पूजन अवश्य करनी चाहिये, चुनांचि स्वामी जी को व्रत के लिये दृढ़ आज्ञा दी गई। और उनकी माता के कथन की परवाह न की गई। काठियावाड़ में यह व्रत माघ वदि १४, को होता है। सो व्रत के दिन सायंकाल के समय उनको समझाया गया कि रात्रि को निरन्तर जागना होगा।

अन्यथा व्रत का महात्म्य जाता रहेगा। और व्रत सम्बन्धी पूजा पाठ की विधि भी इसी रात्रि को इन्हें सिखाई गई। मोरवी नगर के बाहर एक बड़ा शिवाला है, जहां मनुष्य इस व्रत के दिन जाते और पूजन पाठ किया करते हैं। इस शिवाले में स्वामी जी, उनके पिता और अन्य बहुत से मनुष्य शिवरात्रि की रात्रि को एकत्र हुए। रात्रि को पहिले पहिर की पूजा समाप्त हुई और २य, प्रहर की पूजा भी लोगों ने जैसे तैसे पूरी की, परन्तु आधि रात्रि व्यतीत हो जाने पर लोग ऊंघने लगे। और धीरे २ क्रमशः सब सो गये। स्वामी जी के पिता को तो सबसे पहिले निद्रा देवी ने ग्रसित किया। सो उनको सोता देख कर मन्दिर के पुजारी भी बाहर जाकर सो गये। परन्तु मूलशंकर जी इस विचार से कि व्रत का महात्म जाता रहेगा, अपनी आंखों पर पानी के छींटे दे २ कर आलस को दूर करते रहे और जागते रहे। जब रात्रि बहुत चली गई और मन्दिर मे मनुष्यों का कोलाहल न रहा, तो एक चूहा बिल से निकल कर पिण्डी के चारों ओर घूमने लगा। और सामग्री जो शिव पर चढ़ाई गई थी खाने लगा। आप इस समय जागते थे, और चुपके बैठे सारा खेल देख रहे थे। किसी की सामर्थ्य नहीं जो उस समय के विचारों का चित्र खैंच सके। बालक मूलशंकर के हृदय में प्रश्न उठा कि क्या यह वही महादेव हैं, जिनके विषय में कथा में वर्णन आया था, कि वह मनुष्य के समान एक देवता हैं, जो हाथ में त्रिशूल रखता है, और डमरू बजाता है, किसी को वर देता है, किसी को श्राप, वह कैलाश पर्वत का स्वामी है। किन्तु यह मूर्त्ति तो एक तुच्छ चूहे के हटाने की भी सामर्थ्य नहीं रखती।

इस रात्रि को वास्तव में उस महान् धर्म परिवर्तन की नींव रखी गई, जो स्वामी जी से पीछे प्रकट होना था। देश में लाखों और करोड़ों मनुष्य शिवरात्रि को जागते और वर प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। परन्तु उस शिव ने (अर्थात् सृष्टि की भलाई चाहने वाले परमेश्वर ने) आज तक किसी को वर नहीं दिया, हां सं० १८९४ विक्रम माघवदि १४

की रात्रि को एक छोटा बालक वर प्राप्ति को जगा और शिव जी ने वर दिया, कि देख आर्यावर्त्त निवासी मेरे नाम को कलंकित कर रहे हैं, मेरे वास्तविक गुणों को न जान कर पत्थर का लिङ्ग खड़ा कर मेरे स्थान पर उसको पूजन करते हैं। मूलशंकर उठ, विद्या पढ़, मेरे ज्ञान को प्राप्त कर, वेदों को ठीक २ पढ़ और मनुष्यों को समझा, कि शिव सारी दुनियां की भलाई चाहने वाला होने से ईश्वर का एक नाम है। लोग दूसरों की भलाई के लिये अपने आराम और धन की भेंट देकर मेरे पूजक हो सकते हैं न कि केवल एक नियत रात्रि में जागरण कर और पाषाण लिंग पर चढ़ावा चढ़ा कर। यह शब्द यद्यपि जिह्वा से नहीं उच्चारण किये गये और मूलशंकर ने अपने कानों से भी नहीं सुने, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि शिव के इस ज्ञान पूरित वचनों ने मूलशंकर जी के दिल पर पूरा, असर किया।

अन्त को होनहार बालक अपने विचार प्रताप को देर तक न रोक सका, उसने तत्काल अपने पिता को जगाया और निर्भय हो प्रार्थना की कि आप सच्चे उपदेश से मेरे सन्देह निवृत्त कीजिये कि क्या महादेव जो इस मन्दिर में हैं वही हैं जिनका वर्णन पुराणों में है? इस प्रश्न ने स्वामी जी के पिता को कुछ विस्मय और कुछ लज्जास्पद कर दिया। उन्होंने क्रोध में आकर पूछा कि तू यह प्रश्न क्यों करता है स्वामी जी ने कहा कि इस पत्थर के महादेव पर चूहे दौड़ रहे हैं और इसको खराब करते हैं। कथा में जिस प्रकार वर्णन सुना है, वह तो चैतन्य है, वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देगा, यह मूर्ति तो सिर भी नहीं हिलाती और न अपने को बचा सकती है। मैं समझता हूं कि इस मूर्ति से उस सर्वशक्तिमान् और चेतन परमात्मा की प्राप्ति असंभव है। उत्तर में स्वामी जी के पिता ने यह कह कर समझाने का यत्न किया, कि कैलाश पर्वत पर जो महादेव रहते हैं, उनकी मूर्त्ति बना आवाहन कर पूजते हैं, कलियुग में उनका दर्शन नहीं होता, इसीलिये पाषाण मूर्त्ति रच उसमें महादेव का ध्यान कर, उसका पूजन करने से कैलाश निवासी ऐसा प्रसन्न हो जाता है कि मानों वह स्वयं विराजमान्

है और उन्हीं का पूजन होता है। तुझे प्रश्न करने का बड़ा बुरा स्वभाव है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है। परन्तु ऐसी युक्तियों से स्वामी दयानन्द की कब तसल्ली होती थी, इससे विपरीत उनके मन में यह बात दृढ़ रूप से बैठ गई कि मूर्ति पूजन व्यर्थ है, उन्होंने पक्का इरादा कर लिया कि जब तक मैं महादेव को प्रत्यक्ष देख न लूंगा, कदापि पूजन नहीं करूंगा। थोड़ी देर के पीछे स्वामी जी ने भूख और थकान के कारण पिता जी से घर जाने की आज्ञा मांगी, उन्होंने आज्ञा तो दी और कहा कि सिपाही को साथ लेकर घर चला जा, परन्तु ताड़ना की कि भोजन न करना। स्वामी जी ने घर जाकर अपनी माता से कहा कि मुझे क्षुधा लगी हुई है, उसने कुछ मिठाई खाने को दी और साथ ही कहा कि मैं तुझे कह रही थी कि व्रत की कठिनाई तुझ से नहीं झेली जावेगी। तूने व्यर्थ हठ करके व्रत धारण किया था। मिठाई खालो और अपने पिता के पास फिर मत जाओ। दूसरे दिन प्रातःकाल आठ बजे उठे। जब उसके पिता ने प्रातःकाल आकर उनके रात्रि के भोजन का हाल सुना तो बहुत क्रोध किया। परन्तु उसने स्पष्ट उत्तर दिया कि जिस महादेव का वर्णन मैंने कथा में सुना था, मन्दिर में वह महादेव नहीं था, इसलिये मैं उसकी उपासना नहीं कर सकता। निःसन्देह इस रात्रि के दृश्य ने स्वामी जी के दिल को मूर्ति पूजन से हटा दिया, और उन्होंने अपने चचा से कहा कि मुझ से व्रत और पूजन नहीं हो सकते। चुनांचि इनके चचा जी और माता जी ने स्वामी जी के पिता को उस तरफ जोर डालने से रोक दिया। इस धन्दे से छुट्टी पा, स्वामी जी ने सयत्न पढ़ना आरम्भ कर दिया, और एक पण्डित से निघण्टु, निरुक्त, पूर्व मीमांसा और कर्मकाण्ड के पुस्तक पढ़ने आरम्भ कर दिये।

इस बात के दो वर्ष के अनन्तर जबकि प्रकृति के एक अपूर्व दृश्य ने एक महान् आत्मा के मन को दबा लिया था, एक और ऐसी बात हुई कि जिसने बालक के सारे जीवन को पलट दिया। मूल

जी से छोटे दो भाई और दो बहिनें और थीं। जब उनकी आयु १६ वर्ष की थी (१८९६ वि०) में एक दिन जब वह अन्य सम्बन्धियों के संग किसी मित्र के घर नाच के उत्सव पर गये हुए थे। एकाएक एक सेवक ने घर से आकर खबर दी, कि उनकी भग्नी को जिसकी आयु उस समय १४ वष की थी, विशूचिका हो गई है। घर के सब मनुष्य दौड़ कर घर आये। वैद्यों को बुलाया गया, दवाई करने में पूरा यत्न किया गया, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। ४ घण्टों में परलोक सिधार गई। घर मातमागार बन गया। रोने पीटने का शब्द चारों ओर से होने लगा। इस छोटी सी आयु में यह पहिला ही समय था कि इन्होंने मृत्यु के क्लेश को अपनी आंखों देखा था। एक ओर घर के सब मनुष्य रोते पीटते थे, दूसरी ओर मृत्यु की भयानक घटना ने बालक दयानन्द की बुद्धि को चकित किया हुआ था। मौत क्या है और इससे किस प्रकार बचाव हो सकता है? यह ऐसे प्रश्न थे कि जिन्होंने इस बालक के मन को समस्त सांसारिक विषयों से हटा कर मृत्यु के कठिन विचार में डाल दिया। वह सोचते थे कि मृत्यु अटल है। संसार में हर एक मनुष्य को एक न एक दिन अवश्य मरना है, इसलिये उचित है कि कोई ऐसी तजवीज की जावे, जिससे मृत्यु के क्लेश से बच जावें। जिस बालक को शिव मूर्त्ति पर चूहे के आगमन ने प्रचलित धर्म से हटा दिया था, उस के मन में मृत्यु का दृश्य बिना असर किये नहीं रह सकता था। मृत्यु के गुह्य विषय और इस निश्चय ने कि यह जीवन थोड़े दिन का है, इनके मन में चोट लगाई और इस खेल कूद की अवस्था में बालक को वैराग्य ने बेसुध कर दिया। इसी कारण जहां एक ओर सारे मनुष्य व स्त्रियें रोती पीटती थीं, दूसरी ओर बालक मूलशंकर शव के पास एक दीवार से लग कर खड़ा २ इस संसार की असत्यता को बिचारता हुआ यह सोच रहा था, कि किस प्रकार मृत्यु के दुःख से छुट्टी मिले। इस विचार में रोना पीटना किसको

सूझता था। यद्यपि उनकी माता और पिता नें ताने से यह कहा कि यह बालक बडा कठोर दिल है, और लोगों ने भी उसको रोता पीटता न देख धिक्कार की, परन्तु लाख वार धिक्कार करो आत्मा धिक्कारों के बन्धनों से छूटने को विचार में मग्न थी। उसे रोने का अवकाश कहां था। माता पिता ने टालने के लिये कहा कि जाओ सो रहो। परन्तु नींद किस को आती ? मृत्यु ने गहरी नीद में सो जाने वाले बालक को अशान्त कर दिया। चिन्ता यह थी कि एक दिन मुझे भी मृत्यु ने पकड़ना है। इस समय इस मृत्यु के क्लेश को दूर करने की औषधि कहां से मिलेगी। इस दवाई की तलाश में दिल, दीन दुनियां से बेजार हो गया। ब्रह्मचारी मूलशंकर के हृदय में इस संसार के विनाश ने ऐसा असर किया कि उसकी रात दिन इसी विचार में कटने लगी। परन्तु इस परिवर्तन को किसी से प्रकट नहीं किया, और पूर्ववत् ही अपनी पढ़ाई में लगा रहा। स्वामी दयानन्द के चचा बड़े साधु और विद्वान् पुरुष थे, स्वामी दयानन्द जी से वह बड़ा प्यार करते थे। जब स्वामी दयानन्द जी की आयु १९ वर्ष की थी तो मन्द भाग्य से उनके चचा को भी हैजा (विशूचिका) हो गया। जब वह मृत्यु के बिस्तरे पर पड़े हुए थे तो उन्होंने मूलशंकर को अपने पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देख रहे थे, और वह स्वामी जी की ओर ताक कर छमा छम रो रहे थे। इस समय को मूलशंकर देख न सका, वह भी रोने लग गया। यहां तक कि उसकी आंखें सूज गईं। छोटी सी भग्नी की मृत्यु ने जिस मन को शोक से हटाकर ज्ञान की ओर फेर दिया था, वह मन प्यारे चचा की मृत्यु के दृश्य को देखकर पिघल पड़ा, और बस में न रहा। जो विचार भग्नी की मृत्यु से उत्पन्न हुआ था, वह चचा की मृत्यु से और भी दृढ़ हो गया। समझदार बालक ने चचा के मृत्यु के विस्तर के सन्मुख अपने जीवन का निश्चय कर लिया। और यह निश्चय ठान लिया, कि सारा जीवन अमर

बनने की औषधि के ढूंढ़ने में लगा दूंगा। सार यह है कि चचा की मौत से वैराग्य इस वेग से बढ़ा कि उसको छिपाकर रखना इसके लिये कठिन हो गया। यद्यपि इसने अपनी माता से यह विचार छिपाया, परन्तु अपने दोस्तों और पण्डितों से पूछना शुरू कर दिया कि अमर होने का क्या उपाय है? उत्तर मिला, योगाभ्यास। अन्त को धीरे २ यह सिद्धान्त प्रबल होता गया, कि घर से निकल जाना चाहिये, क्योंकि इस असार संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं कि जिसके लिये जीने की इच्छा की जावे। इस विचार को उन्होंने अपने मित्रों पर प्रकट किया, धीरे २ इस बात की खबर उनकी माता को भी हो गयी। जिससे उनके माता पिता को बड़ा शोक हुआ, और वह इस विचार में लग गये कि इसकी यह कामना पूरी न होने पावे। अन्त को उन्होंने निश्चय किया कि जहां तक हो सके शीघ्र ही इसका विवाह कर, इसको गृहस्थ के बन्धनों में जकड़ दिया जावे। जब मूल जी को अपने माता पिता के इस निश्चय का पता मिला, कि २० वर्ष की आयु होते ही शादी की जावेगी, तो उन्होंने अपने मित्रों के द्वारा इस निश्चय के हटाने का बडा यत्न किया जिसका फल यह हुआ कि उसके पिता ने इस वर्ष उनकी शादी टाल दी।

शास्त्रों में लिखा है कि आठ वर्ष तक माता पिता अपने पुत्र को आप शिक्षा दें, और फिर पढ़ने के लिये गुरुकुल में भेज दें। इतिहास के देखने से प्रतीत होता है कि जिस समय यूनान का प्रसिद्ध यात्री "मेगैस्थनीज" आर्य्यावर्त में आया, उस समय तक देश में गुरुकुल की मर्य्यादा प्रचलित थी, लोग राजाज्ञा से अपने बच्चों को शिक्षा के लिये गुरुकुल में भेज दिया करते थे। जैसा कि वह लिखता है, कि '३२ वर्ष की आयु में वह पढ़ कर घर को गृहस्थ के लिये वापस आते थे और उस समय उनकी शादी की जाती थी" समय के परिवर्तन से अवस्था उलट गई, और धीरे २ यह मर्य्यादा उठ गई। और यह कहना सत्य है कि जब से वंश ने

ब्रह्मचर्य्य को छोड़ा, ब्रह्मचर्य्य ने वंश को छोड़ दिया। अब भी विद्यार्थी पन के समय को ब्रह्मचर्य्य का समय कहा जाता है। इस विचारानुसार कहा जा सकता है, कि स्वामी जी ५ वर्ष की आयु से ही ब्रह्मचर्य्य आश्रम में आ गये। विद्याध्ययन के साथ वीर्य्य रक्षा भी वह करते थे। अन्त को जब देखा कि माता पिता ब्रह्मचर्य्य दूर करने के फिकर में हैं, तो विवाह से निधड़क जवाब दे दिया और यह पक्का निश्चय कर लिया, कि घर छोड़ कर विद्या पढ़ूंगा।

अपनी आयु का बीस वां वर्ष समाप्त होते ही १९०० वि० में स्वामी जी ने अपने पिता से झगड़ा करना शुरू किया कि वह इन्हें काशी जी में विद्या पढ़ने के अर्थ भेज दें, ताकि वहां व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक पढ़ूं। इस बात में उनके माता पिता और अन्य सम्बन्धियों ने विरोध किया और कहां कि जहां तक हो सके घर में ही पढ़ो, तुम्हारे विवाह में थोड़ें ही दिन रहते हैं, लड़की वाले अधिक देर तक शादी रोक नहीं सकते। पाठक गण ! इस बात पर ध्यान दो कि इस अनर्थ रूप विचार ने कितने जीवनों को बिगाड़ दिया, कितने घरानों को धूलि में मिला दिया, कितने होनहारों की परलोक यात्रा करा दी, कितनी बाल कन्याओं को बाल रंड बिठा दिया। "लड़की वाले अधिक नहीं ठहर सकते" खेद ! कि स्वामी जी की शिक्षा के पीछे भी आर्य्य सन्तान इन शब्दों के फंदे में फसी हुई है। जब कभी हम लिखे पढ़े मनुष्यों के मुख से यह शब्द सुनते हैं, अपने आप हमारे दिल से हाहाकार का शब्द निकलता है, लड़की वालों की बेसबरी पर इतना ध्यान, और अपने हृदय के टुकड़े की उन्नति पर तनिक विचार नहीं, लड़की वाले की इतनी खातर और बेचारी लड़की का जरा ध्यान नहीं। आर्य वंश और वंश के वृद्ध महाशयो ! टुक सोचो यदि लज्जा नहीं आती, तो शिक्षा तो लो। हमें अधिक शिक्षा देने की आवश्यकता भी नहीं। और इसके सिवा उनकी माता ने कहा कि मैं अच्छी तरह जानती हूं, जो बालक विद्या पढ़ने की ओर अधिक लग जाते हैं,

वह विवाह करना नहीं चाहते और तुम्हारे काशी जाने से तुम्हारे पाणिग्रहण में भी विघ्न होगा। यहां तक कि स्वामी जी ने काशी जाने का बड़ा आग्रह किया तो माता भी इनके विपरीत हो गई, और कहा कि हम तुमको कहीं नहीं भेजेंगे और तुम्हारी शादी भी शीघ्र कर देंगे। इस समय में उनके यह विचार रोकने के अर्थ, उनके पिता ने इनको जिमीदारी के काम में लगाने की इच्छा प्रकट की परन्तु उन्होंने न माना। और कुछ दिन पीछे अपने पिता से प्रार्थना की कि यदि आप मुझे काशी नहीं भेजते, तो ग्राम से ३ कोस की दूरी पर एक दूसरे ग्राम में, जहां हमारी जिमीदारी है, भेज दें, क्योंकि वहां एक वृद्ध पंडित हमारी बिरादरी के रहते हैं उनसे पढ़ूंगा। इस प्रार्थना को उनके माता पिता ने मान लिया, और स्वामी जी उस ग्राम में जाकर उस वृद्ध महाशय से पढ़ने लगे। एक दिन विधिनेत से बात चीत में स्वामी जी ने अपने अध्यापक को स्पष्ट रीति से कह दिया, कि शादी करने से मुझे पूर्ण घृणा है। अध्यापक ने यह समाचार उनके पिता को पहुंचा दिया, जिन्होंने उनको अपने पास बुला लिया, और शादी की तय्यारी करनी शुरू कर दी। उस समय इनकी आयु २१ वर्ष की हो गई थी। इन्होंने सोचा, कि शादी से बचने के लिये घर छोड़ जाने के सिवा कोई उपाय नहीं। जिस किसी से वह इस विषय की सम्मति लेते सब ही विवाह करने की सम्मति देते। यह शुभाकांक्षी क्षुद्रहृदय, सम्मति देने वाले क्या जानते थे, कि यह आत्मा गृहस्थ के समस्त बन्धनों को जीतने की योग्यता रखती है और इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये विवाह का न करना आवश्यक है। माता पिता के हठ ने इनको निश्चय कर दिया कि सम्बन्धी विवाह कराये बिना नहीं छोड़ेंगे, और अधिक विद्या अध्ययन की आज्ञा नहीं देंगे। अन्त को सब ओर से निराश होकर घर को त्याग देना ही दृढ़ कर लिया, परन्तु इस समय इस अभिलाषा को किसी से प्रकट न किया। जब देखा कि एक मास में ही विवाह की तय्यारियां हो गई हैं, तो २१ वर्ष के ब्राह्मणपुत्र ने सोचा

कि अब देर करने का समय नहीं। मानो आकाश वाणी हुई, कि उठो! नहीं तो सारी आशा धूलि में धूलि हो जावेगी और जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जीवात्मा ने देह धारण की है, वह पूरा नहीं हो सकेगा। अन्त को ज्येष्ठ मास में एक दिन सायं काल के समय युवा मूल शंकर ने अन्तिम वार उस प्यारे घर को देखा जहां कि उसका जन्म हुआ था और जहां बाल अवस्था कटी थी।

आज कल की आर्य सन्तान में कितनी ऐसी आत्माएं हैं जो इस समय के शोक और आशाओं में परिपूरित अवस्था का चित्र खेंच सकें। २० वर्ष का युवा बालक एक बड़े धनी घराने का वारस, संसार के समस्त ऐश्वर्य भोग, मान प्रतिष्ठा और सुख वा चैन को, तथा हित व प्यार को एकाएक छोड़कर सारी आयु के लिये वैरागी बनता है। माता के प्यार व भय से निडर होकर, अपने आपको जगत् के माता-पिता के प्यार व भय के आश्रय डालता है, सांसारिक समस्त बन्धुओं से मुख मोड़ जगत् बन्धु ईश्वर की गोदी में आता है। उसी पर भरोसा करके उसी के विश्वास में मग्न होकर और उसी का सहारा लेकर उसी के नाम से, उसी को विद्या ग्रहण करने के लिये ऋषि सन्तान ऋषि पदवी की प्राप्ति के लिये घर से निकलताहै। बालकपन के घर को त्याग अविनाशी कभी न गिरने वाले, कभी न खोये जाने वाले कुदरती घर में प्रवेश करता है। शुद्ध इच्छा से और शुद्ध हृदय से उद्देश्य को अपने साधारण सांसारिक कर्त्तव्यों से श्रेष्ठ जानकर आकाश की छतकी शरण लेता है, और देवता कहते हैं कि तथास्तु--

द्वितीय अध्याय

॥ ब्रह्मचारी मूल शंकर ॥

घर से निकल कर ८ मील की दूरी पर एक दूसरे ग्राम के समीप पहिली रात्रि काटी, वहां से एक पहर रात्रि रहे चलकर दूसरे दिन सायंकाल तक २० कोस की यात्रा कर एक गांव में हनुमान के मन्दिर

में रात्रि बिताई। वह मार्ग उन्होंने नियत पथ से तह (पार) न किया, वरञ्च इस विचार से कि आते-जाते यात्री उनको कहीं पहिचान न लें, पगडंडियों और टेढ़-टेढ़े रास्तों से काटा। यह हुशियारी उनके बड़े काम आई। क्योंकि इस स्थान में पहुंचकर घर से निकलने के ३य, दिन एक सरकारी कर्मचारी से इन्होंने सुना कि इस जगह मूलशंकर नामी एक बालक को सवार और प्यादे ढूंढ़ते गये हैं। यहां से चलकर स्वामी जी को ठगों की एक श्रेणी मिली, जिन्होंने उनसे कुछ रुपये और अंगूठी आदि भूषण यह कहकर उतरवा लिये, कि जब तक तुम यह न दे दोगे, तुझे पूर्ण वैराग नहीं हो सकता। इन ठगों ने मार्ग में एक मूर्त्ति स्थापित की हुई थी, उन्होंने स्वामी जी से उक्त रुपये भूषण उसकी भेंट करा ली। (इन ठगों को यह विदित न था कि यह बालक इसी ठगी की जड़ें काटने के लिये जा रहा है) अहमदाबाद मोरवी रेलवे की लाईन पर मूली नाम का एक स्टेशन है, इस स्थान से ४ कोस के अन्तर पर साकिले ग्राम है इन दिनों में इस ग्राम में लाला भक्त के स्थान पर बहुत से साधु एकत्रित थे, स्वामी जी जब यहां पहुंचे तो एक ब्रह्मचारी ने इनको ब्रह्मचारी की पदवी दी और गेरुवे वस्त्र पहिरा इनका नाम शुद्ध चेतन रख दिया (क्या ही उचित नाम रक्खा) तूंबा इनके हाथ में दे दिया। इस साधु मण्डली में मिलकर यह नये ब्रह्मचारी जी योग साधन करने लगे। मूर्त्ति पूजन से अभी पूर्ण घृणा नहीं हुई थी। मिथ्या विश्वासों से इनका मन अभी शुद्ध नहीं हुआ था। एक रात्रि को जब यह एक वृक्ष के नीचे बैठे योगाभ्यास कर रहे थे, तो ऊपर से पक्षियों के शब्द सुन, इनको भूत का भय हुआ, वहां से वह झट उठकर अपनी मण्डली में आ गये। जहां से वह अपने नये पहिरावे में कोट कामगढ़ नामी एक ग्राम में पहुंचे। यह स्थान अहमदाबाद के निकट गुजरात देश में विद्यमान् है। यहां पर उस समय बहुत बैरागी एकत्रित थे और उनमें एक रानी भी इनके फंदे में फंसी हुई थी। इन वैरागियों ने इनको गेरुए पहिरावें में देखकर उनसे उपहास करना आरम्भ किया और इनको भी अपनी श्रेणि में

लेने का यत्न किया। अन्त को इनके कहने से हमारे ब्रह्मचारी जी ने रेशमी किनारे को धोतियें जो उनके पास थीं फेंक दीं और सादी धोतियें खरीद लीं। यहां पर वह तीन मास तक रहे। इस अवसर में इनको पता मिला कि सिद्धपुर में (यह स्थान सरस्वती के तट पर रेल का स्टेशन हैं, यहां हर वर्ष कार्त्तिक का मेला होता है) कार्त्तिक का मेला है, वहां क्या जाने कोई ऐसा योगी मिल जावे जो अमर होने का मार्ग बतलावे, यह विचार कर स्वामी जी सिद्धपुर की ओर चल पड़े थोड़ी दूर चलकर उन्हें एक वैरागी मिला जो स्वामी जी के घराने को भली भांति जानता था, जब इन्होंने आपस में देखा तो दोनों के आंसू भर आये। इस अनाथ अवस्था में दोनों अपनी पहली अवस्था को याद करके खूब रोये। उन्होंने वैरागी से सारे हालात वर्णन किये। पहिले तो वह कुछ हंसा और फिर इनको बड़ी धिक्कार की, कि तुम घर से क्यों निकले थे। परन्तु अब क्या हो सकता है उनका धिक्कार करना व्यर्थ था। यदि उनका अपना मन धिक्कार करता तो क्या जानें कुछ बन पड़ता। उस मनुष्य से हटकर स्वामी जी सिद्धपुर पहुंचे। नीलकण्ठ महादेव के स्थान पर जहां आगे कई ब्रह्मचारी और दण्डी स्वामी उतरे हुए थे, जा उतरे। मेले में जहां किसी बुद्धिमान् मनुष्य का वर्णन सुनते उससे भेंट के लिये जाते, और उनके सत्संग से लाभ उठाते।

सिद्धपुर के मार्ग में जो वैरागी स्वामी जी को मिला था उसने उनका सारा हाल उनके पिता को लिख भेजा और यह भी लिखा कि इस समय मूलशंकर सिद्धपुर कार्त्तिक के मेले में है। यह समाचार पाते ही स्वामी जी के पिता ४ सिपाही संग लिये सिद्धपुर आ पहुंचे और इनको ढूंढ़ने लगे। एक दिन प्रातःकाल ही उनके पिता ने उसी शिवाला में इनको आ पकड़ा। वह इनको साधु भेष में देख बड़े गुस्से हुए। स्वामी जी कहते थे कि "मैं उस समय उनके मुख को नहीं देख सकता था" क्रोध में आकर स्वामी जी को बहुत अवाच्य वचन कहे और धिक्कारें दीं और कहा कि तूने हमारे घराने को कलंकित कर दिया है। तू हमारे कुल कलंक जन्मा है। इस दशा को देखकर स्वामी जी

पर भय सा छा गया। मारे डर के अपने स्थान से उठ, पिता के पांव में गिर पड़े और प्रार्थना की कि लोगों के बहकाने से मैं इधर निकला हूं आप क्रोध न करें मुझे क्षमा कीजिये, यहां से मेरी घर जाने की इच्छा थी, अच्छा हुआ कि आप भी आ गये, मैं आपके साथ ही जाने में प्रसन्न हूं। इन बातों से भी पिताजी का क्रोध शांत न हुआ। झपट कर उन्होंने इनके वस्त्र फाड़ डाले, तूंबा छीन कर तोड़ दिया और अवाच्यवाक्य देकर, कहा कि तू अपनी माता का वध किया चाहता है और उसको नवीन वस्त्र पहिना कर, जहां आप ठहरे हुए थे वहां ले गये। स्वामी जी के साथ चलने की प्रतिज्ञा करने पर भी उन्होंने इनके कथन का विश्वास न किया और उन पर सिपाहियों का पहिरा लगा कर आज्ञा दी कि इनको कहीं जाने मत दो। रात्रि के समय भी इन पर पहिरा रहे। स्वामी जी यद्यपि अपने पिता से प्रकट रूप से तो घर जाने की प्रतिज्ञा करते रहे, परन्तु दिल से वह अपने निश्चय में दृढ़ थे। दैवात् रात्रि के तीन बजे पहिरे वाला सो गया। स्वामी जी को इस दशा में नींद कहां थी, अवसर पा झट वहां से निकल भागे और आध कोस को री पर एक बगीचे में एक मन्दिर का चोटी पर एक वृक्ष के सहारे चढ़ कर जा छिपे। जल का एक लोटा ले लिया और वहां छिप कर देखते रहे कि देखें अब क्या भाग्य में लिखा है। प्रातःकाल चार बजे

वहां पड़े हुए देख और सुन रहे थे, कि सिपाही इनको ढूंढ़ रहे हैं और उस मन्दिर के अन्दर बाहर आते-जाते मनुष्यों से इनका पता पूछ रहे हैं यहां से निराश होकर वह वापस चले गये। यह सारा दिन दुम दबा के बैठे रहे कि कहीं किसी नई विपद् में न फंस जावें। जब सूर्य अस्त हो गया और अच्छा अन्धेरा हो गया, तो स्वामी जी वहां से उतर, सड़क को छोड़, लोगों से पूछ-पाछ कर वहां से दो कोस की दूरी पर किसी गांव में जा ठहरे, प्रातः काल वहां से फिर चल पड़े। अपने पिता जी से यह उनका अन्तिम मेल था। अहमदाबाद होते हुए स्वामी जी बड़ोदे पहुंचे, यहां संन्यासियों और ब्रह्मचारियों के संग में वेदान्ती बन गये। जीव और ब्रह्म का अभेद मानने लगे। वहां उन्होंने

ना कि नरवदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक सभा होने वाली है, सो विलम्ब क्या था, उस सभा को देखने के लिये रवाना हुए और वहां पहुंचकर सच्चिदानन्द परमहंस नामी एक मनुष्य से शास्त्रों के विषय में वार्त्तालाप की। उनसे इनको पता मिला कि नरबदा के किनारे बड़े-बड़े विद्वान् संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं। स्वामी जी वहां पहुंचे और उनसे मिले, वहीं उन्होंने परमानन्द परमहंस जी से पढ़ना शुरू किया और कुछ महीनों में वेदान्तसार, वेदान्त परिभाषा आदि पुस्तक, और फिलासफी की अन्य पुस्तकें पढ़ीं।

तृतीय अध्याय

ब्रह्मचारी मूल शंकर संन्यास में प्रवेश कर स्वामी दयानन्द सरस्वती बनते हैं

ब्रह्मचारी की अवस्था में नियमानुसार स्वामी जी को आप भोजन पकाना पड़ता था, जिससे पढ़ने में विघ्न होता था, इस बन्दे से निकलने के लिये उनकी अभिलाषा संन्यास ग्रहण करने की हुई। भोजन पाक की कष्टनिवृ त के सिवा उनको यह भी लाभ प्रतीत हुआ कि नाम बदला जाने से घर के मनुष्यों को पता भी न मिल सकेगा। इसी आशा से उन्होंने एक दक्षिणी पण्डित के द्वारा चिदाश्रम स्वामी संन्यासी जी से इस बात की प्रार्थना की, परन्तु उन्होंने इनको युवा देख साफ इनकार कर दिया। इस इनकार से उनकी अभिलाषा विपर्य्य न हुई। वह नरवदा तट पर डेढ़ वर्ष के लगभग रहे। इन्हीं दिनों में चालोडर ग्राम के निकट जंगल में एक पूर्णानन्द सरस्वती नामक दण्डी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आ उतरे। वही दक्षिणी पण्डित बड़े हित से अपने पास इनको ले गये और उनके साथ ब्रह्म विद्या पर वात-चीत करते रहे। स्वामी जी ने जान लिया कि यह स्वामी बड़े विद्वान् हैं, इसी समय दक्षिणी पंडित जी ने बड़े जोर से इनको संन्यास आश्रम में दीक्षित करने के लिये कहा और यह भी कहा कि यह ब्रह्मचारी ब्रह्म विद्या का बड़ा

प्रेमी है, परन्तु भोजन आदि आप पकाने के धंदे से इसकी पढ़ाई में विघ्न होता है, आप कृपा कर इसको ४र्थ, आश्रम में दीक्षित कीजिये। स्वामी जी की युवा अवस्था देख पहले इन्होंने भी इनकार किया और कहा कि हम महाराष्ट्र हैं यह किसी गुजराती संन्यासी से दीक्षा ले। दक्षिणी पण्डित ने कहा कि जब दक्षिणी संन्यासी नीच वर्ण के मनुष्यों को भी संन्यासी बना लेते हैं तो फिर गुजराती ब्रह्मचारी को जो ब्राह्मणों की उच्च श्रेणि में से हैं सन्यासी बनाने में उजर नहीं होना चाहिये। बहुत से झगड़े के पीछे स्वामी पूर्णानन्द जी ने संन्यासी बनाने को स्वीकार कर लिया और तीसरे दिन इनको दीक्षा दे इनका नाम दयानन्द सरस्वती रक्खा। स्वामी जी कुछ दिन इनसे ब्रह्म विद्या पढ़ते रहे और फिर कुछ काल के अन्तर झरका को चले गये।

चाहे स्वामी जी २४ वर्ष की आयु में संन्यासाश्रम में आ गये परन्तु वास्तव में अभी ब्रह्मचर्य पूरा नहीं हुआ था, क्योंकि इस आश्रम में आकर इनकी आशा विद्याध्ययन छोड़ देने की न थी, वरंच यह आगे से बढ़कर अधिक पढ़ने में लगना चाहते थे और इसीलिये यह संन्यासी बने थे। हा खेद! कि आर्यों की आश्रम व्यवस्था, कसी विगड़ गई. ब्रह्मचारी रोटी पकाने के झगड़े से संन्यासी बनते है और संन्यास देने वाले गुरु २४वर्ष के युवा को जिसने कोई निचला आश्रम पूर्ण नहीं किया संन्यासाश्रम जैसे कठिन आश्रम में प्रवेश कर देते हैं। असली रीति से तो यह २४ वर्ष का संन्यासी ब्रह्मचर्य के २य, पद में मानो प्रविष्ट हुआ।

इस अवसर में स्वामी जी ने योगानन्द नामी एक योगी की बड़ी प्रशंसा सुनी, और व्यासाश्रम में जाकर उनसे योग विद्या पढ़नी आरम्भ की। इस विद्या सम्बन्धी आदि पुस्तक पढ़ चित्तौर को पधारे। और वहां जाकर कृष्ण शास्त्री जी से व्याकरण पढ़ना आरम्भ किया, फिर एक दूसरे स्थान को चले गये। और यहां एक मनुष्य से वेद पढ़ने लगे। यहीं कुछ दिनों के पीछे इनको ज्वालानन्द पुरि, और शिवानन्द गिरि दो योगी मिले। उनके साथ मिलकर स्वामी जी योगाभ्यास करते रहे, स्वामी जी और यह दोनों योगी प्राय: योग विषय में चर्चा किया

करते थे। कुछ दिनों में यह योगी अहमदाबाद को चले गये, और इनसे कह गये कि एक महीना पीछे तुम भी अहमदाबाद की ओर आ जाना, वहां तुमको योग विद्या के तत्व सिखलाये जावेंगे। स्वामी जी अपने प्रण से वहां पहुंच गये, और उन दोनों योगियों से मिले उन्होंने भी कथनानुसार स्वामी जी को समस्त तत्व योग विद्या के सिखा दिये। और उनकी कृपा से स्वामी जी इस विद्या में निपुण हो गये। इस विद्या की प्राप्ति में स्वामी जी इन दोनों के बड़े कृतज्ञ थे। अहमदाबाद में इन्होंने सुना कि आबू पर्वत पर बहुत से योगी रहते हैं, अब यह उनसे लाभ उठाने के लिये आबू को चल पड़े। और वहां पहाड़ की चोटियों पर उन राजयोगियों से भेंट हुई। स्वामी जी का कथन हैं कि यह योगी पहले योगियों से अधिक विद्वान् थे। उनके पास रहकर स्वामीजी ने इनसे और बहुत स तत्व सीखे। इसी प्रकार १९११ वि० तक स्वामी जी ने इधर उधर फिर फिरा कर, बहुत से महात्मा योगियों के मेल से लाभ उठाया, और शारीरिक और आत्मिक उन्नति करते रहे। इनका यह नियम था कि जो विद्वान् मिलता, विद्यार्थी बन उससे विद्या अध्ययन करते। इस प्रकार देश में फिरते फिराते ३० वर्ष की आयु में स० १९१२ वि० की पहिली बार हरद्वार के मेले में पधारे, जब तक मेला रहा स्वामी जी चण्डी के पर्वत पर वन में योगाभ्यास करते रहे और मेला समाप्त हो जाने पर ऋषिकेश की ओर चले गये। वहां कई एक महात्मा संन्यासियों से और योगियों से सत्संग किया, और योग की रीति सीखी, इसके पीछे अकेले ऋषिकेश में रहे, वहां एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले। उनके साथ टीहरी की ओर चले गये। यह स्थान विद्या अध्ययन के लिये बड़ा प्रसिद्ध था। वहां के निवासियों में से एक ने स्वामी जी को निमन्त्रण दिया और समय पर बुलाने आया तो स्वामी जी एक ब्रह्मचारी को संग लेकर गये। वहां जाकर देखा कि एक मनुष्य मांस काट कर बना रहा है, यह देख स्वामीजी को बड़ी घृणा हुई। चाहे उन्होंने उनका स्वागत किया और आगे आने की प्रार्थना की परन्तु स्वामी जी यह कह कर लौट आये कि आप अपना

काम किये जावें मेरे लिये इतने मान की आवश्यकता नहीं। इतने में एक ब्राह्मण आया और उसने कहा आप पधारिये, मांस का स्वादु भोजन आप ही के लिये बनाया हैं। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे लिये तो फल फूल ही चाहियें, मांस भक्षण तो दूर उसके दर्शन से ही मैं तो बीमार हो जाता हूं। यदि आपने मुझे भोजन कराना ही है तो कुछ फल फूल यहीं भेज दीजिये। मेरा ब्रह्मचारी आप ही मेरे लिये भोजन बना देगा, कुछ काल के अनन्तर उन पण्डितों से वे पुस्तकें देखने को मांगी जिनकी वह इनके आगे बड़ाई किया करते थे, जिन पुस्तकों का नाम स्वामी जी के सामने लिया गया उनमें से तन्त्र के कुछ ऐसे ग्रन्थ थे, कि जो इन्होंने पहले नहीं देखे । इसलिये पुस्तक पढ़ने के लिये मंगवाई। उनके खोलते ही उनकी दृष्टि ऐसे स्थलों पर पड़ी जो अतीव गन्दे थे। उनको देखते ही यह कांप उठे। इन पुस्तकों में वास्तव में ऐसे विषय होते हैं कि जिनसे हिन्दुओं की हानि की पूर्ण साक्षी मिलती हैं, और जिन्हों से हिन्दू वंश ने बदमाशी सीखी है। इनको पढ़ना कहा, नाम मात्र लेने से मनुष्य मात्र का हृदय कांप उठता है, फिर स्वामी जी का हृदय क्यों न कांपता। इस युवा अवस्था में इन पुस्तकों ने वह भाव डाला जो सारी आयु दूर न हुआ। यहां से स्वामी जी श्रीनगर को गये और केदार घाट में जा रहे, यहां पर जब किसी पण्डित से इनकी चर्चा होती, तो उनको तन्त्रों के प्रमाण देकर उनको निरुत्तर कर देते। यहां इनको एक गगागिरि नामक साधु मिले, जिससे इनका प्रेम हो गया और यह दोनों दो मास तक इकट्ठे रहे। पतझड़ की ऋतु के आरम्भ में स्वामी जी अपने ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं सहित केदार घाट से किसी और स्थान जाने की यात्रा की और प्रयाग आदि स्थानों में से होते हुए अगस्त मुनि की समाधि तक जा पहुंचे। यहां से शिवपुरी नामक पहाड़ी पर गये। यह वही स्थान है जहां लोग जीवन मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं। यहां ४ मास रह कर अपने संगियों को छोड अकेले ही केदार घाट को वापिस आ गये। गुप्त काशी, गौरी कुण्ड और भीम गंगा की राह त्रियुगी नारायण

के मन्दिर तक पहुंचे। वहां इनका दिल न लगा। जल्दी केदार घाट को लौट आये। जब यहां के मनुष्यों से पूर्ण परिचित हो गये, तो आस पास के पहाड़ों की यात्रा की इच्छा हुई। यह बरफानी पहाड़ थे, परन्तु स्वामी जी ने सुना हुआ था कि वहां बड़े २ महात्मा साधु रहते हैं, उन्हीं महात्माओं की तलाश में वह इन पहाड़ों पर गये। वहां जिन आदमियों से इन महात्माओं का हाल पूछते, या तो वह पूर्ण अनभिज्ञता वर्णन करते या ऐसी गप्पें हांकते, जिनका मानना असम्भव था। सर्दी की बहार थी २० दिन व्यर्थ सर्दी का क्लेश सह स्वामी जी फिर केदार घाट लौट आये। इन दिनों में स्वामी जी को पहाड़ों की सैर से बड़ा प्रेम था, इसी तरंग में वह तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ गये। और वहां का मन्दिर इन्होंने पुजारियों और मूर्त्तियों से भरपूर देखा। वहां से उसी दिन वापस चले आये। लौटते समय दो मार्ग थे, एक पश्चिम को और २व नैऋत्य को, यहां से वह शंग की ओर हो लिये। थोड़ी दूर चलकर यह एक गह्वर बन में जा निकले, यहां टीले आदि बहुत थे और नदी नाले सब सूखे पड़े थे, कहीं आगे चलने को मार्ग नहीं दीखता था। इस महा कठिन मार्ग को देखकर यह सूखी हुई घास और सूखी हुई झाड़ियों को पकड़ एक नाले के किनारे जा चढ़े। और एक चट्टान पर खड़े होकर जब चारों ओर देखा, तो महाकठिन पहाड़ों जगलों और टीलों के सिवा कुछ दीख नहीं पड़ता था। इस समय सूर्य अस्त होने वाला था, तो इन्हें विचार हुआ कि यहां अग्नि और जल के बिना किस प्रकार निर्वाह होगा। अन्त में आबादी ढूंढने को चल पड़े, परन्तु मार्ग में ऐसे ऐसे स्थानों से गुजरना पड़ा कि जहां कांटों से इनके सब वस्त्र फट गये, शरीर में रुधिर बहने लगा और पांव भी लंगड़ाने लगे। बड़ा क्लेश सह, बड़ी कठिनता से पहाड़ से नचे उतरे और वहां राज मार्ग मिल गया। उस समय अन्धकार छा गया था। इसलिये टटोल कर जाना पड़ा, चलते २ बस्ती के निशान देखने में आये, बस्ती क्या कुछ टूटी फूटी झोंपड़ियां थीं, वहां से यह मालूम करके कि यह मार्ग उखीमठ को जाता है, उधर ही चल पड़े।

और रात्रि वहीं जा काटी। प्रातःकाल होते ही गुप्त काशी को चले गये। परन्तु उनके मन में उखीमठ देखने की लालसा लगी रही, इसी लिये वह फिर उधर गये और वहां देखा, कि केवल पाखण्डी साधुओं से समस्त गुफा भरी पड़ी है। इस स्थान के एक बड़े महन्त ने इनको चेला बनाना चाहा, और बहुत धन का लोभ देकर कहा कि अन्त में तुझे गद्दी का स्वामी किया जावेगा। स्वामी जी ने कहा कि यदि मुझे धन का लोभ होता, तो घर से ही क्यों निकलता, और अपने पितृ धन को क्यों लात मारता, और जिस आशा से यह सब छोड़ा है वह मेरी आशा भी यहां पूण होती नहीं दीखतीं। इस महन्त ने इनको अपने पास देर तक ठहरने को कहा, मगर वह दूसरे दिन ही उखीमठ को चल दिये। यहां उनसे अच्छे २ विद्वान् संन्यासी योगी मिले, जिनसे इन्होंने योग सम्बन्धी और कई नई बातें सीखीं।

इन महात्माओं से बिदा हो स्वामी जी बद्रीनारायण की ओर गये। इन दिनों यहां रावल जी एक विद्वान् महन्त थे। कई दिनों तक महन्त जी और स्वामी जी में वेदों और दर्शनों के विषय में वार्त्ता होती रही। स्वामी जी को यह सुनकर कि बद्रीनारायण के समीप कोई विद्वान् योगी नहीं——बड़ा खेद हुआ। और महन्त की जबानी यह भी प्रतीत हुआ कि यहां प्रायः ऐसे विद्वान् दर्शन मात्र के लिये आ जाया करते हैं। यहां पर स्वामी जी ने निश्चय कर लिया कि पहाड़ों में फिर कर योगियों को ढूंढेगे। इसी विचार में एक दिन प्रातःकाल वहां से चल पड़े और पहाड़ की तलहटी में अलखनन्दा नदी के तट पर आ पहुंचे, और नदी के स्रोत की ओर ही एक जगल को चल पड़े। इन दिनों में यह पहाड़ बर्फ से ढका हुआ था, और बड़ी कठिनता से यह नदी के स्रोत तक पहुंचे, वहां देखा कि चारों ओर ऊंचे २ पहाड़ हैं, कोई मार्ग नजर नहीं आता था। तब उन्होंने नदी के पार उतरना ही उचित समझा। इस समय इनके वस्त्र बड़े हल्के थे, और शीत इतना था, कि वह सहा नहीं जाता था, खाने पीने की कोई वस्तु पास न थी, क्षुधा कलेजा चाट रही थी, बर्फ खा-खा के उसकी शान्ति करते

थे परन्तु कब तक शान्ति होती थी। अन्त में उन्होंने दरिया पार होना चाहा। इस नदी में कहीं सांवा था परन्तु कहीं डोबू थी, इसके सिवा इसमें बर्फ के ऐसे छोटे २ टकड़े पड़े थे कि स्वामी जी के पांव को इन्होंने घायल कर दिया उनसे रुधिर बहने लगा। पांव शीत से सुन्न हो गये थे। यहां तक कि वे ऐसे बेसुध हो गये कि बहुत देर तक इनको अपने घावों का पता ही न लगा। शीत की अधिकता से बेसुधी अधिक बढ़ने लगी, उन्होंने सोचा कि यदि यहीं बैठ गये तो फिर उठना कठिन हो जायगा, जिस वस्तु की प्राप्ति के लिये घर घाट माता पिता और सम्बन्धियों को छोड़ा, बिन प्राप्त किये चले जावेंगे। इसी विचार से सैकड़ों क्लेश सह कर जैसे तैसे नदी तो पार हुए, परन्तु आगे चलने की सामर्थ्य कहां। स्वामीजी ने शरीर के वस्त्र उतार पांव के गोड़ों तक लपेट लिये। दरिया तो पार हुए परन्तु चलने की सामर्थ्य किसको, इनकी इच्छा हुई, कि कोई सहायक मिले, परन्तु वहां कौन था। यह विचार ही रहे थे कि दो पहाड़ी मनुष्यों को अपनी ओर आते देखा, इन्होंने स्वामी जी को प्रणाम कर इनको अपने घर ले जाने की प्रार्थना की। जब उन्होंने इनका सारा वृत्तान्त सुना, तो उन्होंने इनको सिद्ध-पथ नामी तीर्थ पर पहुंचाने की प्रतिज्ञा की। स्वामी जी ने उनकी इस कृपा दृष्टि का धन्यवाद कर कहा कि मुझसे इस समय चला नहीं जाता, मैं तो हिल भी नहीं सकता, अच्छा हो कि यहीं प्राण निकल जावें, तुम्हारे साथ चलने की शक्ति नहीं। यह सुन वह पहाड़ी अपने मार्ग पर चले गये। जब थोड़ी देर के अनन्तर यह भी सचेत हुए और कुछ सुध आई तो वहां से बसोहा नामक तीर्थ पर पहुंच कर ग्राम के आस पास होते हुए सायंकाल ८ बजे बद्रीनारायण में आ पहुंचे। वहां के महन्त रावल जी स्वामी जी के इतने दिन न आने से बड़ी चिन्ता में थे। शाम को इन्होंने सारी कथा कह सुनाई, और थोड़ा सा भोजन करके सो गये। दूसरे दिन उठते ही स्वामी जी महन्त रावल जी से आज्ञा ले रामपुर की ओर चले गये। रास्ते में एक रात किसी योगी के पास जा ठहरे, स्वामी जी का कथन है कि यह बड़ा विद्वान था इसके

साथ बात चीत करने से हमारा निश्चय और भी दृढ़ हो गया। दूसरे दिन ही वहां से चलकर जंगलों पहाड़ों में से होते हुए रामपुर जा पहुंचे। और रामगिरि के स्थान पर उतर पड़े।

रामपुर में यह मनुष्य अपने शुद्धाचारों से बड़ा प्रसिद्ध था उसका विचित्र स्वभाव था, रात को वह सोया नहीं करता, समय काटने के लिये कई रातें जोर से बातें करने में गुजार देता, चाहे उसके पास रय, मनुष्य न भी हो, तो भी यही प्रतीत होता था कि वह किसी से बातें करता है। कई बार वह बड़े जोर से चीखें मारता, जब उसके कमरे में जाते तो अकेला ही मिलता, इन बातों ने स्वामी जी को हैरान कर दिया, उन्होंने इनके चेलों से सारी बातों के कारण पूछे, इसके सिवा कुछ उत्तर न मिला, कि इनका स्वभाव ही ऐसा है। इस मनुष्य से एकान्त में वार्त्तालाप करने से स्वामी जी को विदित हुआ, कि यह मनुष्य योग विद्या की सिद्धियां प्राप्त करना चाहता है, परन्तु इस विद्या की इसे अभिज्ञता नहीं। यहां से चल कर स्वामी जी काशीपुर गये। वहां से द्रोणसागर में पहुंचे और वहीं सर्दी का समय निभाया। यहां पर एक बार यह मन में आया कि हिमालय पर्वत पर जाकर प्राण दे देने चाहियें, परन्तु बहुत से विचार के पीछे यही निश्चय किया कि मर जाना कोई पुरुषार्थ नहीं, वरं ज्ञान प्राप्त कर देह त्यागनी उचित है। २१ वर्ष का बालक घर से मृत्यु की औषधि ढूंढने के लिये निकला था, १५ वर्ष की बड़ी कठोर मेहनत, बन निवास और परिश्रमों के करने पर भी यदि लक्ष्य प्राप्ति न हुई, तो वास्तव में चिन्ता और आत्मघात की इच्छा होती ही है। कौन सा महापुरुष है जिसकी कभी न कभी यह दशा नहीं हुई हो। आत्मा समझती है कि जिस महान् कार्य की प्राप्ति के लिये देह धारण की हुई है, उस महान् कार्य की इच्छा आत्मा को व्याकुल कर देती है। तलाश करते २ शरीर और आत्मा दोनों थक जाते हैं, और कई बार उद्देश्य अप्राप्ति, तथा निराशता से यही सूझता है कि आत्मघात द्वारा दुःखों से पार हों। परन्तु आत्मघात रूप महापाप से हाथ रुकता है, और धर्म भय यह

करने नहीं देता। अन्त में इन विचारों का झगड़ा होता है, यहां तक कि या तो इस तलाश में यमराज अपने दूत भेज कर आत्मा को अपने कार्य से हटा लेते हैं, या संजीवनी की प्राप्ति हो जाती है। जिसको संजीवनी बूंटी का पता मिला, वह तो अमर हो जीवनोद्देश्य पूर्ण कर लेता है। जो कार्य के बीच में मरा वह मन की मन में रहने से निराश हो जाता है। स्वामीजी ने मन को समझाया कि इस प्रकार उद्देश्य प्राप्ति बिना देह त्याग देनी कायरता का काम है। स्वाभाविक दिलेरी से अपने मन को काबू किया, और फिर पूर्ववत् अमृत की विवेचना में लग गये। द्रोण सागर से चल कर स्वामी जी मुरादाबाद, सम्भल और गढ़मुक्तेश्वर की राह गंगा के किनारे जा निकले। उस समय इनके पास अन्य पुस्तकों के सिवा संस्कृत में (जराही) वैद्यक शस्त्र विद्या के भी कुछ पुस्तक थे, जिनको वह प्रायः पढ़ा करते थे। एक पुस्तक इस प्रकार लिखी हुई थी कि वह याद नहीं हो सकती थी, और उसकी सत्यता में भी सन्देह था। परन्तु अब तक उनकी परीक्षा का कोई अवसर नहीं मिला था। एक दिन गंगा में बहती हुई एक लाश देखी, उसे देख कर स्वामी जी को पुस्तक की परीक्षा का विचार हुआ। वस्त्र उतार लपक कर शव बाहर ले आये, तेज चाकू से लाश को काट उसका दिल पुस्तक से मिलाया, कि वर्णन मिलता है या नहीं। फिर सिर और गर्दन के भागों को काट पुस्तक से मिलाया, तो विदित हुआ कि यह पुस्तक मिथ्या है। यह परिणाम देख पुस्तकों को फाड़ लाश सहित नदी में बहा दिया। यह वर्णन साक्षी देता है, कि सत्य विद्या की प्राप्ति का विचार और विवेक शक्ति स्वामी जी में कितनी प्रबल थी। देखो, कहां हिन्दु संन्यासी और कहां शव का चीरना, यह लोग मुर्दे से छूने को महापाप समझते हैं, चीरना तो दूर। यही विवेचना की इच्छा थी जिसने स्वामी जी को महापुरुष बना दिया।

इसी प्रकार गंगा तट पर कुछ दिन और ठहर, स्वामी जी १९१२ के अन्त में फर्रुखाबाद आ गये। १९१३ में पहले पहल स्वामी जी ने इलाहाबाद और कानपुर के मध्य के कई स्थान देखे। फिर मिरजापुर

के समीप काशी में कुछ दिन ठहरे। फिर विन्ध्याचल पर अशौंची के मन्दिर में एक मास ठहरे। इसके अनन्तर काशी जी में आकर उस गुफा में ठहरे, जो वरना और गंगा के संगम पर है। जो इस समय भवानन्द सरस्वती जी के अधिकार में था। और यहां पर कई विद्वानों से मेल हुआ। यहां से चल चांडालगढ़ पहुंच, दुर्गाकुण्ड के मन्दिर में जा उतरे, और वहां दिन रात योग विद्या के पढ़ने और क्रिया करने में लगे रहे। एक दिन उन्होंने चांडालगढ़ के समीपी एक गांव के शिवाले में रात विताई। स्वामी जी मन्दिर के वरांडे में बैठे हुए थे। नियमानुसार इस शिवालय में नन्दीगण था, उन्होंने अपने वस्त्र और पुस्तक उसके उदर में रख दिये, और जैसे ही उनकी दृष्टि नन्दी के मुख की ओर पड़ी तो उसके बीच एक पुरुष छिपा हुआ देखा। उन्होंने उसकी ओर हाथ फैलाया और वह तो भय के मारे निकल कर गांव की ओर भाग गया, अब यह आप उसके स्थान नन्दी के उदर में बैठ गये और सारी रात्रि वहीं रहे। प्रातः होते ही एक वृद्ध स्त्री ने आकर नन्दी का पूजन किया, गुड़ और दही का भोग लगाया, स्वामी जी को क्षुधा लगी हुई थीं, बड़े आनन्द से दही भक्षण किया।

चैत्र सं० १९१४ वि० को स्वामी जी नर्वदा स्रोत की ओर पधारे और दक्षिण की ओर चलते २ एक निर्जन वन में जा पहुंचे। यहां कुछ इधर उधर झोंपड़ियां थीं, यहां एक झोंपड़ी में बैठकर इन्होंने दूध पिया, और वहां से चलकर डेढ़ मील की दूरी पर एक ऐसे घने जङ्गल मे जा निकले, जहां बेरियों के बड़े पेड़ थे और घास इतना था कि मार्ग भी दिखलाई नहीं देता था। यहां एक रीछ से सामना हुआ। यह खूनी जीव पिछले पांव खड़ा हो चिंघाड़ता हुआ इनको खाने के लिये इन पर लपका। यह चुपके उसके सन्मुख खड़े थे। फिर इन्होंने अपने सोटे से डराया जिससे वह चिंघाड़ता हुआ वैसे ही पीछे भागा। इसके शब्द को सुन, झोंपड़ियों में से कुछ लोग सोटे और शिकारी कुत्ते ले इनकी सहायता को आये। और उन्होंने कहा कि आप आगे न जावें, क्योंकि इस बन में हाथी, शेर और रीछ आदि

घातक जीव रहते हैं। स्वामी जी ने इनके कहने पर कुछ भी विचार न किया। वरंच उस लम्बे सोटे को भी जोकि उन्होंने दया प्रकट करने के लिये दिया था, वहीं फैंक दिया, और अपनी राह चल पड़े। सारा दिन चलते रहे और कई घण्टों तक उनको कोई आबादी का चिह्न दीखने में न आया। मार्ग में कई ऐसे खेत मिले जिनको हाथियों ने जड़ से उखाड़ दिया था, आगे ऐसा घना जंगल आया कि जिसमें घुसना महाकठिन था। उसमें कांटे वाली बेरियों के पेड़ बहुत थे, उस जंगल से उदर और घुटनों के बल पार उतरे। शरीर जख्मी हो गया, और उनकी दशा अधमरे के समान हो गई। इतने में नितान्त अन्धेरा छा गया और चारों ओर अन्धकार के सिवा कुछ नहीं दीखता था। परन्तु अन्धेरे में भी वह आगे बढ़ने से न टले, अन्त को एक ऐसे भयानक स्थान पर पहुंचे जहां सब्जी से लदे हुए ऊंचे २ पहाड़ ही थे। चलते २ इनमें कहीं २ आबादी के चिह्न प्रतीत हुए, थोड़ी देर में इनकी दृष्टि कई झोंपड़ियों और कुटियाओं पर पड़ी और उनके इर्द गिर्द गोहों के ढेर दिखाई देने लगे। एक ओर शुद्ध नदी के तट पर बकरियां चर रही थीं, और झोंपड़ियों में डगमगाती हुई चांदनी भी नजर आती थी, सबसे पहले एक वृक्ष के नीचे पहुंचे, जिसके नीचे एक झोंपड़ी थी उसके अन्दर जाकर उन्होंने वहां के मनुष्यों को बे आराम करना न चाहा इसलिये उस वृक्ष पर चढ़ गये और सारी रात्रि वहीं व्यतीत कर दी, प्रातःकाल हो वहां से उतरे और प्रातः होते ही नदी के तट पर जाकर, अपने जख्मी पाओं और शरीर को धो डाला, उपासना करने को बैठे ही थे, कि जंगली जीव की गरज की आवाज आई, परन्तु वास्तव में यह गाड़ी का शब्द था, थोड़ी ही देर में बहुत से नर नारियों का झुण्ड, कई बकरियों और गौओं के साथ आते देखा, वह लोग किसी जातीय रसम के पूरा करने को जा रहे थे। जब उन्होंने स्वामी जी को देखा तो सब उनके पास आ गये और एक बूढ़े ने आगे होकर पूछा कि आप कहां से आये हैं, उन्होंने उत्तर दिया कि काशी से आया हूं और नर्वदा स्रोत की यात्रा को जाता हूं। इतना पूछ वे सब

चले गये और स्वामी जी उपासना में तत्पर ए। लगभग आधे घण्टे के अनन्तर उनका सरदार दो पहाड़ी मनुष्यों को साथ लिये वापस आया, और एक ओर हो, स्वामी जी के निकट बैठ, स्वामी जी से कहने लगा, कि आप चल कर हमारी झोंपड़ी में विराजिये हम लोग आपका तन मन से सत्कार पूर्वक भोजन प्रबन्ध करेंगे। परन्तु स्वामीजी ने न माना। लाचार हो उसने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि स्वामीजी के चारों ओर धूनी लगा दें और रात्रि को भी इनकी रक्षा के लिये वहीं रहें, फिर उसने भोजन के लिये प्रार्थना की, इन्होंने उत्तर दिया कि मैं केवल दूध पीता हूं। इस पर वह स्वामी जी का तूंबा लेकर भर लाया। उस दिन स्वामी जी दूध पी उसके रखवालों के पहरे में सो रहे। प्रातः होते ही सन्ध्यादि कर वहां से चल पड़े। तीन वर्ष तक नर्वदा के तट पर यात्रा करते रहे। और अनेक महात्मा, साधुओं और विद्वानों के संग से लाभ उठाते रहे। यहां से वापस आकर मथुरा को पधारे और यहां आकर विरजानन्द जी से विद्या लाभ करने लगे।

मथुरा में स्वामी विरजानन्द जी से विद्या लाभ करना

स्वामी विरजानन्द जी असल में द्वाबा स्थित जालन्धर के निवासी थे। बालक अवस्था में ही चेचक से इनके दोनों नेत्र बन्द हो गये थे। यह नेत्र तो गये परन्तु ज्ञान चक्षुओं ने असामान्य प्रकाश किया। ११ वर्ष की अवस्था में अन्धा बालक अनाथ हो गया माता पिता दोनों काल कर गये। एक अन्धा दूसरा अनाथ, ३य कल-युगी भाई की शरण। वह स्वर्ग समान घर जिनमें ११ वर्ष माता-पिता की प्रेमभरी आंखों के सामने पालना पाई थी, उनके मरते ही नरक के समान हो गया। अन्धा अनाथ बालक भाई के क्रोध को न सहारता हुआ घर से निकल, भीख मांगता, ठोंकरें खाता, हरिद्वार पहुंचा, अन्त को पुरुषार्थ से ऐसी विद्या पढ़ी, कि अपने समय का

अद्वितीय हो गया। स्वामी दयानन्द विरजानन्द जी को विद्या का सूर्य कहा करते थे, विरजानन्द जी भी दयानन्द के समान दण्डी संन्यासी थे। जब स्वामी जी नरबदा की यात्रा से उतरे, तो विरजानन्द की बड़ी महिमा सुनी और उनकी महिमा से खिंच कर मथुरा जी पहुंचे। स्वामी जी ने स्वरचित आत्म जीवन में ऐसे लिखा है।

"सं० १९१७ वि० को मथुरा जी में एक संन्यासी सत्पुरुष मुझे गुरु मिले, उस समय उनकी आयु ८१ वर्ष की थी, उनको वेद शास्त्र से लेकर आर्ष ग्रन्थों तक में बड़ी रुचि थी, वे नेत्रांध थे उनको आधुनिक कौमुदी शेखर आदि ग्रन्थ पसंद नहीं आते थे। वह भागवत आदि ग्रन्थों का बड़ा तिरस्कार करते थे, समस्त आर्ष ग्रन्थों में उनकी बड़ी भक्ति थी।"

स्वामीजी यमद्वितिया कार्तिक शुदि २ सं० १९१७ एवं १४ नवम्बर १८६० ई० को मथुरा जी पहुंचे और सीधे दण्डी जी के डेरे में गये। दंडी जी ने पूछा, क्या पढ़े हो, स्वामी जी ने कहा कि सारस्वत प्रभृति, जिस पर स्वामी विरजानन्द जी ने कहा कि उन्हें यमुना में फेंक दो और यह भी प्रण करा लिया कि सारस्वत तथा अन्य मनुष्य रचित ग्रन्थों को प्रमाणीय नहीं मानूंगा। स्वामी जी ने ऐसा ही किया। तब दंडी जी ने इनको पढ़ाना आरम्भ किया और ३१)रु० का चन्दा करके इनको महाभाष्य मंगा दिया।

स्वामी जी के मथुरा में कुछ मास पढ़ने के अनन्तर बड़ा दुर्भिक्ष पड़ गया। इस दुर्भिक्ष से लोग अपना ही कठिनता से निर्वाह करते थे, विद्यार्थियों के लिये यह समय बड़ी परीक्षा का था। हमारे संन्यासी विद्यार्थी ने बड़े साहस से यह समय काटा। दुर्गा खतरी ढ़का वाले के घर से कभी मुट्ठी चने, कभी चनों की रोटी खा उदर पूर्णा की। इससे थोड़े दिन पीछे मथुरा निवासी पं० अमरलाल ने इनके भोजन और पुस्तकों का भार अपने ऊपर ले लिया। यह महाशय नित्य घर लेजा खाना खिलाता, जब कभी वह किसी उत्सव पर जाता तो पहले इनको घर बुला कर भोजन कराता, फिर खाने को जाता। इस मनुष्य की

उदारता ने स्वामी जी को अपना कृतज्ञ बना लिया और वह जीवन पर्यन्त इनकी उदारता के बड़े कृतज्ञ रहे। कहते हैं कि यह मनुष्य नित्य सौ सवा सौ ब्राह्मणों को भोजन कराता था। संसार की कोई जाति इसका (तुलना) मुकाबला नहीं कर सकती। विद्यार्थियों को भोजन खिलाना हिन्दुओं में विशेष पुण्य है और इसी प्रकार सैंकड़ों महापुरुष मनुष्य उदारचितों से अन्न खाकर पंडित बने हैं। प्राचीन समय का शिक्षा प्रबन्ध प्रायः इसी रीति पर निर्भर था। यद्यपि समय के प्रताप से यह मर्यादा उठ गई है। परन्तु अब भी ऐसे गये गुजरे समय में पं० अमरलाल जैसे उदार विद्यमान् हैं।

स्वामी जी रात्रि के समय भी विद्या अध्ययन में लगे रहते, और लाला गोवर्द्धन दास ।) मासिक तेल के लिये देते और लाला नामी एक महाशय २) मासिक दूध के लिये देते थे।

स्वामी दयानन्द जी अन्य विद्यार्थियों को प्रायः ब्रह्मचर्य का उपदेश देते थे, विद्यार्थी अवस्था में स्वामी विरजानन्द जा ने कई बार इनको अपने पास से निकाल दिया, परन्तु यह फिर उनके पास चले जाते। एक बार स्वामी विरजानन्द जी का काशी जी में रंगाचार्य से शास्त्रार्थ हुआ, इसमें यह उनके साथ थे। रंगाचार्य का एक शिष्य संस्कृत बोलने लगा, तो आपने उनकी भूलें प्रकट कीं, परन्तु स्वामी विरजानन्द जी ने इनको रोक दिया। श्री स्वामी विरजानन्द जी प्रायः इनको ताड़ना किया करते थे, एक बार उन्होंने इनके हाथ पर एक ऐसी लाठी मारी जिससे हाथ पर बहुत चोट लगी। आपने प्रार्थना की कि महाराज आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर कड़ा हैं, आपके हाथ में मुझ से अधिक चोट लगती होगी। इस चोट का चिह्न अन्त तक इनके हाथ पर रहा, वरं इस चिह्न को देख स्वामी जी के उपकारों को याद किया करते थे।

स्वामी दयानन्द विद्यार्थी की दशा में गुरुजी की कईप्रकार की सेवा किया करते थे। उनके स्नान और पान को यमुना जी से जल लाया करते थे। उनकी आज्ञा पालन अपना कर्त्तव्य समझते थे और योगा-

भ्यास बराबर किया करते थे। ब्राह्मणों को नित्य संध्या अग्निहोत्र आदि करने का उपदेश किया करते थे। अपने सहाध्यायियों से चर्चा करते ११ बजे रात्रि तक पढ़ते थे। इसीलिये बहुत से विद्यार्थी उनके स्थान पर आ जाते थे, इन्हीं दिनों में मूर्ति पूजन का खंडन भी किया करते थे और लोगों को एक ईश्वर पूजन का उपदेश दिया करते थे स्वामी दयानन्द ने अढ़ाई वर्ष गुरु विरजानन्द से शिक्षा पाई। इस समय में अष्टाध्यायी महाभाष्य, वेदान्त सूत्र और कई अन्य पुस्तक पढ़े। जब पढ़ चुके और आज्ञा लेने की अभिलाषा हुई तो नियमानुसार गुरु भेंट लेकर उपस्थित हुए। संन्यासी विद्यार्थी के पास बहुमूल्य पदार्थ था ही नहीं, आधसेर लौंग भेंट में लेजा कर गुरु से आज्ञा मांगी और कहा कि मेरे पास कुछ नहीं जो महाराज की भेंट करूं। महर्षि जी ने उत्तर दिया कि क्या मैं तुझसे ऐसा पदार्थ मांगूंगा जो तेरे पास न हो ? इससे निरुत्तर होकर प्रार्थना की, जो मेरी सामर्थ्य में हैं भेंट करने को उद्यत हूं। इस उत्तर से प्रसन्न हो महर्षि जी ने कहा पुत्र ! जो लिखा पढ़ा सफल कर, देश का सुधार कर, वेद विद्या संसार से उठ गई हैं इस का प्रचार कर, सच्छास्त्रों को फैला, मत मतान्तरों को दूर कर और इस बात को स्मरण रक्ख, कि मनुष्य कृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषियों की व्याजनिंदा भरी पड़ी है, ऋषिकृत ग्रन्थ इससे रहित हैं, यही ऋषि कृत और मनुष्य कृत ग्रन्थों की पहिचान है।

स्वामी दयानन्द ने बड़ी विनय से गुरु उपदेश सुना और उसके पूर्ण करने का प्रण किया, गुरु ने इनको कृतकार्यता का आशीर्वाद दिया और यह वहां से चल पड़े। स्वामी दयानन्द जी ने किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पालन की इसका साक्षी सारा देश है। इन्होंने अपना समस्त जीवन धर्म्मोपदेश में काटा, सहस्त्रों क्लेश सहे परन्तु अपने कर्त्तव्य से ढीले न हुए। धन्य हैं स्वामी जी जिन्होंने देश के क्लेश को अपना क्लेश समझा, लोगों की अविद्या दूर करने को सहस्त्रों दुःख उठाये, लोगों को अपना शत्रु बनाया। ऐसे समय गुरु आज्ञा अनुसार कार्य करना प्रारम्भ किया कि जिस समय इनका कोई भी

सहायक न था। और इनसे अधिक धन्य हैं वह गुरु, जिन्होंने वृद्धावस्था में देश के मन्द भाग्य देख एक ऐसा शिष्य उत्पन्न किया और उस से कोई सांसारिक पदार्थ गुरुदक्षिणा में न मांगी, वरंच देशोपकार और शास्त्र प्रचार की ही रु दक्षिणा मांगी और इसकी पूर्त्ति के लिये सच्चे दिल से आशीर्वाद दिया।

स्वामी दयानन्द के मन में अपने गुरु की बड़ी प्रतिष्ठा थी, कई स्थानों में वह अपनी रचना में गुरु जी को बड़ी कृतज्ञता से याद करते हैं। महर्षि स्वामी विरजानन्द से विद्या पाने का समय मानों स्वामी दयानन्द सरस्वतीके ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति का समय है।

नोट—स्वामी दयानन्द जी बड़े फखर से (घमण्ड) से अपने आपको विरजानन्द का शिष्य लिखते हैं।

द्वितीय भाग

स्वामी दयानन्द ब्रह्मचर्य को समाप्त कर अपना काय आरम्भ करते हैं।

वैशाख सं० १९२० से वैशाख १९२४ तक

मथुरा जी में दयानन्द सरस्वती जी ने महर्षि स्वामी विरजान्द जी से शिक्षा पा, अपना ब्रह्मचर्याश्रम सम्पूर्ण किया और अपने गुरु से परोपकार करने की आज्ञा पाकर वैशाख १९२० को वहां से आगरे की ओर रवाना हुए।

आगरे में आकर यमुना के तट पर लाला रूपचन्द के पुत्र लाला गुल्लामल अग्रवाल के बगीचे में उतरे। यहां से कभी-कभी आप जाकर या पत्रों द्वारा स्वामी विरजानन्द जी से अपने सन्देह निवृत्त करते रहे।

जिन दिनों में आप आगरे में थे तो कैलाश पर्वत नामी एक स्वामी इसी बगीचे में आकर उतरे, एक दिन यह स्वामी गीता का एक श्लोक सर्व साधारण पुरुषों को समझा रहे थे, परन्तु लोगों की उससे तसल्ली न हुई। एक पुरुष ने इनसे इस श्लोक के अर्थ करने की प्रार्थना की,

इन्होंने बड़ी उत्तम रीति से अर्थ किये जिससे उपस्थित सज्जन चकित हो गये।

स्वामी कैलाश पर्वत ने इनकी विद्वत्ता की श्लाघा की, और लोगों से कहा कि यदि कुछ पढ़ना हो तो इस साधु से पढ़ो, सो उस दिन से कई एक मनुष्यों ने पढ़ने के लिए इनके पास आना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन यहां पर गीता की कथा की और फिर श्रोताओं की इच्छानुसार पञ्चदशी बांची, इस पुस्तक में कहीं यह भी लिखा आ गया कि कभी ईश्वर को भी संदेह हो जाता है। इस पाठ को पढ़ते ही पुस्तक को हाथ से रखकर इन्होंने कहा कि मैं इस पुस्तक को नहीं बाचूंगा। यह मनुष्य की रचना है, ऋषि प्रणीत नहीं और मुझे गुरुजी की आज्ञा है कि ऋषि प्रणीत पुस्तक पढ़ूं और सुनाया करूं। यहीं पर इन्होंने एक संध्या पुस्तक रची जिसको रूपलाल महाशय ने ३०००० के लगभग छपवाया और प्रायः मुफ्त बांट दिया। आप आगरे में दो वर्ष के लगभग रहे। यहां से वेदों की तलाश में (सं० १९२१) को धौलपुर चले गये। धौलपुर, आबू पर्वत को होते हुए स्वामी जी चार विद्यार्थियों को साथ ले लशकर (गवालियर) में पहुंचे। सन् १८६५ ई० के आरम्भ में महाराजा जी ने श्री मद्भागवत के सप्ताह की कथा बिठाई थी। आपके आने का समाचार पाकर महाराज ने कुछ मनुष्यों को भेज सप्ताह का महात्म्य इनसे पूछा। उत्तर में उन्होंने कहा? कि क्लेश उठाने और दुःख पाने के सिवा इसका कुछ फल नहीं है, चाहे करके देख लो। यह सुन महाराज हंस पड़े और कहने लगे कि आप सामर्थ्यवान् जो चाहें सो कहें अब तो सब तय्यारी कर चुके हैं। स्वामी जी यह भी कहला भेजा कि गायत्री का पुरश्चर्ण होना चाहिये। परन्तु महाराज ने इतना कहकर टाल दिया, कि अब सब प्रकार की तय्यारियां हो गई हैं, उनको बदल नहीं सकते, एक ओर बड़ी धूमधाम व प्रबन्ध से सप्ताह हो रहा था, जिसमें सारी राजधानी प्रसन्न हो रही थी, और २य, ओर स्वामी जी बिना किसी सहायता के भागवत का खण्डन कर रहे थे। यद्यपि राजा का भय

था परन्तु तो भी बहुत मनुष्य सुनने आते थे और अन्दर ही अन्दर मन में स्वामी जी के उपदेश की सचाई समझते थे। जिस रात्रि को सप्ताह का भोग पड़ा राजधानी में प्रसन्नता के बाजे बजे और दैवात् यह प्रसन्नता चिन्ता में पलट गई, क्योंकि इसी रात्रि को महारानी का पांच मास का गर्भपात हो गया था और इसी मास में शहर में विशूचिका ने अपना अटल वेग दिखलाया।

लशकर-ग्वालियर से चलकर करौली के राह जैपुर में पहुंचे, स्वामीजी एक बाग में जा उतरे। यहां आपके तीन चार छोटे २ शास्त्रार्थ हुए, जिनमें इन्होंने अपनी विद्वत्ता का प्रमाण दिया। अचरौल के जागीरदार ठाकुर रंजीतसिंह जी ने जो इन दिनों में यहीं आये हुए थे, बीकानेर निवासी एक ठाकुर हमीरसिंह जी के द्वारा स्वामीजी को अपनी जागीर में बुलाया। और इनसे धर्म चर्चा करते रहे, इस उपदेश का फल यह हुआ कि आप ने मूर्त्ति पूजन छोड़ दिया और इनसे प्रति दिन मनुस्मृति और उपनिषदों का सुनना आरम्भ कर दिया। इस कथा में और भी बहुत से मनुष्य आया करते थे, आपकी कथा की प्रणाली और समझाने का ढंग ऐसा था कि श्रोता के हृदय में असर किये बिना नहीं रहता था। जैसा कि एक मनुष्य का कथन है कि उन्होंने मनुस्मृति की कथा सुनने से शराब पीनी छोड़ दी।

जैपुर ❀ से चल कर सं० १९३२ को पुष्कर जी का मेला देखने के लिये स्वामी जी पुष्कर में पहुंच ब्रह्मा मन्दिर में जा उतरे और वहां वाद विवाद में मूर्त्तिपूजन का खण्डन आरम्भ कर दिया, बहुत से ब्राह्मण शास्त्रार्थ के लिये आये परन्तु कोई सामने खड़ा न हो सका।

❀ स्वामी जी के देहान्त के पीछे इस पुस्तक का कर्त्ता, पंडित गुरुदत्त, ला० हंसराज, ला० साईंदास, ला० ज्वालासहाय तथा अन्य कई महाशयों के साथ सैर करने को पुष्कर जी गये थे, पुष्कर के पण्डित स्वामी जी को बड़े दुर्वचन (गालियें) देते थे।

यह हाल देख ब्राह्मण वैकुण्ठ शास्त्री के पास सहायता के लिये गये. उसने पहिले तो स्वामी जी के स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करने को कहा, परन्तु जब वह न आया तो स्वामी जी आप उसके स्थान पर चले गये।

इस समय ४०० ब्राह्मणों के लगभग वहां जमा थे। शास्त्रार्थ का विषय भागवत था, पहिले वैकुण्ठ शास्त्री ने भागवत का मण्डन किया फिर स्वामी जी ने उसका खण्डन किया, खण्डन उन प्रबल युक्तियों और वेग से हुआ कि शास्त्री जी को अपना विषय छोड़ अन्य पण्डितों के समान शब्द विवाद पर आना पड़ा। इसमें भी आपने स्वामी जी की विद्वत्ता प्रकट की। और वादी को आपकी विद्वत्ता के सन्मुख शीस निवाना पड़ा। फिर यह पण्डित इनको अपने गुरु के पास ले गया। और उसने आपके हक्क में फैसला दिया। इस पर वैकुण्ठ शास्त्री ने सब उपस्थित सज्जनों के सामने मान लिया कि स्वामी जी सत्य कहते हैं। लोगों ने वैकुण्ठ शास्त्री से इस विषय में पूछा, उन्होंने कहा कि मैं क्या करूं स्वामी जी जो कहते हैं वास्तव में सत्य है। परन्तु स्वामी जी को कामयाबी तब होगीं जब कोई राजा इनका शिष्य हो जावेगा।

पुष्कर से आप अजमेर को पधारे, आप लिखते हैं कि अजमेर पहुंच शिव मत का भी खण्डन शुरू कर दिया पण्डितों से और तो कुछ न बन आया संस्कृत में यह प्रश्न लिखकर भेज दिये।

(१) संन्यासी को तीन दिन से अधिक कहीं नहीं रहना चाहिये।

(२) बग्घी पर सवार नहीं होना चाहिये। इन प्रश्नों का जवाब भी आपने लिख कर भेज दिया और विपक्षियों के लेख में जो भूलें थीं वह भी लिख दीं। अजमेर में आपका पादरी ग्रे, राबिसन और और शलब्रेटन साहिब से तीन दिन तक ईश्वर, जीव, प्रकृति नियम और वेद विषयों पर चर्चा होती रही, परन्तु वह कोई सायोस्तिक खण्डन न कर सके। एक दिन स्वामी जी पादरी राबिन्सन साहिब को मिलने गये, तो आपने प्रश्न किया कि क्या ब्रह्मा का अपनी पुत्री से भोग

करना सत्य है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि इस नाम का कोई अन्य पुरुष होगा महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे । यह पादरी आपकी विद्वत्ताके बड़े, कायल थे, चुनांचे आपने इनको एक पत्र दिया जिसमें लिखा था, कि:—

"यह प्रसिद्ध मनुष्य वेदों के बड़े विद्वान् हैं, हमने अपनी सारी आयु में ऐसा पण्डित नहीं देखा, ऐसे पुरुष संसार में दुष्प्राप्य हैं, जो इनसे मिलेगा बहुत लाभ उठावेगा । जो इनसे मिले प्रतिष्ठा पूर्वक मिले ।".

अजमेर में आप डैविडसन साहिब डिप्टीकमिश्नर से मिले और कहा कि मत मतान्तरों के लोग आपकी प्रजा को लूट कर खा रहे हैं, राजा पिता के समान होता है, इसलिये आपको इसका प्रबन्ध करना चाहिये । इसके उत्तर में उसने कहा, कि यह मजहबी बात है इसमें सरकार दखल नहीं दे सकती । यहीं पर आपका गवर्नरजनरल के एजेण्ट से भी मिलाप हुआ, बात चीत में इनसे गोरक्षा के विषय में कहा और गोरक्षा के लाभ प्रति पादन किये, उक्त साहिब ने सयाक्तिक वचन सुन गोरक्षा के लाभ तो स्वीकार किये, परन्तु उत्तर में कहा कि इसमें मेरा कुछ अखत्यार नहीं और साथ ही एक चिट्ठी देकर कहा कि जिसको आप यह दिखायेंगे वह आपसे मुलाकात करेगा ।

स्वामी जी स्त्रियों को अपने पास आने नहीं देते थे । अजमेर में इनके उपदेश सुनकर बहुत सी स्त्रियें इनके पास आईं परन्तु उनको इन्होंने कहा कि हम स्त्रियों को उपदेश नहीं करते यदि आपने उपदेश लेना है तो अपने स्वामियों को यहां भेज दो, उनको उपदेश करेंगे तुम उनसे सुन लेना ।

जैपुर के महाराज ने रंगाचार्य्य से शास्त्रार्थ कराने के लिये बुला भेजा, जब जैपुर पहुंचे तो मिलने के लिये इन्हें बुलाया परन्तु अन्त में इनको खबर मिली कि यह शिव पूजन और मूर्त्ति पूजन का खण्डन करते हैं, इस बात से महाराज क्रुद्ध हो गये । और जिस समय यह महलों में जा पहुंचे तो कहला भेजा कि महाराज कहीं बाहर गये हुए हैं, स्वामी जी असल बात जान गये, और यह कह कर वापिस चले आये कि हमें महाराज से क्या काम है ।

नवम्बर १८८६ को आगरे में एक शाही दरबार होने वाला था, देश के समस्त राजा इसी लिये यहां आये थे। इस समय को स्वामी जी ने उपदेश के लिये उत्तम समझा, इसलिये आगरे को चल दिये। और यहां आकर सात आठ पृष्ठ का एक छोटा सा ट्रैक्ट भागवत के खण्डन में लिखा, और इसकी कई हजार प्रति छपवा कर शहर में मुफ्त बांट दीं और उसी ट्रैक्ट की कई हजार प्रति अपने पास हरिद्वार के मेले में बांटने के लिये रख लीं। इन दिनों में इनके पास पांच विद्यार्थी भी पढ़ते थे।

आगरे से स्वामी विरजानन्द जी को मिलने के लिये आये इस मिलाप में दो अशरफियें और एक थान मलमल का स्वामी जी को भेंट किया, आपने ट्रैक्ट सुनाया और हरिद्वार के मेले पर प्रचार करने की आज्ञा मांगी। स्वामी विरजानन्द इनसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया। गुरु जी से स्वामी जी का यह अन्तिम मिलाप था।

हरिद्वार की पहली यात्रा

हरिद्वार प्रकृति के दृश्यों से ऐसा रमणीय स्थान है कि जहां मनुष्य उनको देख उनके अद्वितीय कर्त्ता की ओर खिंच जाता है। गंगा नदी पहाड़ों से उतर यहां मैदान में प्रवेश करती है और अपने पूर्ण वेग से बहती है, यहां नदी के दोनों ओर पहाड़ियें हैं, और हरिद्वार के देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है, कि पर्वतों को काट २ कर गंगाजी को हरिद्वार की पौड़ियों पर लाया गया है। हरिद्वार की ओर कनखल के समीप पहाड़ियें समाप्त हो जाती हैं। और आगे गगा मैदान में बहने लगती है। गगा की नहर के स्रोत प्रवाह रचना ने प्रकृति के दृश्यों को और भी मनोहर बना दिया है। गंगा जी के बड़े प्रवाह को नहरों में डालने का काम सर्वसाधारण दर्शकों को अतीव विस्मय करता है। ऐसा काम मनुष्य की बुद्धि की महत्ता को प्रकट करता हुआ प्रकृति दृश्य से भी अतीव मनोहर है। अनुभव से सिद्ध हो गया है कि गगाजल में ऐसे २ गुण हैं कि जिनसे वह देर तक रखने से भी दुर्गन्ध नहीं करता। यह जल अति शुद्ध और मीठा होता है, लोग पाचक भी कहते हैं, हरिद्वार

से ऊपर एक विस्तृत बन है, जिसमें जगली हाथी असंख्य हैं। हिन्दुओं की दृष्टि में गंगा नदी बड़ी पवित्र है, और इसमें स्नान करना मुक्ति दाता समझा जाता है। हरिद्वार की पौड़ियां पर स्नान का बड़ा महात्म्य गिना जाता है, और हरवर्ष लाखों हिन्दु नर नारियें स्नानार्थ वहां जाते हैं, वर्ष में कई पर्वों पर यथा वैशाखी सोमावती अमावस और एकादशी को यहां मेला लगता है और लगभग सारे भारत से यात्री आते हैं।

इतिहास से विदित होता है कि ईसा की सातवीं सदी में जब कि चीन का यात्री हयूनशांग भारत में सैर के लिये आया था तब भी हरिद्वार हिन्दुओं का बड़ा तीर्थ माना जाता था और वहां का स्नान अब के समान ही फलदायक माना जाता था। प्राय: १२ वर्षों के पीछे हरिद्वार पर कुम्भ का मेला होता है, जिसमें भारत के चारों ओर के लाखों हिन्दु एकट्ठे होते हैं और कुम्भ के स्नान का बड़ा महात्म्य माना जाता है। सो वैशाख सं० १६२४ को यहां कुम्भ का मेला था।

स्वामी दयानन्द जी मेले से लगभग एक मास पहिले १२ मार्च सन् १८६७ ई० को हरिद्वार पहुंच गये। हरिद्वार से ऊपर पद २ पर तीर्थ हैं, परन्तु इनमें हृषिकेश सब से प्रसिद्ध है, यहां संयासी साधु विशेष करके रहते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ऋषिकेश के मार्ग में "सप्त स्रोत" के समीप "बाड़ा" बांध कर और उसमें आठ सात छप्पर डलवा कर डेरा लगा दिया और वहां एक झण्डी गड़ दी, और इस स्थान का नाम 'पाखण्ड खण्डनी' रक्खा गया।

हिन्दुओं के सहस्रों मत मतांतरों के प्रतिनिधि वहां विद्यमान थे। और सब परस्पर लड़ते थे, प्रत्येक अपनी ही बड़ाई करता था, बहुत से राजा महाराजा मेले में आये हुए थे, जिनमें काश्मीर व जम्बू के महाराजा रणबीरसिंह भी थे, काशी के प्रसिद्ध संन्यासी विशुद्धानन्द जी भी आये हुए थे। यह स्वामी जी पौराणिक पण्डितों के गुरु थे। लोगों की इनमें ऐसी श्रद्धा थी कि उत्तरी भारत में सैंकड़ों वरं सहस्रों मन्दिरों में मूर्त्तियों के स्थान

इनकी मूर्ति की पूजा हो रही है। जम्मू व काश्मीराधीश भी इनके सेवकों में थे। विशुद्धानन्द ने पुरुष सूक्त में से वेद की "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" ऋचा का यह अर्थ किया कि ब्राह्मण परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, स्वामी जी ने यह अर्थ सुन, इसका खण्डन किया और कहा कि यदि यही अर्थ ठीक होता तो पापी भी उसी मुख से उत्पन्न हुए। ब्राह्मण मुख से उत्पन्न नहीं हुए अपितु वर्णों में ब्राह्मण मुख हैं।

सार यह है कि स्वामी जी उस पौराणिक महोत्सव में जहां सारी सृष्टि पौराणिक मत मतान्तरों के जाल में फंसी हुई थी उनकी विरोधी थी वहां बड़ी दिलेरी से निर्भय होकर समस्त पौराणिक मत मतान्तरों का खण्डन करते रहे और उपनिषदों की कथा सुना एक ईश्वर की उपासना का उपदेश करते रहे। यह स्वामी दयानन्द जैसे ही संन्यासी की सामर्थ्य थी, कि इस मेले में समस्त हिन्दुओं के निर्भय होकर ठीक उनके महातीर्थ पर झण्डा गाड़,कुम्भ के दिन उसी तीर्थ का खण्डन करे। क्या सांसारिक हिन्दु, क्या सन्यासी और क्या पण्डित सब आते, और सुनते थे, कहीं-कहीं कुछ तर्क भी करते थे, परन्तु गुस्सा खाकर रह जाते थे और उदास होकर पीछे चले जाते थे। मन ही मन में कहते थे, "हाय अन्धेर हिन्दु वीर्य से उत्पन्न होकर, फिर संन्यासी बन कर यह काम! क्या करें अंग्रेजी राज में कुछ पेश नहीं जाती, वरं अभी इसका खण्डन करा देते" ब्राह्मणों की छाती पर सर्प लेटता था, पर कुछ बस नहीं चलता था, केवल इतना कहकर चुप हो जाते कि कलयुग का प्रताप है। पाठकगण आप इस समय पर ध्यान दीजिये। सहस्रों के विश्वास के सन्मुख स्वामी जी का कथन क्या था, परन्तु उपदेश सत्य से पूर्ण था, उसमें परमात्मा के ज्ञान की रेखा थी, इसलिये वह उपदेश द्वारा निर्भय होकर अपने मन्तव्य को प्रकट करते थे और हिन्दुओं को सुनाते थे कि मूर्त्ति पूजन, मिथ्या विश्वास का समय चला गया है। अब या तो वार्त्तमानिक अधर्म नहीं रहेगा या हिन्दू जाति न रहेगी। सो उत्तम यह है कि पीछे बनी इस लीला को त्याग वेदों

के श्रोत से अमृत पीवो। सत्य तो यह है कि हरिद्वार के इस कुम्भ पर स्वामी जी ने हिन्दुओं के मन्तव्यों की नीम को खोखला कर दिया और सहस्रों वर्ष के दृढ़ विश्वास को हिला दिया। पाखण्ड खण्डनी डेरा क्या था, मानो समस्त सत्यशक्तियों का केन्द्र था। आर्य समाज के योग्य कवीश्वर महता अमीचन्द ने क्या सत्य कहा है :—

"उपज्यो दंडी, छिपे पाखंडी, डरे घमण्डी, धूरत, अन्याई।
विद्या पाकर, निकला दिवाकर, तिमर हटाकर, ज्योति दिखाई।
आये हैं स्वामी दयानन्द नामी, गर्ज्ज सभा में सिंह की न्याईं।
सत का मण्डन, दम्भ का खण्डन कर पांव तलक की धूलि उड़ाई।
डरे हैं प्रमादी, अनीश्वरवादी पौराणिक दीन राम दुहाई।
बड़े बड़े नास्तिक होकर आस्तिक हाथ जोड़ आये शरणाई।
वेदों के बल से युक्ति प्रबल से कलयुग की काया पलटाई।
तप अखण्ड से, तेज प्रचण्ड से, रिपुअन की छतिया धड़काई।
योगीश्वर महर्षि आत्मदर्शन दिग्विजय जिनके हिस्से आई।

इस कुम्भ पर स्वामी महानन्द सरस्वती स्वामी जी से मिले और उनसे शंका समाधान करके उनके अनुयायी बन गये। लाखों आर्यों ने इस समय पर स्वामी जी के उपदेशों को सुना और बहुतों ने उस महा पुरुष को गालियें दीं, चाहे बहुतसों का उसकी सचाई और उसके उपदेश की सचाई का भी निश्चय हो गया। गृहस्थी जो जाते वह कुछ भेंट ले जाते थे, जिसको सायं काल स्वामी जी उपस्थितों और दीनों में बांट देते थे।

प्रायः स्वामी जी ने हिन्दु धर्म की ऐसी लीला इससे पहले कभी नहीं देखी थी। इस समय जब आर्य सन्तान के असंख्य पुरुषों को देखा, इनको बड़े बड़े पण्डितों, संन्यासियों और वैरागियों की दशा देखने का अवसर मिला, उनके राजा महाराजाओं को भी मिथ्यात्व में ग्रसित पाया। धर्म की इस भयानक मूर्त्ति और वंश की दुर्दशा देखकर उदास हो गये। जब तक मेला रहा तब तक मनुष्यों की बड़ी भीड़ थी जब मेला हो चुका और मनुष्य अपने अपने घरों को जाने लगे तो

विचार का समय आया। धर्म की इस मन्द अवस्था को देख और प्राचीन समय का ध्यान कर बड़ी चिन्ता हुई। एक ओर धर्म और वंश की यह दशा और उधर अपनी अकेली ध्वनि दोनों में कुछ तुलना न देख पड़ी। माता, पिता, भाई, बहिन घर घाट और धन सम्पदा को त्याग, बाल्य अवस्था में ही विद्या प्राप्ति के लिये जिसने वैराग्य स्वीकार किया था, उसको इस समय बड़ा खेद हुआ। सोचा कि क्या मुझ में इस पौराणिक आडम्बर का सामना करने की सामर्थ्य है या नहीं और वंश की डांवाडोल भंवर में पड़ी नौका को सहारा दे सकता हूं या नहीं। भीतर से आवाज आई कि अभी तप की और आवश्यकता है, तप करो और जो विद्या पढ़ी है उसको विचारो। भीतर की इस आवाज को सुनकर एक दिन उपदेश के पीछे "श्री ओ३म् वै पूर्णं स्वाहा" करके सब कुछ त्याग दिया। जो असबाब था, पलंग, बतन, पिताम्बरी, धोतियें, दोशाले, रेशमी वस्त्र और ऊनी कपड़े तथा नकदी सब कुछ बांट दिया। महाभाष्य का पुस्तक १५) रु० और एक थान गुरु जी के लिये एक मनुष्य को दे दिये कि वह गुरु जी को पहुंचा दे। लंगोटा कस नग्न हो, भस्म रमा, अवधूत बन, डेरा उखाड़, गंगा तट का रास्ता लिया।

पहिले ऋषिकेश को गये फिर वहां से दक्षिण को हो लिये। दिन भर रेत में पड़े रहते थे, जो कुछ खाने को मिल जाता वह खा लेते। एक बार ३ दिन के भूखे को ३ बेंगन मिले, वही खाकर पड़े रहे रात को किसी कुटिया या किसी छाया में सो रहते थे केवल ईश्वर के ध्यान में मग्न थे।

इस प्रकार के जीवन आनन्द को वही मनुष्य अनुभव कर सकता है, जिसने योगबल से अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो और परमात्मा के ध्यान आनन्द को पा लिया हो। इस आनन्द में केवल एक ही पीड़ा की रेखा थी, जो सनातन वेदों के धर्म और जाति की अधोगति चिन्तन करने से खड़ी हो जाती थी। आहा कैसा ही विचित्र दृश्य है! एक दण्डी संन्यासी नग्न हो, भस्म रमाये, गंगा की बालू में बैठा

हुआ आर्य सन्तान की धार्मिक अधोगति पर चिन्ता कर रहा है और परमात्मा से इस अधोगति को दूर करने के लिये, बल की प्राप्ति की प्रार्थना करता हुआ तप से अपने आपको धार्मिक युद्ध के लिये तैयार कर रहा है। हिन्दुस्थान की तारीख में यह दृश्य अनुपम है।

गंगा तट पर उपदेश

वैशाख सं० १६२४ (मई स० ६७) से कार्तिक सं० १६२६ अर्थात् अक्तूबर स० १८६७ ई० तक

स्वामी दयानन्द सरस्वती अढ़ाई साल गंगा के किनारे किनारे फिरते और उपदेश करते रहे। इस अवसर में प्रायः केवल संस्कृत बोलते थे, नग्न रहते थे, चाहे गर्मी हो चाहे सर्दी, भस्म रमाते थे कौपीन बांधे रहते थे, लोगों को सन्ध्या गायत्री का उपदेश करते थे, कहीं कहीं मनुस्मृति और उपनिषद आदि भी पढ़ाते थे। यद्यपि कभी बन्धन में नहीं पड़े, जब चाहते थे, तब चले जाते थे, न किसी को जाने की और न आने की खबर देते थे। तथापि जहां जाते प्रायः यज्ञ कराते और द्विजों को यज्ञोपवीत धारण कराते थे। गंगा के तट पर कई जातियों के सैंकड़ों, मनुष्यों ने उनके उपदेश से यज्ञोपवीत धारण किये और गायत्री व संध्या सीखी। इस अढ़ाई वर्ष के समय में उपदेश करते-करते कानपुर तक गये, फिर वहां से वापस हुए और गंगा के तट पर उन्हीं स्थानों पर ठहरे और उपदेश करते हुए करनवास आ गये। इस समय वह निम्नलिखित स्थानों पर कई बार ठहरे और उपदेश करते रहे। करणवास, रामघाट, सोरम, पटयाली कंपला, अनूपशहर, वेलों, छलेसर, वघडिया, कासगंज, ककोड़ा शाहवाजपुर, कादरगंज, कायमगंज, नरोली, फर्रुखाबाद, कनौज, तनोज, भटोर, मदारपुर और कानपुर आदि २।

इन दिनों में स्वामी जी ८ गप्पों का खण्डन और ८ सत्य नियमों का मण्डन करते थे। जिन बुराइयों का वह खंडन करते थे उनका

नाम इन्होंने गप्पें रक्खा हुआ था। इनका वर्णन कानपुर के विज्ञापन में दिया गया है।

इस समय में दो बड़े बड़े यज्ञ हुए जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न-लिखित है। एक सं० २४ को करणवास में हुआ, यहां ४० ब्राह्मण कई स्थानों से विद्वान् गायत्री जप के लिये बुलाये गये थे, यह जप माघ शुक्ल पक्ष में समाप्त हुआ, इसके अनन्तर स्वामी जी की कुटिया पर कुंड बना, अनूपशहर के कर्म कांडी वेद पाठी ब्राह्मणों को ब्रह्मा होता और ऋत्वजादि निर्माण कर यज्ञ का आरम्भ किया गया और इसी यज्ञ में बहुत से ठाकुरों और कई ब्राह्मणों को गायत्री का उपदेश करके उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया, यज्ञ की समाप्ति पर यज्ञ शेष वांटा गया।

२य, बड़ा यज्ञ फर्रुखाबाद चैत्र सं० १९२६ या मार्च सं० १८६९ में हुआ जिसमें ला० जगन्नाथ जी रईस फर्रुखबादी का यज्ञोपवीत कराया गया। इस यज्ञ में पहले प्रायश्चित की रीति पर ११ पण्डित नियत किये गये जो प्रातःकाल पहले १००० गायत्री जप आप करते, फिर यजमान से १००० जप कराते थे। तदनन्तर हवन होता था, इसी प्रकार ११ दिन के पीछे यज्ञोपवीत धारण करने वालों ने शास्त्रा-नुसार उपवास व्रत धारण किये, अन्तिम दिन यज्ञोपवीत धारण कराया गया और गायत्री उपदेश भी दिया गया।

इस ढाई वर्ष में छोटे छोटे शास्त्रार्थ तो बहुतेरे हुए क्योंकि स्वामी जी जहां जाते बेधड़क मूर्त्ति पूजन आदि का खण्डन करते थे और ब्राह्मण गुस्सा खाकर सामने आते थे, परन्तु सामना नहीं कर सकते थे, मूर्त्ति पूजक कई स्थानों से विद्वानों को बुलाकर लाते और स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की प्रेरणा करते थे, इनके सिवा कई स्थानों में मौलवियों और ईसाइयों से भी वाद होता था। इन शास्त्रार्थों में ५ बड़े प्रसिद्ध हैं, जिनका संक्षिप्त वर्णन यह है।

पहिला शास्त्रार्थ पोह सं० २४ को हीरा वल्लभ पर्वती शास्त्री जी से करणवास में हुआ। पंडितजी सभा में बालमुकन्द सालिग्राम आदि

की मूर्त्तियें साथ लाये थे और कहते थे कि देखो इसके हाथ से पूजन करायेंगे परन्तु किसी मूर्त्ति ने सहायता न की और ६ दिन निरन्तर शास्त्रार्थ कर पंडित जी ने धर्मानुसार स्वीकार किया कि स्वामी जी सत्य कहते हैं। बड़ी नम्रता से स्वामी जी को प्रणाम कर सब मूर्त्तियों को गंगा में जल प्रवाह करा दिया। इस शास्त्रार्थ की बहुत धूम मची। कई स्थानों में मूर्त्तियें उठा उठाकर लोगों ने गंगा में बहा दीं। कई मन्दिर खाली हो गये। सैंकड़ों ब्राह्मण बेरोजगार होकर स्वामी जी के रुधिर के प्यासे हो, इनके चारों ओर घूमने लगे। सार यह है कि गंगा के किनारे सारी हिन्दू बस्ती में कोलाहल मच गया। ठाकुर मुकुन्दसिंह चौहान रईस छलेसर ने अपने परगने के समस्त मंदिरों को मूर्त्तियों से शून्य करा दिया।

२य, शास्त्रार्थ सं० २५ को सोरन स्थान पर अङ्गदराम शास्त्री से हुआ, वह बड़े विद्वान् और वैयाकरणी उस समय के पंडितों में शिरोमणि पंडित थे। लोगों को इनकी युक्ति बल और विद्या पर बड़ा भरोसा था। मूर्त्ति पूजक उक्त पंडित जी को अपना वकील बनाकर लाये, फल यह हुआ कि थोड़ी सी बात चीत में शास्त्री जी हार गये और निहायत दिलेरी से अपनी मूर्त्तियों का उठा गंगा जी में बहा दिया और ब्राह्मणों को निश्चय हो गया कि दुनियां हमारे हाथ से निकलने लगी है, हजारों वर्ष की मर्यादा एक मनुष्य की कृपा से क्षणमात्र में उठती जाती है। परन्तु विद्या के सम्मुख अविद्यांधकार नष्ट हो ही जाता है।

३य, शास्त्रार्थ मई सन् १८६९ ई० को फर्रुखाबाद में हुआ। स्वामी जी से वादी श्री गोपाल शास्त्री थे, जो मूर्त्ति पूजन को शास्त्रोक्त साबित करने का लक्ष्य रखते थे। परन्तु "कहां राजा भोज और कहां गांगा तेली" गोपाल जी कुछकाल भी स्वामी जी के सम्मुख न खड़े रह सके और अपना सा मुंह लिये रह गये, जब कुछ न बन पड़ा तो काशी जी को दौड़े और वहां से व्यवस्था लिखा लाये। व्यवस्था लाकर फिर शास्त्रार्थ का डंका बजाने लगे। नृसिंह चतुर्दशी, मंगलवार

१६२६ को गंगा के किनारे स्वामी जी के समीप टोका घाट के मैदान में बांस के झण्डे पर एक ध्वजा धर्मध्वजा के नाम से अंकित कर गाड़ दी और मेला रचा दिया। स्वामी जी को आदमी पर आदमी भेजने लगा, कि आओ और शास्त्रार्थ कीजिये, स्वामी जी ने कहला भेजा कि जिसको पुलिङ्ग स्त्री लिङ्ग का ज्ञान नहीं उससे शास्त्रार्थ क्या करें एक मनुष्य व्यवस्था ले आया उसको पढ़ स्वामी जी के मुख से स्वयमेव निकल पड़ा कि देखो, काशी के पण्डितों की पडित ई।"

श्री गोपाल जी ने अद्भुत आडम्बर रचा। एक और बांस रेत में गाड़ कर लोगों से कहा कि इस पर जल चढ़ाओ, यह सुनते ही उपस्थित मण्डली ने चल चढ़ाना आरम्भ किया। किसी ने यह न पूछा कि यह मूर्त्ति नहीं, देवता नहीं, वृक्ष नहीं, जल से क्या लाभ होगा ? स्वामी जी विश्रान्त पर खड़े लीला देख रहे थे। और हिन्दुओं की बुद्धि पर हंस रहे थे। बहुतेरा लोगों ने श्री गोपाल जी से कहा कि चलो स्वामी जी से ऊपर चलकर शास्त्रार्थ करें इस लीला से क्या लाभ है ? परन्तु शास्त्रार्थ की किसको सामर्थ्य थी। यह कहता कि यदि मैं उनके स्थान पर जाऊंगा तो हार जाऊंगा। यदि स्वामीजी मेरे पास आवेंगे तो पराजित हो जावेंगे। अन्त को उस दिन कोई शास्त्रार्थ न हुआ और स्वामी जी ने काशी जी की व्यवस्था का अपने स्थान पर ही खण्डन किया, जिसको सुन लोग अति प्रसन्न हुए।

चतुर्थ शास्त्रार्थ भी फर्रुखाबाद में ही पण्डित हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण कानपुर निवासी से हुआ। इसका यह हाल है। जब पण्डित श्री गोपाल से लोगों का निश्चय न हुआ, तो मूर्त्ति पूजकों ने उक्त पण्डित जी को जो बड़े प्रसिद्ध पण्डित थे शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। जब यह फर्रुखाबाद पधारे तो इनके विश्वासियों ने यह प्रसिद्ध किया कि यदि कोई शर्त बांधे तो हम हलधर जी से शास्त्रार्थ स्वामी जी का कराते हैं। इस बात को सुनते ही लाला जगन्नाथ प्रसाद फर्रुखाबादी रईस ने जिनके स्थान पर पण्डित जी ठहरे हुए थे। २५००) रुपये अपने नौकर के हाथ उनके पास भेज दिया, और साथ ही यह कह

भेजा कि यह हमारी ओर से समझना, और २५००) अपनी ओरसे डाल शास्त्रार्थ कराया जावे, यदि स्वामी जी हार गये तो यह ५०००) रु० पण्डित जी का धन हुआ नहीं तो हम ले लेंगे। इतनी दिलेरी इधर किसको, कहला भेजा कि हम पण्डित जी को वहीं (जहां स्वामी जी उतरे हुए हैं) ले आवेंगे। सो ज्येष्ठ शुक्ला दशमी शनिवार संवत् १९२६ रात्रि के ८ बजे को पण्डित जी अपने अनुयाइयों, साहूकारों और पण्डितों को संग ले स्वामी जी के स्थान पर आ गये। पहले मूर्त्ति पूजन पर बात चीत शुरू हुई। परन्तु तत्काल चर्चा मद्यपान की होने लगी, क्योंकि यह पण्डित तान्त्रिक था। और मांस मदिरा ग्रहण कर लेता था। पण्डित ने मदिरा पान के विषय में प्रमाण दिये और कहा कि सौत्रामण्य यज्ञ में मदिरा पीनी चाहिये। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि सूर शब्द से रुचिफल वालो से तात्पर्य है, शराब से नहीं। और अच्छी प्रकार से शराब का खण्डन किया। फिर हलधर ने स्वामी जी से संन्यासी के लक्षण पूछे। स्वामी जी ने इसके प्रश्न का उत्तर दिया। और उलट कर ब्राह्मण के लक्षण पूछे, उत्तर में पंडित हलधर अशुद्ध संस्कृत बोलने लगा। जिस पर स्वामी जी ने उसको संस्कृत में कहा कि भाषा में बात चीत करो और प्रकरण न छोड़ो। हलधर ने कहा, कहिये प्रकरण शब्द किस प्रकार से सिद्ध होता है, स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कृ धातु से कट् प्रत्यय आने से सिद्ध होता है। हलधर ने पूछा कि धातु समर्थ होती हैं या असमर्थ। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि असमर्थ होती है और सूत्र में समर्थ पदवी दी है। हलधर ने फिर प्रकरण छोड़ दिया और कहा कि कहिये समर्थ किसको कहते हैं और असमर्थ किसको। स्वामी जी ने कहा अपेक्षा करने वाला असमर्थ होता है और महाभाष्य का प्रमाण दिया। हलधर बोल उठा कि यह वाक्य महाभाष्य में नहीं है किन्तु आपका कपोल-कल्पित हैं, अन्त को स्वामी जी ने महाभाष्य निकाल कर दिखला दिया तो पण्डितजी से इस कथन के बिना कुछ न बन पड़ा कि भाष्यकार भी पण्डित थे और मैं भी पण्डित हूं। मुझमें और उसमें क्या भेद है ?

यद्यपि पण्डित जी का यह उत्तर बालकों के कथन का था, तो भी स्वामी जी ने इसको और भी लज्जातुर करने के लिये पूछा कि कहिये कलम संज्ञा किसकी है, हलधर कुछ उत्तर न दे सका, तो स्वामी जी ने इसको सूत्र प्रमाण देकर बतलाया कि कलम संज्ञा कर्म की है। सो इसी प्रकार व्याकरण पर शास्त्रार्थ होते २ यह नियत हुआ कि समर्थ पद विधि है या सूत्र। यदि सब जगह लगे तो हलधर जी पराजित हो गये और यदि वह सूत्र एक देशी हो तो स्वामी जी हार गये। इस नियम के हो जाने पर लोग अपने २ घरों को चले गये, रास्ते में पण्डितों ने लाला जगन्नाथ प्रसाद से कहा कि आज के शास्त्रार्थ में स्वामी जी हठ करते रहे। वरं उक्त सूत्र सर्वव्यापी नहीं है। लाला जगन्नाथ प्रसाद को स्वामी जी की विद्या की अभिज्ञता नहीं थी, इसलिये प्रातःकाल ही उठकर वह स्वामीजी के पास आये और पण्डितों का विचार कहकर प्रार्थना की कि आप शास्त्रार्थ न करें, क्योंकि हार से अप्रतिष्ठा न हो, स्वामी जी को यह सुनते ही बड़ा क्रोध आया और कहा, कि "यदि तू उसको न लावेगा तो गौ घाती होगा, और यदि वह न आवे तो उसको हत्या का पाप हो।" अन्त को दूसरे दिन सायंकाल ८ बजे सब पण्डित इकट्ठे हुए और शास्त्रार्थ होने लगा। स्वामी जी ने महाभाष्य खोल कर सिद्ध कर दिया, कि उक्त सूत्र सर्वत्र व्यापक है। यह देखते ही हलधर के प्राण निकले और पण्डितों ने स्वामी की जय मानी। दीन हलधर अपना सा मुख लेकर वापिस चला आया।

५म, शास्त्रार्थ स्वामी जी का इसी पण्डित हलधर से कानपुर में ३१ जुलाई १८७२ ई० शनिवार को आरम्भ हुआ। कानपुर में स्वामी जी ने संस्कृत में विज्ञापन छपवाया। जिसका अनुवाद यह है--

कल्याण हो, १ ऋग् २ यजुः ३ साम और ४ अथर्व। इन चारों वेदों में कर्मोपासना है, ज्ञान काण्ड का निश्चय है, सन्ध्योपासना से अश्व मेध पर्यन्त कर्म काण्ड जानना चाहिये, यम से समाधि तक उपासना काण्ड जानें। निष्कर्म से लेकर परब्रह्म के साक्षात्कार तक ज्ञान काण्ड समझें।

५ पंचम आयुर्वेद है, इसमें चिकित्सा शास्त्र है, जिसके दो ग्रन्थ सत्य जानो। ६ छठा धनुर्वेद है, इसमें शस्त्र शास्त्र विद्या है। ७ सप्तम गन्धर्व वेद हैं इसमें राग विद्या है। ८ अष्टम अर्थ वेद हैं, इसमें कारीगरी शिल्प विद्या कला कौशल और इमारत बनाने की विद्या है। इन चारों वेदों के क्रमानुसार ४ उपवेद हैं ९ नवम शिक्षा जिसमें, वर्णोच्चारण की प्रथा है। १० दशम कल्प इसमें वेद मन्त्रों के अनुष्ठान की विधि है। ११ एकादशवां व्याकरण है इसमें शब्दार्थ और उनके परस्पर सम्बन्ध का निश्चय है, उसके माननीय पुस्तक अष्टाध्यायी और महाभाष्य दो हैं, दोनों को सत्य मानना चाहिये। १२ बारहवां निरुक्त इसमें वेद मन्त्रों की निरुक्ति है। १३ त्रयोदशवां छन्द इसमें गायत्री आदि छन्दों के लक्षण हैं। १४ चौदहवां ज्योतिष इसमें भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान का ज्ञान है। इसमें केवल भृगुसंहिता एक ही ग्रन्थ को मानना चाहिये यह छः वेदांग हैं, यही १४ विद्या हैं। १५ पन्द्रहवां उपनिषदें, अर्थात् ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरेय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर और कैवल्य यह १२ उपनिषदें हैं, इनमें ब्रह्म विद्या है। १६ सोलहवां शारीरिक सूत्र इसमें उपनिषदों की व्याख्या है। १७ सतरहवां कात्यायनादि सूत्र इनमें जन्म से लेकर मृत्यु के दाह संस्कार तक की व्याख्या है। १८ अठारहवां याग भाष्य इसमें उपासना और ज्ञान के साधन हैं। १९ उन्नीसवां, वाक् विवाक, इस एक ग्रन्थ में वेदों के अनुकूल युक्ति करने की विधि है। २० बीसवां मनुस्मृति इसमें वर्णाश्रम धर्मों के और वर्ण संकरों के व्याख्यान हैं। २१ इक्कीसवां महाभारत इसमें अच्छे लोगों और दुष्ट जनों के लक्षण हैं।

इन २१ शास्त्रों को सत्य जानों परन्तु इन २१ शास्त्रों में भी व्याकरण, वेद और शिष्टाचार के विरुद्ध जो वचन हों, वह इनमें भी असत्य हैं, इन २१ शास्त्रों से जो भिन्न ग्रन्थ हैं उन सबको गप्पाष्टक जानों। मिथ्या कथन को गप्प कहते हैं और फिर जिसमें आठ गप्प हों उसको बुद्धिमान् गप्पाष्टक कहते हैं। और जिसमें आठ सत्य हों

उसको सत्याष्टक कहते हैं। अब आठ गप्प कौन सो हैं।

१—मनुष्य कृत ब्रह्मवैवर्त आदि जो पौराणिक ग्रन्थ हैं यह पहली गप्प हैं।

२—पाषाण पूजन देव भावना से यह २य, गप्प है।

३—शैव, शाक्तिक, गाणपत्य, वैष्णव आदि सम्प्रदाय ३य, गप्प है।

४—तन्त्र ग्रन्थों से प्रतिपादित वाम मार्ग ४र्थ गप्प है।

५—विजयादि मादक द्रव्य सेवन, ५म, गप्प है।

६—पर स्त्री गमन, ६ठी, गप्प

७—चोरी करना यह ७वीं गप्प है।

८—छल, अभिमान, मिथ्या भाषण ८वीं गप्प है। इन आठों गप्पों का छोड़ देना चाहिये।

अब आठ सत्यों का वर्णन किया जाता है।

१—ईश्वर और ऋषि प्रणीत ऋग्वेदादि २१ शास्त्र पहला सत्य है।

२—ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरु सेवा और निज धर्मानुसार गुरु सेवा २य, सत्य है।

३—वेदोक्त वर्णाश्रमानुकूल निजधर्म, सन्ध्यावन्दन, अग्निहोत्र का अनुष्ठान ३य सत्य है।

४—शास्त्राज्ञानुसार अपनी स्त्री से सम्बन्ध करना और पंच महा-यज्ञविधि का अनुष्ठान, ऋतु काल में निज स्त्री सम्भोग और श्रुति स्मृति की आज्ञानुसार आचार व्यवहार रखना ४र्थ सत्य है।

५—इसमें तपश्चरण, यमादि से लेकर समाधि तक उपासना और सत्संग पूर्वक वानप्रस्थाश्रम को ग्रहण करना पाचवां सत्य हैं।

६—विचार, विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास और संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फलों की इच्छा न करना छठा सत्य है।

७—ज्ञान और विज्ञान से समस्त अनर्थ से उत्पन्न होने वाले मृत्यु, जन्म, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संग और द्वेष के त्यागने का अनुष्ठान ७म, सत्य है।

८–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, सत, रज, तम सब क्लेशों की निवृत्त हो, पंच महाभूतों से अतीत होकर मोक्ष स्वरूप और आनन्द को प्राप्त होना आठवां सत्य है।

यह आठों सत्य ग्रहण करने चाहियें, केवल दयानन्द सरस्वती ने यह पत्र रचा यह भी सज्जनों को जानना चाहिये। (शोलातूर प्रेस में छपा)

यह शास्त्रार्थ भैंरों घाट के नीचे बीस पच्चीस हजार मनुष्यों की उपस्थिति में हुआ, शहर के समस्त प्रतिष्ठित धनी अधिकारी और वकील आदि आये हुए थे। और डब्ल्यू थेरा साहब असिस्टैण्ट कलैक्टर बहादुर कानपुर भी पधारे थे, चुनांचि वही मध्यस्थ नियत हुए। एक ओर अकेले स्वामी जी और उधर लक्ष्मण शास्त्री भट्टूर निवासी, और २य, हलधर ओझा जी थे। सो निम्नलिखित वार्तालाप स्वामी जी और शास्त्री महाशयों में परस्पर हुआ।

१म, सवाल ओझा हलधर जी ने यह किया कि आपने जो विज्ञापन दिया है उसमें व्याकरण की भूलें हैं।

स्वामी—यह प्रश्न पाठशाला के विद्यार्थियों के हैं यह पाठशालाओं में होने चाहियें, आज विषय छेड़ो जिसके लिये सहस्रों मनुष्य एकत्र हुए हैं। व्याकरण के विषय में कल मेरे पास आना मैं समझा दूंगा।

तब ओझा जी ने प्रश्न किया कि आप महाभारत को मानते हैं, स्वामी जी ने कहा हां हम मानते हैं।

ओझा जी ने एक श्लोक महाभारत का पढ़ा जिसका आशय यह था कि एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना सन्मुख रख धनुर्विद्या सीखी।

स्वामी जी, मैं तो यह कहता हूं, कि कहीं प्रतिमा पूजन की आज्ञा बतलायें, इसमें तो आज्ञा नहीं पाई जाती, बरंच यहां यह लिखा है, कि एक भील ने ऐसा किया जैसा कि अज्ञानी मनुष्य आज तक किया करते हैं। वह कोई ऋषि मुनि नहीं था और न ही किसी ने इसको उपदेश

दिया, और यदि यह कहें कि इसको ऐसा करने से धनुर्विद्या आ गई, तो उसका कारण द्रोणाचार्य की मूर्ति नहीं थी, वरंच उसके अभ्यास का फल था, जैसा कि अंग्रेज लोग चांदमारी द्वारा सीखते हैं, और वह कोई मूर्ति नहीं बनाते। फिर इस पर ओझा जी चुप रहे, और फिर दूसरा प्रश्न यह किया कि वेद में प्रतिमा पूजन की आज्ञा नहीं है, तो निषेध कहां है। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि किसी पुरुष ने सेवक को आज्ञा दी कि तू पश्चिम को चला जा, तो अपने आप ही तीनों शेष दिशाओं का निषेध हो गया। अब उसका यह पूछना उत्तर दक्षिण पूर्व को न जाऊं व्यर्थ है। सो जो वेद ने उचित समझा प्रतिपादन किया शेष निषेध है।

इसके अनन्तर कलैक्टर साहिब ने पूछा कि आप किस को मानते हैं स्वामी जी ने उत्तर दिया कि ईश्वर को, यह सुन उक्त साहिब अपनी छड़ी टोपी उठा चल दिये और "कहा कि ठीक बात है सलाम" सो मूर्ति पूजकों ने समझा कि हमारी जय हो गई, गंगा जी की जय का जयकारा बुला कोलाहल मचा दिया। और हलधर जी को गाड़ी में बैठाकर ले गये, और "शोलातूर" में भी छपवा दिया कि स्वामी जी पंडितों से हार गये, मूर्ति पूजन शास्त्र विरुद्ध सिद्ध नहीं कर सके। चाहे मूर्ति पूजक इस मिथ्या विजय से प्रसन्न होते फिरते थे, परन्तु सत्य यह था कि लोगों के दिल स्वामी जी के उपदेशों से मूर्ति पूजन की ओर से हल चुके थे और इसी लिये इतनी विजय घोषणा और विज्ञापनों के प्रकाशित होने पर भी बहुत से मनुष्य मूर्तियों को गंगा में प्रवाहने को चले जाते थे। स्मरण रहे कि यह परगना मूर्ति पूजन का केन्द्र है और यहां हर एक गृहस्थी के घर मूर्तियें विद्यमान् हैं। मन्दिरों, शिवालों, ठाकुरद्वारों की तो कुछ गिनती ही नहीं। इस वेग से मूर्तियें गंगा में प्रवाही गईं कि ओझा शास्त्री जी को निम्न-लिखित विज्ञापन देना पड़ा।

विज्ञापन (उर्दू अक्षरों में)

जो दयानन्द सरस्वती के मतानुसार बहुत ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य अपना कुल धर्म छोड़कर देव मूर्तियें गंगा में वहा देते हैं, यह बात अनुचित है, इसलिये यह विज्ञापन दिया जाता है कि जो लोग उनके मत को स्वीकार करें, उनको चाहिये कि वे कृपा पूर्वक उन मूर्तियों को महाराज गुरु प्रसाद शुक्ल, या महराज प्रयाग नारायण तिवारी जी के मन्दिर में मूर्तियें पहुंचा दिया करें, यदि उनको पहुंचाने का अवकाश न मिले, तो हमें सूचितकर दें हम आप उठा लिया करेंगे। और उनके बहाने में जो पाप है वह संस्कृत में लिखा है।

विज्ञापक-ओझा हलधर

संन्यासी जी की संगति की कृपा से हिन्दुओं के मूर्तियों को नदी में बहाने और उसी की पुष्टि में शोलातूर कानपुर २ अगस्त १८६९ ई० में निम्न लिखित लेख एडीटोरयल में लिखता है "संन्यासी जी की संगति में कई हिन्दू मूर्तियों को नदियों में परवाहने लगे, ओझा जी ने विज्ञापन दिया है कि वेद शास्त्र में ऐसा करना महा पाप कहा है। जिसे नदी में मूर्तियें बहाने की इच्छा हो वह हमारे पास भेज दें, नदी में वहा कर पाप न लें" जब ओझा जी के सहायकों ने मिथ्या ही समाचार पत्रों में प्रकाशित करा दिया कि ओझा जी जीत गये और स्वामी जी हार गये तो स्वामी जी के पक्षियों को यह बहुत बुरा जान पड़ा तो उन्होंने मिस्टर थैरा असिस्टैंट कलेक्टर से निम्न लिखित प्रशंसा पत्र लेकर विज्ञापन छपवा दिया जिसमें असली बातचीत को प्रकट करके दरसाया गया कि पौराणिक पण्डितों से मूर्तिपूजा वेदानुकूल सिद्ध नहीं हुई।

अंग्रेजी में चिट्ठी

Gentlemen—At the time in question I decided in favour of Swami Dayanand Saraswati Faqir and I believe his arguments are in accordance with the Vedas. I think he won the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

yours obediently,

Cawnpur. (Sd) W. Thaira..

अनुवाद

शास्त्रार्थ के समय मैंने फैसला किया और निश्चय किया कि १७ अगस्त १८६९ को दयानन्द सरस्वती साधु की युक्ति वेदानुकूल थी, मैं जानता हूं कि उन्होंने विजय पाई। यदि युक्तियें चाहो तो मैं अपने फैसले की युक्तियें थोड़े दिनों में दे सकता हूं।

हस्ताक्षर साहिब असिस्टेंट कलेक्टर बहादुर कानपुर

यह स्मरण रहे कि यह साहब संस्कृत जानते थे, और संस्कृत के अद्वितीय विद्वान् समझे जाते थे। इस शास्त्रार्थ का यह फल हुआ कि गंगा के किनारे स्वामी जी की विद्वत्ता की धूम मच गई। और कोई भी प्रसिद्ध पंडित न रहा जो इनसे शास्त्रार्थ करने का साहस करता। जब युक्ति और शास्त्र से कुछ वश न चलता था तो यह धूर्त लोग उनके प्राण लेने के पीछे पड़ जाते थे। और सदैव इसी विचार में रहते थे कि किसी प्रकार इनकी समाप्ति की जावे। जैसा कि इस अढ़ाई वर्षों में पांच छः वार इन पर आक्रमण किया गया परन्तु निष्फल रहा।

(१) पहिली वार करणवास में रंगाचार्य के शिष्य राव करणसिंह बरौली के रईस जब गंगा स्नान को आये, तो स्वामी जी के दर्शनार्थ पधारे, तब इनके मस्तिक पर चक्रांकित तिलक लगा हुआ था। स्वामी जी ने शंका की, तो राव साहिब को बड़ा क्रोध आया, और गाली देने लगे। एक हाथ में खड्ग पकड़ी हुई थी, जिसको यह आशा थी कि यदि अधिक बोलेंगे तो अभी सिर काट दूंगा, स्वामी जी ने कहा "कि शास्त्रार्थ करना स्वीकार हो तो अपने गुरु रंगाचार्य को बुला लें और यदि शस्त्रार्थ करना है तो धौलपुर व जयपुर के राजा से लड़ो" यह भी जन श्रुति है, कि स्वामी जी ने कहा कि "पहिले तो क्षत्रिय शस्त्र निकाले नहीं यदि निकालकर अपना काम पूरा न करे, तो क्षत्रिय नहीं" अन्त को और मनुष्य जो वहां बैठे थे उन्होंने राव जी को उठा दिया और विवाद वहीं शान्त हो गया।

इन दिनों में शीत अधिक था, और स्वामी जी प्रायः नग्न रहते थे, वहां के ठाकुरों ने एक मनुष्य को रात्रि में कंबल उढ़ाने को नियत

कर दिया । कुछ दिनों के अनन्तर राव करणसिंह ने तीन मनुष्यों को खड्ग देकर आधी रात्रि को भेजा, कि स्वामी जी का सिर काट लावें। यह मनुष्य दो वार जाकर लौट आए। तीसरी वार जब कुटिया तक पहुंचे और स्वामी जी का शब्द सुना तो साहस न पड़ा, और पीछे लौट आये, लोगों ने इन दोनों कर्तव्यों की पुलीस में खबर देने की आज्ञा मांगी, परन्तु उन्होंने आज्ञा न दी। राजघाट पर कुछ पञ्जाबी रहते थे, जब उनको खबर हुई तो वे शस्त्र लेकर आ गये। परन्तु स्वामी जी ने किसी प्रकार का फसाद न होने दिया। जब उनसे यह कहा गया कि आप इस कुटिया को छोड़ किसी दूसरे स्थान में चल रहें, तो अतीव वीरता से उत्तर दिया कि मुझे कोई नहीं मार सकता। परमात्मा मेरे रक्षक हैं इसके सिवा मुझमें इतना बल है कि जो कोई मुझपर आक्रमण करेगा उसको उसी के शस्त्र से निरुत्तर कर दूंगा।

(२) २य वृतान्त अनूपशहर का है, यहां एक ब्राह्मण ने पान में उनको विष दी, स्वामी जी को पान खाते ही सन्देह हो गया और तत्काल अन्दर जाकर वमन कर दिया। सैयद मुहम्मद अनूपशहर के तहसीलदार स्वामी जी को अच्छा समझते थे और उनके पास प्रायः आया जाया करते थे, उन्होंने इस ब्राह्मण को किसी बहाने से कैद कर दिया, और फिर घमण्ड में स्वामीजी को यही माजरा सुनाने लगे। स्वामी जी ने इनसे बोलना बन्द कर दिया। और यह कहा कि मैं लोगों को कैद कराने नहीं आया वरं कैद से छुड़ाने आया हूं। यदि मनुष्य अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते तो आवश्यक नहीं कि हम भी अपनी नेकी नष्ट कर दें।

(३) तीसरा अवसर कानपुर के समीप का है, जहां विरागियों ने भूल से एक स्वामी विरजानन्द को स्वामी दयानन्द समझ गंगा में डुबोने का यत्न किया।

(४) चतुर्थ अवसर सूरण का है, जहां सोते हुए एक साधु को दयानन्द समझ कर उसकी चारपाई गंगा में बहा दी गई। जब वह कुरलाया तो लोगों ने उसका शब्द पहिचान कर उसे बाहर निकाल लिया।

(५) पांचवीं घटना फरुखाबाद की है, जहां उनको मारने का यत्न किया गया, परन्तु कृतकार्यता न हुई। फरुखाबाद में लाला जगन्नाथप्रसाद ने स्वामी जी से प्रार्थना की, कि वह गंगा से उठ कर किसी सुरक्षित स्थान में चल रहें, परन्तु स्वामी जी ने कहा कि यदि यहां मेरी रक्षा तुम करोगे तो और स्थानों में कौन करेगा, वह परमात्मा सर्वव्यापक मेरा रक्षक है, मुझे किसी का भय नहीं, मैं अकेला बालू में गंगा तटपर घूमा करता हूं, ऐसे हमले मुझ पर कई स्थान नें हुए हैं।

इस अढ़ाई साल में स्वामी जी ने फरुखाबाद में एक पाठशाला स्थापित को जिसका वर्णन यह है कि जब स्वामी जी फरुखाबाद में गये, तो मन्नीलाल वैश्य एक शिवाला बनवा रहे थे, स्वामी जी के उपदेश से उन्होंने मूर्ति पूजा से घृणा कर मूर्त्तियोंके स्थानमें वेद स्थापित किये और यहीं एक वैदिक पाठशाला नियत की, यह शाला सात वर्ष तक रही और कई विद्यार्थी वहां से पढ़ कर विद्वान् हुए। पश्चिमोत्तर देश के प्रसिद्ध पण्डित भीमसेन, पण्डित देवदत्त और पण्डित ज्वालादत्त इसी पाठशाला के विद्यार्थी हैं।

विद्यार्थियों के भोजन आदि का खर्च पहिले पहल बाबू दुर्गाप्रसाद जी और पण्डित का वेतन ला० मुनिलाल जी देते रहे। पीछे लाला जगन्नाथ जी और ला० निर्भयराम जी भी पाठशाला का खर्च देने लग पड़े। परन्तु जब स्वामी जी ने देखा कि महाभाष्य पढ़कर भी ब्राह्मणों के पुत्र पोपलीला नहीं छोड़ते, तो उनको शाला से घृणा उत्पन्न हो गई, और उन्होंने पाठशाला को बन्द करके पाठशाला की आमदनी वेदभाष्य के छपाने में लगा दी।

काशी में पहला शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर १८६६)

आर्यावर्त अर्थात् सारे भारतवर्ष में काशी जी को वही पद प्राप्त है, जो यूरोप में इटली की राजधानी रूम नगर को है, यह शहर ल्यूथर के समय तक ईसाई धर्म का केन्द्र, विद्या का केन्द्र और राजधानी रहा। और अब भी रोमन कैथलक सम्प्रदाय उसको उसी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है, जो प्रतिष्ठा का मान ल्यूथर

से पहले समस्त ईसाई प्रजा में उसको प्राप्त था। एक समय था कि रोम का राज्य सब राज्यों से बड़ा था। सैकड़ों राजा उस नगर में आकर सिर झुकाते थे और आधे या पौने भाग पूर्वी दुनिया का राज्य रूम शहर करता था। फिर वह समय आया कि रूम एक बड़े राज्य धर्म की राजधानी बनी और कई सदियों तक ईसाई लोगों के धर्म जीवन का आश्रय बना रहा। रूम के पोप की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा के समान थी। यह अपनी गद्दी पर बैठा हुआ, यूरप के महाराजाओं का सिंहासन छीन २य, को दे सकता था। सारी यूरप उसके पांव पर सिर झुकाती थी। लाखों मनुष्य उसकी कृपा दृष्टि को मुक्तिद्वार मानते रहे। पोप क्षण भर में राज्य की नींव को बिगाड़ देता था. हर एक ईसाई रूम में पढ़ने को अहोभाग्य समझता था। रूम के पंडित ईसाई एक असाधारण प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखे जाते थे और जहां जाते थे लोग उनसे भय खाते थे। सहस्रों नर-नारियें रूम में मरना मुक्ति मानती थीं। समस्त घरों को छोड़ रोम में मृत्यु के लिये आना चाहती थीं। अब भी रोम के गिरजाघर के समान कोई इमारत नहीं है। यदि वैसी ही नहीं परन्तु उसके तुल्य भारत में काशी जी की प्रतिष्ठा थी। सैकड़ों वर्ष व्यतीत हुए कि काशी जी आर्यावर्त में तीर्थों का केन्द्र बना। महात्मा बुद्ध के समय भी काशी जी प्रतिष्ठा का स्थान समझी जाती थी और उसके पीछे मत मतांतरों ने पौराणिक फिलासफी, पौराणिक लिट्रेचर, पौराणिक विद्या ने काशी जी को गोदी में मानो पालना पाई। काशी पौराणिक हिन्दु धर्म की राजधानी है और कौन नहीं जानता कि हिन्दुमात्र में काशी का सिक्का चलता हैं। नीच से नीच और उत्तम से उत्तम हिन्दु काशी जी को प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है, काशी निवास को सुकृत का फल समझता है और वहां मरने से तो स्वर्ग प्राप्ति में संदेह ही नहीं समझता। सहस्रों नर नारियें सांसारिक कर्तव्यों को पूर्ण कर काशी में मृत्यु के लिये जा रहती हैं। प्रत्येक ब्राह्मण पुत्र वहां से विद्या पढ़ने से अपने जीवन को सफलता समझता है और काशी जी का पढ़ा हुआ अपने को अहो

मान्य जानता है। काशी जी में पढ़े हुए पंडित सारे भारत देश में प्रतिष्ठा पाते हैं। काशी के मंदिर भी अद्वितीय हैं, काशी की व्यवस्था परम माननीय समझी जाती है। धर्म सम्बन्ध में तो काशी जी को व्यवस्था पर शंका करना पाप गिना जाता है। काशी हिन्दुओं का महान् तीर्थ है। यदि हिन्दु मत को एक चक्र माना जावे तो काशी जी धुर, हरिद्वार मथुरा प्रयाग आदि उसके आरे हैं। सहस्रों वर्षों तक दृढ़ विश्वासी नर नारियें काशी जी से करवत्र में अपने मुक्ति के लिये प्रिय प्राण देती रहीं। यह रोम के आरे नहीं थे, जहां धर्म के अविश्वसतों को दंड देने के व्याज से काटा जाता था। यह काशी का आरा था जहां मनुष्य अपने प्राणों को काशी में छोड़ने के महात्म्य से भेंट करते थे।

स्वामी दयानन्द ने गुरु से आज्ञा पाकर पहले पुष्कर को परास्त किया और इसके अनन्तर हरिद्वार के कुम्भ पर अपनी विद्या का प्रकाश दिखलाकर अंधकार का छिन्न भिन्न कर दिया। सारी गंगा के तट पर फिरते धर्म उपदेश करते करते उन्होंने अपनी विद्या की धाक मचा दी। इसके पीछे समस्त पंडितों को शास्त्रार्थ द्वारा पराजय कर जब फर्रुखाबाद में पधारे तो एक प्रति पक्षी काशी के विद्वानों की व्यवस्था लाया, स्वामी जी उसको देखकर हंसे और मन में हीं विचारा कि जिन काशी के विद्वानों की यह व्यवस्था है, उनको जीतना क्या कठिन है और साथ ही यह स्वामी जी को स्वभाविक अभिलाषा थी कि इन छोटे छोटे स्थानों में विजय पाने से मूर्त्ति पूजन का भारत से उठना कठिन है। हां यदि काशी जी में विजय हो, तो मनोकमना सिद्ध होगी, मानों दिग्विजय हो जावेगी। सो एक दिन चुपके ही स्वामी जी गंगा पार होकर काशी में आ निकले। सैकड़ों दण्डी सन्यासी काशी जी में सदैव निवास करते हैं और सहस्रों यात्रा कर गये होंगे। परन्तु किसको विदित था कि यह लंगोटिया साधु जिसके साथ न कोई साथी और न कोई सहायक था काशी जी की प्रतिष्ठा भंग करने को आया है। किसी को स्वप्न में भी ज्ञान न था कि यह मूर्त्ति पूजन का

विरोधी है और मूर्त्ति पूजा के उखाड़ने का उद्देश्य रखता है। स्वामी जी के काशी पधारते ही मानो भूकम्प हुआ और जिससे सारी काशी अपने मन्दिरों शिवालों और घाटों सहित कांप उठी। मनुष्य था कि कोई बला थी, कि जिसने सहस्रों वर्षों की काशी जी की जमी हुई प्रतिष्ठा को गंगा जी में बहा दिया। काशी जी में यह पहला समय था कि वहां किसी हिन्दु संतान ने मूर्तिपूजा खंडन का साहस किया हो, क्योंकि यदि कहीं ३३ करोड़ देवता पूजे जाते हैं, तो काशी जी में। जहां मन्दिरों शिवालों ठाकुरद्वारों और देवी द्वारों की कोई संख्या नहीं है और हर घर मूर्त्ति का स्थान है।

स्वामी दयानन्द दो या तीन कार्त्तिक शु० १९२६ वि० २२ या २३ अक्तूबर १८६९ को काशी जी में पधारे और आनन्द बाग में जो दुर्गा कुण्ड के रास्ते पर है, जा टिके। जो मनुष्य दुर्गा जी के दर्शनों को जाते स्वामी जी का खंडन सुनते थे। कई तो अविश्वासी हो वापिस लौट आते थे और बहुत से ढीठ होकर चले भी जाते थे। हर समय विद्यार्थियों और पंडितों की भीड़ रहने लगी, एक आता था, एक जाता था, कोई व्याकरण पूछता, कोई न्याय में परीक्षा करता था कोई धर्म सम्बन्धी वार्तालाप करता था। इसी प्रकार काशी जी के पंडित विद्वत्ता की परीक्षा करते रहे। एक दिन स्वामी जी ने एक प्रश्न लिख, काशी जी के मुख्य पंडित पं० राजाराम जी के पास भेजा। पंडित राजाराम जी ने प्रश्न को देखकर कहा कि छुरी बीच में रख लो यदि हमने इसका ठीक उत्तर दिया तो हम उसकी नासिका काट लेंगे" जब स्वामी जी को यह संदेश मिला तो उन्होंने कहा "कि उनको कह दो कि एक नहीं दो रक्खो लो, शास्त्रार्थ नहीं तो शस्त्रार्थ ही सही" जब पंडित जी को यह उत्तर पहुंचा तो ढीले हो गये और कहा "काशी में आ गये हैं चिन्ता क्या है विदित हो जावेगा।" स्वामी जी के दूत को तो पंडित जी ने यह उत्तर दिया, परन्तु मन में चिन्ता सी लग गई कि यह बला कहां से आ गई। अपने एक विद्यार्थी को स्वामी जी की विद्वत्ता जांचने को भेजा। विद्यार्थी ने लौट कर प्रार्थना की कि

पंडित तो बड़ा है परन्तु नास्तिक है।

अन्त को यह चर्चा फैलते फैलते काशी नरेश तक पहुंची, उन्होंने अपने शहर के पडितों को कहला भेजा कि तुम इस संन्यासी से शास्त्रार्थ करो, शहर के पडितों ने कहा कि शास्त्रार्थ से पहले दयानन्द से पूछ लिया जावे कि वह किन किन पुस्तकों को प्रामाणिक मानता है और उसके पास क्या युक्ति है कि वह अन्य पुस्तकों को प्रमाणिक नहीं मानता और क्योंकि प्रमाणिक पुस्तकों के कई भाग वह नहीं मानता, इसलिये यह भी पूछ लीजिये कि किस किस भाग को वह प्रमाणिक मानता है। सो इन प्रश्नों के उत्तर के लिये ४ पंडित भेजे गये। अर्थात् शालिग्राम, (जो पीछे गवर्नमैण्ट कालिज अजमेर के मुख्य अध्यापक बने) २य, ढुंडीराज शास्त्री धर्माधिकारी। ३य, दामोदर शास्त्री भारद्वाजी। ४र्थ, रामकृष्ण शास्त्री तातिया। अन्त को बहुत सी बातचीत के पीछे स्वामी जी ने ४ वेद ४ उपवेद, ६ अंग, ६ उपांग और मनुस्मृति यह २१ ग्रन्थ प्रमाणिक लिखा दिये। सो कार्त्तिक शुदि १२ मंगलवार (१६ नवम्बर १८६९) को शास्त्रार्थ नियत हुआ। सुना है कि जिले के हाकिमों (कर्मचारियों) ने भी इस शास्त्रार्थ में आने की अभिलाषा प्रकट की और इसीलिये रविवार का दिन स्वामी जी ने नियत करने को कहा परन्तु महाराजा जी और उनके पंडितों ने न माना। अन्त को वह दिन आ गया, जिसने स्वामी जी की विद्वत्ता को भली भांति प्रकाशित करके यह सिद्ध कर दिया कि वेदों के जानने वाला उनके समान समस्त भारत में कोई नहीं न था।

नियत दिन को कोतवाल डिप्टी इन्सपैक्टर और पुलिस प्रबन्ध के लिये आ गई, कोई उपस्थित जनों की संख्या १० सहस्र और कोई ५० सहस्र कहता है, परन्तु यह तो निश्चय है कि इतने मनुष्य पहले कभी किसी शास्त्रार्थ पर एकत्र नहीं हुए थे। डिप्टी इन्स्पैक्टर प्रबन्ध कर्त्ता ने खिड़की के अन्दर स्वामी जी का आसन बिछवाया और २य आसन उनके सन्मुख प्रतिवादी के लिये और एक महाराजा जी के लिये बिछवा दिया और शेष पंडितों के लिये भी यथाविकार यथायोग्य

प्रबन्ध कर दिया। इस शास्त्रार्थ में पं० राजाराम जी के सिवा काशी जी के सभी मुखिया पंडित विद्यमान थे इनकी संख्या ३५ की वर्णन की जाती है। इसमें से कुछ नाम यह हैं।

स्वामी विशुद्धानन्द जी, पंडित बाल शास्त्री, पं० शिवसहाय पं० माधवाचार्य पं० वामनाचार्य पं० देवदत्त शर्मा, प० जैनारायण तर्क वाचस्पति, पं० ताराचरण तर्क रत्न, पं० नवीन नारायण तर्कालंकार, पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि पं० विभु कृष्ण वेदान्ती पं० गणेश शिरोमणी, पं० नारायण शास्त्री आदि आदि। जब महाराजा जी आये पंडितों ने खड़े होकर उनके शुभागमन का सत्कार किया। उन्होंने स्वामी जी के सहायकों को एक ओर बिठाकर पंडितों को आगे बैठा लिया। एक ओर अकेले स्वामी जी और २य, ओर काशी जी का सारा विद्या पुञ्ज, क्या वैयाकरणी, क्या नैयायिक क्या वेदान्ती सब शास्त्रार्थ के लिये यह निश्चय करके आये कि मूर्त्ति पूजा के शत्रु ब्राह्मणों के निर्वाहापहारी, देव निन्दक स्वामी दयानन्द को चकनाचूर करके आवेंगे। यह समय एक अपूर्व दृश्य का था, हम तो उसको सुन कर विस्मय रहते हैं।

ल्यूथर को (Worms) वर्मज की प्रसिद्ध कौंसल ने बुलाया था कि वह अपने विश्वास का प्रमाण दे, और अपने दोषों को दूर करे। वहां केवल जरमन रोमन कैथलक सम्प्रदाय के प्रतिनिधि थे और यहां सारी काशी थी और स्वामी दयानन्द आप चैलिंज देकर उनसे शास्त्रार्थ करने को गये थे, स्वामी दयानन्द भी अकेला था और ल्यूथर भी अकेला था, ल्यूथर दोषी बनकर गया, दयानन्द वादी बनकर आया और ल्यूथर अपने डीफैन्स के लिये बुलाया गया था, स्वामी दयानन्द आप धावा करके मूर्त्ति पूजा की राजधानी पर गया था। आहा क्या ही दृश्य था, एक गुजराती ब्राह्मण संन्यासी जिसके संग न कोई मित्र था न कोई सेवक और न कोई सहायक था। तन-तनहा अकेला लंगोटा बांधे, भस्मी रमाये आसन पर बैठा हुआ परमात्मा के आश्रय काशी की सारी विद्वत्ता और पौराणिक धर्म के समस्त आचार्यों का

सामना करता है। सारे हिन्दु मतमतान्तर, विद्या वल, प्रताप, आचार्य आदि अपने पूर्ण वल से सामने को निकलते हैं और परास्त होकर अपना सा मुख लिये लौटते हैं। एक ओर स्वामी दयानन्द और दूसरी ओर काशी नरेश असंख्य विद्वानों सहित, मानो काशी के साढ़े तीन सौ पंडितों के सहित काशी नरेश हिन्दू धर्म के रूप थे। परन्तु सत्य के आगे कुछ न बन पड़ा। शास्त्रार्थ के अंत में जो लज्जास्पद कर्तव्यता इस महा सभा की ओर से देखने में आई, यद्यपि हिन्दू वंश के लिये सारी उमर का कलंक है, पर स्वामी जी की सत्यता की पूर्ण साक्षी है। जिसके सन्मुख भविष्यत के मूर्त्ति पूजकों को शिर नीचा करना पड़ेगा। यह शास्त्रार्थ सिद्ध करता है कि जो मनुष्य प्राणों के भय से भय न खाकर सत्य का प्रचार करता है, उसमें कितना बल आ जाता है, उसके सन्मुख न विद्वान् न राजा और न महाराजा ठहरते हैं। वह अकेला और सारी दुनियां एक ओर, परन्तु जय उसी की होती है उसके साथ सामना करने वालों के नाम उसी के नाम के साथ संसार में स्मरण किये जावें तो किये जावें अन्यथा लुप्त हो जाते हैं और सत्य प्रचारक का भण्डा प्रलय तक भूलता है और संसार के इतिहास से कभी नहीं मिटता।

शास्त्रार्थ का विषय यह था, "वेदों से मूर्त्तिपूजा स्थापित की जावे'। जब सारे पण्डित वेदों में पूजन या आवाहन का प्रमाण न दे सके, तो कुछ प्रश्नोत्तर के अनन्तर स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा कि जब "मानसिक ब्रह्मोपासना की और सूर्योपासना की आज्ञा है तो फिर शालिग्राम का पूजन भी ग्रहण करना चाहिये" इस पर स्वामी जी ने कहा कि "मनो ब्रह्मेत्युपासीत्" आदित्य ब्रह्मेत्युपासीत्" यह दोनों वचन ब्राह्मण के हैं, जिसको तुम वेद मानते हो, परन्तु ऐसा वचन कहीं नहीं कि "पाषाणब्रह्म त्युपासीत" सो शालिग्राम का ग्रहण किस प्रकार हो सकता है। इसके पीछे स्वामी विशुद्धानन्द जी तो कुछ न बोले, परन्तु पं० माधवाचार्य्य जी सन्मुख आके और एक मन्त्र पढ़कर बोले, कि इसमें किसका प्रकरण है, स्वामी जी ने उत्तर दिया "बादल कृप

तड़ागों का" प्रमाण में निरुक्त और ब्राह्मण की साक्षी दी। पण्डित जी फिर पुराण शब्द की ओर झुके। और कहा कि यह शब्द वेद में है या नहीं, स्वामी जी ने कहा "है तो कई स्थान पर परन्तु उसमें भागवत या दूसरे पुराणों का ग्रहण कहीं नहीं" सो शुरू काल इसी पर प्रश्नोत्तर होते रहे। इधर केवल स्वामी दयानन्द और उधर स्वामी विशुद्धानन्द, पण्डित बाल शास्त्री, पण्डित शिवसहाय, पण्डित माधवाचार्य्य, और पण्डित वामनाचार्य्य सब प्रश्नोत्तर करते थे। एक बार पण्डित महाशय स्वामी जी के प्रमाण पर बोले, कि यह उपनिषद् में नहीं है, जिस पर स्वामी जी ने गरज कर कहा कि यदि यह वचन उपनिषद् का न हो, तो मेरी पराजय समझी जावे। सो जब उस पर हस्ताक्षर करा लिये तो उपनिषद् से वचन निकाल कर दिखा दिया। इससे पण्डित जी बड़े लज्जातुर हुए। अन्त को जब काशी के पण्डित लाचार (निरुत्तर) हो गये और असली विषय पर कुछ न बन पड़ा, तो स्वामी जी ने उनसे एक प्रश्न व्याकरण विषय का कर दिया। और पूछा कि व्याकरण में कलम किसकी संज्ञा है? इस पर विशुद्धानन्द जी तो चुपके होकर आसन से हट गये। और बाल शास्त्री जी आगे आये, पर अपना सा मुख ले लौट गये। अन्त में जब कुछ बनता नजर न आया और बड़े शर्मिन्दा हुए, तो पण्डितों को एक चाल सूझी। सायंकाल का समय था और सर्दी की बहार थी, सात बज चुके थे, माधवाचार्य जी ने दो पत्र ब्रह्म सूत्रों के निकाल कर वेद के नाम से पेश किये। और कहा कि इसमें लिखा है कि "यज्ञ समाप्ति के १० दिन अनन्तर पुराण सुनने चाहियें, पुराण शब्द किसका विशेषण है? स्वामी जी पत्र लेकर पढ़ने लगे कि पण्डितों ने एकाएक कोलाहल मचा दिया, और काशी नरेश भी सारी सभ्यता को भूल उनके साथ तालियां बजाने लगे। सो फिर क्या था, वह समय दर्शनीय होगा। पण्डित लोग अपने मन में तो जानते थे कि क्या गति हुई, परन्तु जय जय के जंकारे बुलाते हुए बाहर आए। और बदमाशों ने ईंट पत्थर जो कुछ मिला स्वामी जी को मारने आरम्भ किये। काशी के पण्डित प्रसिद्ध हैं तो वहां के बद-

माश ठग और गुण्डे भी देश भर में अच्छी तरह प्रसिद्ध हैं। सार यह है कि स्वामी जी के प्राणों का भय हो गया। परन्तु इन्होंने तत्काल ही अपनी खिड़की बन्द कर ली, और पुलिस ने सब को बाहर निकाल कर प्रबन्ध कर लिया। इस प्रकार काशी जी का पहला शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। शास्त्रार्थ के पीछे भी कार्तिक, मार्गशीर्ष और आधा पौष स्वामी जी काशी में रहे और उच्च स्वर से मूर्त्ति पूजा का खण्डन करते रहे। ब्राह्मणों से और तो कुछ न बन पड़ा, व्यवस्था लिख दी कि जो कोई इस के दर्शन करेगा-पापी होगा, और पतित समझा जावेगा। परन्तु फिर भी लोगों के झुण्डों के झुण्ड इनके उपदेश सुनने को आते थे। एकबार एक ब्राह्मण स्वामी जी के लिये भोजन लाया, स्वामी जी भोजन खा चुके थे, इस लिए भोजन तो न पाया परन्तु ब्राह्मण का मान रखने के लिए पान ले लिया परन्तु पान को जब मुख में चबाया तो विष का संदेह हुआ, पान निकाल हौसपिटल भेजा, तो उस में से विष मिला, इतने में ब्राह्मण महाशय अदर्शित हो गये ॥

इस शास्त्रार्थ का संक्षिप्त वृत्तांत एक रिसाले में छपा हुआ हैं उसका संक्षिप्त वर्णन प्रतन कमर नन्दनी (The hindu commentator) कलकत्ता से अनुवाद करते हैं। इस पत्र के सम्पादक महाशय शास्त्रार्थ में विद्यमान थे और नोट लेते जाते थे। कमर नन्दिनी संख्या २८ दिसम्बर १८६९ ई० संख्या २८ (स० १९२६ वि०) अनुवाद—दयानन्द स्वामी एक साधु हैं, जिन्होंने सत्य धर्म्म प्रचार द्वारा असत निर्माण का बीड़ा उठाया है।

स्वामी दयानन्द—-स्वर्ग में इन्द्रादि देव हैं या नहीं ॥
विशुद्धानन्द स्वामी—वेदोक्त मन्त्र ही *देवता हैं ॥

---

* नोट—जिस समय स्वामी विशुद्धानन्द ने मन्त्र को देवता कहा तो काशीनरेश ने समझा कि प्रतिमा का खण्डन तो अपनी ओर से ही हो गया। इससे विस्मय होकर भवें चढ़ गई, और जब विशुद्धानन्द जी ने शालिग्राम में उपासना बतलाई तो और भी चकित हुए।

(काशी नरेश क्रोध में आ गये)

स्वामी दयानन्द—फिर उपासना किस प्रकार होगी।

विशुद्धानन्द—शालिग्राम आदि मूर्त्तियों में।

स्वामी दयानन्द—ऐसा वेद में कहां है।

विशुद्धानन्द--एक ☆सामवेद की सहस्र शाखा हैं क्या आपने सब देखी हैं।।

स्वामी दयानन्द—सुनो-सुनो सहस्र शाखाओं से सहस्र प्रकार के व्याख्यान से आशय है संहिता एक ही है।।

विशुद्धानन्द--वही अर्थात् आकाश ही ईश्वर है।।

स्वामी दयानन्द--(हंस कर) हां! वही ईश्वर है, जिस बात का यहां सम्बन्ध नहीं, उसका वर्णन करना व्यर्थ है, यहां प्रतिमा पर विचार होना चाहिए, इसका प्रमाण दो।।

विशुद्धानन्द—(स्वामी जी की पीठ पर हाथ रख कर) अरे बाबा अभी तू कुछ पढ़ा नहीं कुछ दिन पढ़।।

दयानन्द—(उनके हाथ को जल्दी से हटा कर) आपने सब कुछ पढ़ लिया है।

विशुद्धानन्द -(हंस कर) हां सब पढ़ लिया है?

स्वामी -(उनकी ओर मुख करके) क्या व्याकरण भी?

☆नोट-देखिए प्रकरण छोड़ मूर्त्ति पूजन के स्थान में वेदों के ईश्वर प्रणीत होने में चले गये तब स्वामी जी ने एक दो प्रश्नों का उत्तर देकर रोक दिया कि प्रतिज्ञा और प्रकरण विरुद्ध चल रहे हो। यह शास्त्रार्थ की रीति नहीं। सो फिर विशुद्धानन्द जी ने वेदों के विषय में पूछा कि वेद और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कार्य्यकारण" का। विशुद्धानन्द जी ने कहा कि इस सम्बन्ध से वेद रह नहीं सकते। दयानन्द ने उत्तर दिया कि यदि ईश्वर में कुछ नहीं रह सकता तो आकाश से किसी वस्तु का सम्बन्ध कैसे होगा। यह कहे, विशुद्धानन्द जी ने उत्तर दिया आकाश ही ईश्वर है। वाह?

विशुद्धानन्द—हां वह भी ?

दयानन्द (लाल आंखें करके) कलम संज्ञा किस को है। (गरज कर) कहो-कहो ?

जब उन से कुछ जवाब न बन पड़ा, तो बाल शास्त्री जी ने देखा कि अब काशी जी की प्रतिष्ठा दूर होती हैं। वह अपने बड़े पण्डित विशुद्धानन्द जी की प्रतिष्ठा रखने के लिए मैदान में आ गये। और बोले कि मैं इसका उत्तर देता हूं। स्वामी जी ने कहा कि आप ही कहिए। कि "कलम संज्ञा किसकी है" ? तब बालशास्त्री ने कहा "संज्ञा तो नहीं की है परन्तु किसी सूत्र के भाष्य में उपहास किया है" स्वामी जी—उदाहरण पूर्वक सामाधान कीजिए। इस पर बालशास्त्री और अन्य पण्डितों ने भी कछ उत्तर न दिया और चुपके रह गये ॥

महाराज काशींनरेश की इस समस्त शास्त्रार्थ को सुन कर भी तसल्ली नहीं हुई। और इस प्रकार कहने लगे कि "हमारा आना अच्छा हुआ, यद्यपि दयानन्द ढीठ और मूर्ख हैं, तो भी उसको कोई पण्डित हरा नहीं सकता है। यह करण के समान है, जिसको ६ पहलवानों ने मिल कर गिराया था। जब वह बलहीन हुआ, तो गिर पड़ा। और भी सुनो दयानन्द जी के हरा देने से ही यह विचार समाप्त नहीं हुआ, किन्तु सब पण्डित मिलकर विचार करो और खण्डन मण्डन और मण्डन खण्डन की एक पुस्तक बना कर प्रकाशित करो" ॥

श्री हरिकृष्ण व्यास, श्री जयनारायण तर्क पञ्चानन श्री कृष्ण वेदान्त सरस्वती आदि पुरुषों ने जो वहां विद्वान् गिने जाते थे। उन्होंने कहा कि यह ठीक नहीं पर यह ठीक है कि स्वामी दयानन्द हार गया।

इस शास्त्रार्थ के विषय में मुनसिफ मिजाज (निर्पक्षी) समाचार पत्रों की संक्षिप्त सम्मतियें नीचे प्रकट की जाती है।

(१) तत्वबोधनी पत्रिका ज्येष्ठ सं० १७९४ (बंगाली सं० है) उक्त पत्रिका लिखती है कि वर्त्तमानिक काशी नरेश के उद्योग से नाना देशों के पण्डितगणों ने उक्त मत खण्डन करने के लिये विचार किया। जैसा कि (धर्म्म विचार पुस्तक के) पढ़ने से विदित होता हैं कि

"वेद से प्रतिमा पूजन व्यवस्था देकर कोई पण्डित दयानन्द को न हरा सका, इसलिए स्वामी जी को बड़ा वेदवेत्ता समझना चाहिए"

फिर २ य, वार असूज १७९४ शालि वाहन के अन्त में दुर्गोत्सव का वर्णन करते हुए उक्त पत्रिका के सम्पादक ने लिखा था कि "इस समय स्वामी दयानन्द नामी एक वेदज्ञ संन्यासी काशी आदि नगरों में आकर घण्टा घोष से मूर्त्ति पूजा को वेद विरुद्ध प्रतिपादन करता था। इस विषय में काशीनरेश की पण्डित सभा तथा अन्य देशों के विद्वान् भी उपस्थिति थे परन्तु किसी ने भी वेदों से प्रतिमा पूजन न दिखाई ॥

(२) रुहेलखण्ड पत्र के नवम्बर सन् १८६९ के अंक में छपा था, कि दयानन्द सरस्वती स्वामी ··· काशी के पण्डितों को इन्होंने जीत लिया। और काशी के पण्डितों ने झूठ ही अपनी जय की धूम मचा दी ॥

(३) ज्ञान प्रदायनी पत्रिका एप्रैल सम्वत् १८७० लाहौर ने भी लिखा है, कि काशी के पण्डितों और संन्यासी जी का शास्त्रार्थ में दोनों ओर से व्यर्थ वितण्डावाद बहुत हुआ, और इसमें सन्देह नहीं कि प्रतिमा पूजन वेदों से पण्डित सिद्ध न कर सकें ॥

हिन्दुपैट्रीयेट (१७ जनवरी १८७० ई०) से

हिन्दुओं की मूर्ति पूजा का दृढ़ दुर्ग जो हिन्दुओं की देवमाला (व्यालोजी) के अनुसार शिवजी की त्रिशूली पर खड़ा है, और इसीलिए किसी के प्रभाव से कम्पित नहीं हुआ, अब गुजरात देश के एक ऋषि के प्रकट होने पर नींव से हल गया है। इस ऋषि का नाम दयानन्द सरस्वतो है, यह पण्डितों की वार्तमानिक पूजन विधि के खण्डन करने को निकला हैं।।

यह ऋषि वेदों को ही प्रमाणनीय मान, पुराणों का निषेध करता है, और कहता है कि पुराणों को मूर्खता के समय में लोभी ब्राह्मणों ने अपनी उदरपूर्णा के लिए बनाया है। वह कहता है, कि वेद मूर्त्ति पूजन का प्रतिपादन नहीं करते। वह काशी के पण्डितों और बड़े-बड़े पुरुषों को शास्त्रार्थ के लिए आवाहन करता है। अर्थात् चैलिञ्ज देता है ॥

थोड़े दिन हुए कि राम नगर (काशी) के महाराज ने एक महा सभा कराई। दयानन्द और काशी के कुछ पण्डितों में एक बड़ा विवाद होता रहा, परन्तु पण्डित शास्त्रज्ञ होने पर भी पराजित हुए। पण्डितों ने देखा कि नियमानुसार शास्त्रार्थ से ऐसे बड़े विद्वान को जीतना कठिन है, तो अपना पक्ष सिद्ध करने के लिए अनुचित मर्यादा पर चले। उन्होंने ऋषि को पुराणों का एक पत्र दिया जिसमें मूर्त्ति पूजन का वृत्तान्त लिखा था, सरस्वती जी के हाथ में देकर कहा कि यह वेदमन्त्र हैं, अभी यह विचार हो रहा था कि पण्डितगण ने राजा सहित तालियें बजायीं और प्रकट किया कि धर्म्म सम्वाद में यह बड़ा पण्डित हार गया ।।

स्वामी जी यद्यपि राजा जी के इस कायरपन के कार्य्य और अनुचित व्यवहार को देखकर बहुत अप्रसन्न हुए, परन्तु फिर भी यह अपने पक्ष के समाधान करने से न मुड़े वरञ्च पहले से भी अधिक कर रहा है। यद्यपि वह अकेला है परन्तु विपक्षियों में निर्भय खड़ा है, उस के पास उसकी सचाई की ढाल रक्षक है। जिससे विजय पताका आकाश में झूल रहा हैं। उस पण्डित ने अभी एक रसाला छपवाया है जिसका नाम "सत्य धर्म्म विचार" हैं जिसमें उपरोक्त शास्त्रार्थ दरज है, और उसने एक (सरकुलर) विज्ञप्ति दी हैं जिसमें काशी के पण्डितों को लिखा है कि दिखलाइये कौन भाग वेदों का मूर्त्ति पूजन के पक्ष का समाधान करता है, परन्तु किसी ने उनके सामने आने का साहस नहीं किया ।।

उस ऋषि की प्रसिद्धि सुन हमको उसके दर्शन की लालसा हुई, और इसीलिये काशी जी में दुर्गावाटिका के निकट आनन्द बाग में जहां वह रहते थे——मैं गया। उस ऋषि रूप पंडित के प्रेम मिलाप, साधु स्वभाव ने हमको विमोहित किया, जब वह वार्तालाप करने लगे तो मानो मुख से फूल बरसने लगे। और उसकी शिक्षा सुन हमको निश्चय हुआ कि अभी भारत से सद्युग बिलकुल नहीं गया।

इस पण्डित ने १८ वर्ष वेद विचार कर यह अनुसंधान किया है

कि वेद में मूर्ति पूजन की गन्ध भी नहीं । वैदिक धर्म को जो प्राचीन समय भारत का आर्ष धर्म था, फिर भारत में प्रचलित करने का बीड़ा उसने उठाया है। उसने समस्त सांसारिक सुख त्याग संन्यास ग्रहण किया है, और हिन्दू धर्म को उठाने और अपने देशीय भाइयों को सदैव के लिये अमृत पिलाने के वास्ते कटिबद्ध हुआ है। एक ईश्वर की सत्-शिक्षा फैलाने के और वार्तमानिक संन्यासियों और पंडितों की 'अहं' 'सोहं' मंत्र को अशुद्ध सिद्ध करने के लिये (जिसको वह वेदाज्ञा मानते हैं) वह अपने लिखे पढ़े बुद्धिमान् भाइयों से एक वैदिक पाठशाला नियत करने की अपील कर रहा है। जिसका अध्यापक बनना वह आप बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार करेगा।"

कृश्चन इंटैलीजैंसर मार्च स० ७० में से १ अंग्रेज की सम्मति

"यह शास्त्रार्थ १० नवम्बर १८६९ ई० को रीफार्मर के स्थान पर काशी नरेश के पहुंचते ही इस प्रकार आरम्भ हुआ। दयानन्द ने राजधानी के पण्डित ताराचरण से (जो पण्डितों की ओर से उत्तर देने के लिये नियत हुआ था) पूछा कि आप वेदों को प्रामाण्य मानते हैं या नहीं ? जब स्वामीजी के सामने उसने स्वीकार किया कि मैं वेदों को प्रामाण्य मानता हूं। तब स्वामी जी ने ताराचरण से कहा कि वेदों से वह मन्त्र निकाल कर दिखलाओ कि जिनमें पाषाण पूजा (मूर्ति पूजन) का विधान किया हो। वेदों के प्रमाण देनेके स्थानपर ताराचरण ने कुछ काल पुराणों के प्रमाण देने में समय व्यतीत किया, अन्त को दयानन्द जी के मुख से यह बात निकली, कि मैं मनुस्मृति और शारीरिक सूत्रादि को भी प्रमाणनीय मानता हूं, क्योंकि इनका मूल वेदों से है, तो विशुद्धानन्द बड़ा वेदान्ती बीच में बोल उठा और शारीरिक सूत्रों में से एक सूत्र पढ़ कर बोला कि कहिये इसका मूल वेदों में कहां है, दयानन्द ने कुछ ठहर कर उत्तर दिया कि मैं देखकर बतला सकता हूं क्योंकि समस्त वेद मुझे कण्ठ नहीं हैं। तब विशुद्धानन्द ने बड़े वेग से कहा यदि तुमको सारे वेद कण्ठ नहीं थे तो काशी धाम में आकर अपने आपको टीचर (आचार्य) क्यों प्रकट किया। दयानन्द ने उत्तर

दिया कि किसी पण्डित को भी वेद सारे कण्ठ नहीं हैं। इस पर विशुद्धानन्द तथा कई अन्य पण्डितों ने घमण्ड से कहा कि हमको समस्त वेद कण्ठ हैं, सो इस पर भी बहुत प्रश्नोत्तर हुए जो कि प्रकरण से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते थे। परन्तु स्वामी जी ने यह प्रश्न इसलिये किये कि जिससे प्रतिपक्षी का कथन मिथ्या प्रकट हो। वे दयानन्द के किसी प्रश्न का उत्तर न दे सके।

अन्त को पण्डितों ने फिर प्रकरणानुकरण कर, दयानन्द से पूछा, कि जो शब्द प्रतिमा और मूर्ति के वेद में आते हैं क्या इसमें मूर्ति पूजन सिद्ध नहीं होता। उसने उत्तर दिया कि यदि इनका ठीक अर्थ किया जावे तो मूर्ति पूजन सिद्ध नहीं होता। पण्डितों ने इनके अर्थों पर कुछ ऐतराज (शंका) न की जिससे कि परिणाम निकलता है कि या तो ये इनसे एकमत थे, या इतनी योग्यता नहीं रखते थे कि इसके अर्थों से इनकार कर सकें। तब माधवाचार्य नाम के प्रसिद्ध पण्डित ने एक हस्त लिखित के वेद से २ पत्र निकाल कर एक मंत्र पढ़ा, जिसमें पुराण का शब्द आता था। "ब्रह्माणि इतिहासानि पौराणानि" और पूछा कि यहां पुराण शब्द का क्या तात्पर्य है? स्वामी जी ने कहा के इस शब्द के अर्थ प्राचीन हैं, यह कोई विशेष संज्ञा नहीं है। विशुद्धानन्द ने इस पर शंका की और व्याकरण द्वारा सिद्ध करना चाहा, परन्तु अन्त में सब पण्डितों को दयानन्द के अर्थों को स्वीकार करना पड़ा। फिर माधवाचार्य ने हस्त लिखित के वेद के २ पत्र निकाल यह मन्त्र पढ़ा।

यज्ञ समाप्तौ दशमेऽन्हि किंचित्पुराणपाठमाचक्षीत्

अर्थ—यज्ञ समाप्ति पर दशवें दिन पुराण सुनने चाहियें। और पूछा कि यहां पुराण का अर्थ किस प्रकार प्राचीन हो सकता है? दयानन्द ने पत्र लेकर विचारना आरम्भ किया। तब प्रति पक्षी दो मिनट प्रतीक्षा कर उठ खड़े हुए और घृणा व अभिमान से यह कहकर कि यह उत्तर नहीं दे सका चल दिये।

इसमें कुछ सन्देह नहीं कि स्वामी जी को कुछ समय देना चाहिये

था परन्तु यह स्पष्ट है, कि उत्तर में स्वामी जी को कुछ कठिनता प्रतीत हुई। दयानन्द ने अपने लेख में यह उत्तर दिया कि पुराण शब्द के साथ विद्या शब्द मिलाना चाहिये, जिसके अर्थ प्राचीन विद्या अर्थात् वेद हैं। यह उत्तर बहुत तसल्ली देने वाला नहीं है। इनमें कुछ अधिक सन्देह नहीं हो सकता कि यहां पुराण शब्द से ❁१८ पुराणों का आशय है। परन्तु क्योंकि वह पत्र सामवेद के ब्राह्मण में से हैं जिसमें बहुत सी बातें पीछे लिखी गई हैं, इसलिये यह प्रमाण हिन्दू दृष्टि से (और मेरा विचार है कि स्वामी जी की दृष्टि में) माननीय नहीं होगा। क्योंकि एक वार स्वामी जी ने मुझसे कहा, कि ब्राह्मणों में बहुत से भाग पीछे से लिख कर मिलाये गये हैं और जो वाक्य मूर्त्ति पूजन का कहीं ब्राह्मणों में मिले वह बनावटी समझना चाहिये।"

प्रयाग के कुम्भ का मेला और उसके पीछे धर्म प्रचार। माघ सं० १९२६ (जनवरी सं० १८७०) से दिसम्बर सन् १८७२ ई० तक।

प्रयाग का कुम्भ जनवरी स० १८७०

माघ सं० २६ में स्वामी जी कुम्भ पर पधारे और लाखों मनुष्यों के सामने मूर्त्ति पूजन का खंडन करते रहे।

प्रयाग से स्वामी जी मिरजापुर पहुंचे और दो अढाई मास इसी प्रकार वहां भी उपदेश करते रहे। लघु कौमुदी का खंडन करते रहे और लोगों का महाभाष्य और अष्टाध्यायी पढ़ने की शिक्षा देते रहे। यहां स्वामी जी एक पंडित को उपनिषदें पढ़ाते रहे, एक बाबाजी को शास्त्रार्थ के लिये चैलिंज भी दिया परन्तु वह सामने न

❁ नोट--पादरी जी का यह विचार ठीक नहीं है, प्राचीन संस्कृत साहित्य में पुराण शब्द से १८ पुराण कोई भी विवेचक नहीं समझता। परंच विचार है कि उस समय जिन ग्रन्थों का नाम पुराण या इतिहास था वह सब लोप हो गये हैं। निःसन्देह पुराण के जो अर्थ स्वामी जी ने किये वह किसी प्रकार के झूठे प्रतीत नहीं होते।

हुआ। शहर के कुछ पंडित एक दिन मिलकर आये परन्तु वार्तालाप करके चले गये।

मिर्जापुर से ज्येष्ठ मास को काशी जी आये और कुछ दिन वहां रहकर नवीन वेदान्त का खंडन करते रहे और बार बार विज्ञापन लगाकर चैलिज देते रहे, पर कोई सामने न हुआ।

अन्त में गंगा के तट से चल दिये और फर्रुखाबाद की राह ६ जून १८७० को कासगंज आ पहुंचे और कुछ दिन यहां रहकर एक शाला नियत की। यह पाठशाला लाला दलमुख व गिरवारीलाल महाजनों के उद्योग से खुली, जो १५००) रु० पुण्य खाते का उनकी दुकान में जमा था पाठशाला के अर्पण हुआ। इस पाठशाला के नियम यह थे।

१म, सन्ध्या पहले पढ़ाकर विद्यार्थी पाठशाला में प्रविष्ट हों। इसी से उसकी बुद्धि की परीक्षा भी हो जावेगी।

२य, अष्टाध्यायी महाभाष्य मनुस्मृति और वेद पढ़ाये जावें।

३य, यदि कोई विद्यार्थी सूर्योदय से पूर्व संध्या न कर लें। तो उस दिन उसको भोजन करने की आज्ञा न हो उसे सायं सन्ध्या उपासना के अनन्तर भोजन मिले, और नगर से भोजन खा आने की रक्षा की जावे।

४र्थ, विद्यार्थियों को नगर में जाने की आज्ञा नहीं परन्तु नेवते में कभी कभी जाने की मनाही नहीं।

५म, इस पाठशाला के व्यय से शहर के विद्यार्थियों को भोजन न मिले किन्तु बाहर वालों को ही दिया जावे।

६, परिश्रमी और बुद्धिमान् विद्यार्थियों के भोजन का विशेष प्रबन्ध किया जावे।

इस पाठशाला में हर पूर्णिमा को परीक्षा होती थी और जिसके नम्बर अधिक होते थे उसके भोजन में अधिकता करा दी जाती थी और जो अनुत्तीर्ण होते थे उनको छोटे विद्यार्थी का जूता उठाना पड़ता था। यह पाठशाला प्रबन्ध कर्ताओं के अप्रबन्ध से और अध्यापक की शरारत से जून १८७० ई० को टूट गई।

नवम्बर सन् १८७० को स्वामी जी ने ठाकुर मुकन्दसिंह छलेसर की श्रद्धा से कसबा छलेसर में पाठशाला नियत की। पहले हवन कराया गया, फिर ब्रह्मभोज, तदनन्तर पाठशाला खोली गई। यह पाठशाला ठाकुर मुकँदसिंह जी के व्यय से ७ वर्ष तक चलती रही परन्तु जब देखा कि विद्यार्थी लिख पढ़ कर भी पाखंड विभाग नहीं छोड़ते तो स्वामी जी ने पाठशाला तोड़ दी।

इस प्रकार घूमते घामते फरवरी स० १८७१ को स्वामी जी मिर्जापुर पहुंचे और कुछ दिन ठहर, जून सं० १८७१ को भली भांति हवन कर, ब्रह्मभोज कराय पाठशाला खोली, यह पाठशाला जून सं० १८७३ तक चली और फिर टूट गई।

वर्ष भर फिर वैसे ही गंगा के किनारे घूमते रहे और पाठशालाओं का प्रबन्ध करते रहे लोगों को पढ़ाते रहे, यज्ञ करते रहे और उपदेश भी देते रहे। मार्च १८७२ ई० को फिर काशी में आये और डेढ़ मास बराबर खंडन मंडन करते रहे, परन्तु सामना करने का किसको साहस था। अन्त को अप्रैल सं० १८७२ को पूर्व की ओर चल दिये।

डुमराव और आरा की राह भादों सं० २६ सितम्बर (१८७२) को स्वामी जी पटने जा पहुंचे। यहां एक मास ठहरे, कई साधारण से शास्त्रार्थ भी किये। वैसे तो नित्य उपदेश करते रहे। हर एक छोटा बड़ा उनके उपदेश से लाभ उठाता रहा। स्वामी जी ने विज्ञापन दे दिया कि जिसने मूर्त्ति पूजन मंडन सिद्ध करना हो वह मेरे साथ आकर बात चीत कर ले।

पटने से चलकर ४ अक्टूबर सन् १८७२ को मुंगेर पहुंचे और १५ दिन वहां उपदेश करते रहे।

मुंगेर से चलकर स्वामी जी २० अक्टूबर को भागलपुर पधारे नियमानुकूल उपदेश देते रहे। यहां पर ब्राह्मणों और ईसाइयों से शास्त्रार्थ होता रहा। बरदवान के महाराज भी दो बार इनका उपदेश सुनने आये, महाराज ने स्वामी जी को अपने घर पर ठहरने को कहा

परन्तु एकान्त न होने के कारण स्वामी जी ने न माना। २ मास वहां धर्म उपदेश देते रहे अन्त को १५ दिसम्बर स० १८७२ ई० को कलकत्ते को चले गये।

बंगाल व बिहार की थोड़ी सी यात्रा, दिसम्बर स० १८७२ से अगस्त स० १८७३ ई० तक।

स्वामी दयानन्द पौराणिक हिन्दू धर्म की राजधानी में अपना उद्देश्य पूर्ण करके दिसम्बर १८७२ ई० को ब्रिटिश गवर्नमैण्ट की राजधानी (कलकत्ता) में पधारे। बाबू चन्द्रशेखर सेन ने उनका स्वागत किया और बाबू सुरेन्द्र मोहन के नैना बाग में उनको उतारा। कलकत्ता के प्रसिद्ध पत्र इण्डियन मिरर ने ३० दिसम्बर स० १८७२ के अंक में निम्न लिखित स्वागत किया, "एक प्रबल हिन्दू मूर्ति पूजन का खण्डन करने वाला पं० दयानन्द सरस्वती जो अभी काशी के बड़े पंडितों को शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर और अपने अन्य कार्यों से भारत में बड़े प्रसिद्ध हुए हैं, अब कलकत्ते में पधारे हैं और राजा यतीन्द्र मोहन के बाग के बंगले में पश्चिमी नैना में उतरे हैं।"

पहले पहल तो ब्रह्मो लोग उनसे मिलने के लिये आते रहे और कई विषयों पर वार्तालाप करते रहे, जैसा कि--

१--जाति भेद की असलीयत क्या है, जिसके उत्तर में स्वामी जी ने बतला दिया कि कर्म से जाति भेद है जन्म से नहीं।

२--यज्ञोपवीत पहिनना चाहिये, या नहीं? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि द्विजमात्र को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये हां जो मूर्ख ब्राह्मण हैं वह न पहिने तो कुछ भय नहीं।

३--ईश्वर साकार है या निराकार है? उत्तर दिया कि उसका आकार नहीं वह तो सच्चिदानन्द है।

४--क्या सांख्य दर्शन का कर्ता नास्तिक था और "ईश्वरासिद्धे" सूत्र से ईश्वर का खण्डन करता है, स्वामी जी ने उत्तर में कहा कि

लोग ऋषिकृत टीकाओं को छोड़ इस प्रकार के भ्रम में पड़ जाते हैं सांख्यकार स्पष्ट रीति से पुनर्जन्म और आवागमन को मानता है यदि वह नास्तिक होता तो न मानता। "ईश्वरासिद्धे" सांख्य में पूर्व पक्ष है, अर्थात् प्रति पक्षी का वचन है इसके आगे उत्तर है। सांख्यकार आवागमन के सिवा वेद, परलोक, योग और आत्मा भी मानता है, फिर वह किसी प्रकार अनीश्वर वादी नहीं हो सकता। दर्शनों में किसी दर्शन में परस्पर विरोध नहीं। सृष्टि की षट् कारणों से उत्पत्ति है।

(१) न्याय--परमाणुओं का (२) मीमांसा--कर्म का (३) सांख्य--तत्त्वों का (४) पातञ्जल—ज्ञान विचार और बुद्धि के लिये (५) वैशेषिक--काल का निरूपक है (६) वेदान्त – परमात्मा कर्ता का वर्णन बतलाता है।

५ हवन मूर्त्ति पूजन का अंग है? उत्तर दिया कि जिस कर्म का ब्रह्म समर्पण कर अनुष्ठान किया जाता है, विशेष करके वह (कर्म) जिससे सारे जगत् का उपकार होता है। मूर्त्ति पूजा का अंग नहीं कहा जा सका। पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न, पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति, राजनारायण, टैगोर वंश के सब रत्न कलकत्ते के सब महापुरुष उनके दर्शन को जाते और वार्त्तालाप से लाभ उठाते।

धीरे धीरे स्वामी जी के आगमन की खबर फैल गई और बाबू ज्ञानेन्द्र लाल एम० ए० बी एल के कथनानुसार "चारों ओर से बाल वृद्ध, नर नारियें, भी उनके दर्शन करने और उपदेश सुनने को आने लगीं। लोग उनकी वक्तृता शक्ति, तर्क शक्ति और शास्त्र बल को देख चकित होने लगे। दलों के दल धर्म जिज्ञासु अपने प्रश्नों के उत्तर पाकर अति प्रसन्न होते। अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ एक हिन्दुस्थानी के मुख से इस प्रकार का निर्पक्ष धर्म पहले कभी नहीं सुना था।"

बाबू केशवचन्द्र सेन को स्वामी जी में बड़ी श्रद्धा थी, इन्होंने ६ जनवरी १८७३ को अपने स्थान पर इनका व्याख्यान कराया और उन्हीं दिनों "तत्त्वबोधिनी पत्रिका कलकत्ता" में मुद्रित हुआ हैं कि ११ माघ १७६४ शालिवाहन (२१ जनवरी १८७३ ई०) को ब्रह्म

समाज के वार्षिकोत्सव पर दोपहर को ब्रह्मसमाज के प्रधान आचार्य महर्षि देवेन्द्रनाथ टाकुर के भवन में बहुत मनुष्यों के साथ परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीयुत स्वामी दयानन्द सरस्वती का दोपहर से सायं काल तक धर्म विचार हुआ।"

२२ फरवरी १८७३ ई० को गौरीचरणदत्त के घर पर ईश्वर और धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान का बंगाली अनुवाद पण्डित महेशचन्द्र न्याय रत्न ने सुनाया, परन्तु उन्होंने कई बात अपनी ओर से मिला दीं, इसलिये उपस्थित गणों के शंका करने से कुछ गोल माल हो गई और पण्डित जी क्रुद्ध हो गये (पण्डित जी के इस क्रोध का 'आर्य सन्मार्ग दर्शिनी सभा कलकत्ता' की स्थिति (कारवाई उत्तर था)। २ मार्च १८७३ को बड़ा नगर बोरनिया कम्पनी के हाल में स्वामी जी ने सरल संस्कृत में व्याख्यान दिया।

९ मार्च १८७३ को बुरहानगोर के नाईट स्कूल में व्याख्यान हुआ इसके विषय में इण्डियन मिरर लिखता है कि "इस व्याख्यान में बहुत से नगर के रईस आए हुए थे। यह व्याख्यान ३ घंटे से अधिक रहा, लैक्चर ने स्वामी जी की विद्वत्ता ही नहीं, किन्तु गहरे सोच विचार वाली शक्तिका होना भी सिद्धकर दिया, इनकी युक्ति बड़ी प्रबल और अशंकनीय पूर्ण और उनके कथन की रीति निर्भय और दिलेरी से भरपूर थी।

मार्च १८७३ के अन्त तक दो तीन व्याख्यान और हुए। जिसमें श्रोतागणों की बड़ी भीड़ रहतीथी। स्वामीजी ने प्रसन्नकुमार टैगोर की पाठशाला को देखा और वहां वेद पढ़ाने की प्रेरणा की। डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार से स्वामी जी ने आयुर्वेद की उन्नति के लिये विशेष प्रकार से बातचीत की।

बाबू केशवचन्द सेन से आवागमन के विषय पर शास्त्रार्थ भी हुआ, जिसका सविस्तार वर्णन कहीं नहीं छपा। राजनारायण वसु कृत "हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता" नामक पुस्तक देख कर स्वामी जी ने रीमार्क किया कि "हिन्दू धर्म की उत्कृष्टता प्रतिपादन करने के लिये पुराण

और तन्त्र का प्रमाण मानना युक्ति संगत नहीं।" शास्त्रों में महाभारत तक प्रमाण मानने चाहियें।

कलकत्ता की यात्रा के साथ ही स्वामी जी के परोपकारी जीवन का वह समय समाप्त होता है, जिस समय में वह केवल संस्कृत बोलते रहे। कलकत्ते में स्वामी जी ने भाषा में प्रचार करने की आवश्यकता समझी, क्योंकि बहुत मनुष्य इससे लाभ उठा सकें। चुनांचे इसके पीछे वह प्रायः भाषा में व्याख्यान देते रहे। मानों हरिद्वार के कुम्भ से वैसाख सं० १९२४ से लेकर कलकत्ते की यात्रा की समाप्ति तक (फाल्गुन सं० १९२९ तक) यह केवल संस्कृत ही बोलते रहे। इसके सिवाय स्वामी जी ने अंग्रेजी शिक्षा की सभ्यता के सन्मुख आकर वस्त्र धारण की आवश्यकता भी मान ली। उन्होंने निश्चय किया कि समयानुसार मनुष्य को सोशल सामाजिक बर्त्ताव रखना चाहिये।

(३) बंगाल और बिहार के दूसरे शहरों की यात्रा

स्वामी दयानन्द जी १ अप्रैल को हुगली पहुंचे, एक जिमींदार के बाग में उतरे वहां कई व्याख्यान और साधारण वार्तालाप भी १५ दिन होता रहा, पण्डित ताराचरण से शास्त्रार्थ भी हुआ।

पण्डित ताराचरण ने पातञ्जल योग दर्शन के नाम से प्रति पादन किया कि स्थूल पदार्थ के सहारे बिना चित्त नहीं ठहरता। इसलिये, उपासना में प्रतिमा का पूजन किया जाता है, यह व्यास जी का कथन है" स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "पातञ्जल दर्शन में कोई सूत्र है तो फिर व्यास वचन कैसे।" आपने सूत्र अशुद्ध पढ़ा है, असल सूत्र पढ़ कर स्व मी जी ने कहा कि इस सूत्र की व्याख्या में पढ़ कर स्वामी जी ने कहा कि इस सूत्र को व्याख्या में व्यास जी ने कहा है, "नासिका के अग्र भाग में मन को स्थिर करना।" थोड़ी देर के वार्त्तालाप के अनन्तर पण्डित जी अपने ही प्रमाण से यह कहने लगे कि उपासना सब मिथ्या है। यह सुनते ही श्रोताओं में हलचल पड़ गई, क्योंकि

पण्डित जी तो मूर्ति पूजन मण्डन करने आये थे, वह आपही अपने पक्ष के खण्डन में लग गये।

१५ अप्रैल को हुगली से चल कर पटना और भागलपुर में उपदेश करते हुए स्वामी जी छपरा आ गये। और राय शिवगुलाम शाह जिमीदार के परोहने बने। पण्डितों से शास्त्रार्थ किया, व्याख्यान दिये, पाठशाला देखी, और ९ जून तक रह कर आरा को चले गये।

आरा में एक मास से कुछ अधिक रह कर उपदेश देते रहे। और वहां से २६ जुलाई को डुमराव आ गये, और यहां राजा के पास उतरे। राजा साहिब ने दीवानों सहित आकर पण्डित दुर्गादत्त से इनका शास्त्रार्थ कराया, स्वामी जी की यह छोटी सी बंगाल बिहार की यात्रा, डुमराव में समाप्त हो गई।

बंगाल से लौट फिर पश्चिमोत्तर प्रदेश में धर्म चर्चा
२० अक्टूबर स० १८७३ से १८७४ सितम्बर के अन्त तक

स्वामी दयानन्द जी ८ अक्टूबर सं० १८७३ को डुमरांव से चल कर मिरजापुर से होते हुए २० अक्टूबर सन् १८७३ को कानपुर पहुंचे और लगभग एक महीना ठहर कर उपदेश करते रहे। पूर्व के समान हीं नग्न गंगा के तट पर रहते रहे यहां पर भाषा में व्याख्यान देतेरहे।

कानपुर से २० नवम्बर सं० १८७३ ई० को फर्रुखाबाद में पहुंचे और यहां पर म्योर साहिब लैफ्टीनैण्ट गवर्नर, और इलाहाबाद शिक्षा प्रबन्ध विभाग के डायरैक्टर से मिले और इनसे गौरक्षा के विषय में अपील की।

फर्रुखाबाद से कासगंज व छलेसर होते हुए और उपदेश करते हुए, स्वामी जी २६ दिसम्बर सन १८७३ को अलीगढ़ पहुंचे, और राजा जयकृष्णदास सी० ऐस० आई के यहां उतरे। और कई दिन यहां उपदेश करते रहे, यहां से हाथरस होकर और उपदेश देकर स्वामी जी फरवरी सन १८७४ के अन्त में मथुरा में आ पहुंचे।

मथुरा वृन्दावन हिन्दुओं के सुप्रसिद्ध अवतार और महाभारत के नामी ग्रामी पात्र श्रीकृष्ण जी महाराज की जन्म भूमि है, मानों कि पौराणिक मत का मुख्य स्थान है। स्वामी जी ने एक स्वाध्यायी को फर्रुखाबाद में पाठशाला में पढ़ाने के लिये बुलाया, तो उसने कहा कि जब तक मथुरा में मूर्ति पूजने का खण्डन न किया जावे, मेरा फर्रुखाबाद आना उचित नहीं। सो स्वामी जी ठीक चैत्र में जब कि वृन्दावन में रथ के मेले से बड़ी रौनक थी, वृन्दावन पहुंचे और शहर के बाहर राजा बाग में उतरे। रथ का मेला वा ब्रह्मोत्सव है जो प्रतिवर्ष होली के पर्व के पीछे होता है, इस मेले में सहस्रों मनुष्य दूर २ देशों से आते हैं। महाराज श्री कृष्णचन्द्र जी के नाम पर जो लज्जा जनक कार्रवाई होती है वह हिन्दू धर्म पर बड़ा कलंक है। इस परगने में रंगाचार्य मूर्ति पूजकों का अग्रणी था। यह बड़ा प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित था। स्वामी जी की इससे शास्त्रार्थ करने की बड़ी अभिलाषा थी, सो मथुरा पहुंचते ही स्वामी जी ने इसको शास्त्रार्थ के लिये लिख कर चैलेन्ज दिया। इस पत्र का भाव यह था, कि "तुम कहते थे कि वेदों से मूर्ति पूजन सिद्ध करता हूं सो अब दिखलाओ। एक प्रति रंगाचार्य के घर के द्वार पर भी लगवा दी। रंगाचार्य ने इसके उत्तर में लिखा कि मेले के पीछे शास्त्रार्थ होगा। परन्तु यह केवल टालना था वास्तव में उसका इतना साहस कहां था कि वह स्वामी जी से शास्त्रार्थ करे। मेला हो चुका और रंगाचार्य ने शास्त्रार्थ का नाम न लिया, और बीमारी का बहाना कर समय टाल दिया। अन्त को स्वामी जी को निश्चय हो गया कि यह शास्त्रार्थ नहीं करेगा, तो मथुरा चले आये और वहां उपदेश करते रहे।

मथुरा और वृन्दावन में कई वार दुष्ट मनुष्यों ने स्वामी जी पर वार करना चाहा, परन्तु कामयाबी न हुई। मथुरा में चार पांच सौ चौबे लट्ठ लेकर स्वामी जी को गालियें देते इनके स्थान पर चढ़ आये, परन्तु डिप्टी कलैक्टर साहिब ने किसी प्रकार का फसाद न होने दिया।

मथुरा से मुरसान का राजा टीकमसिंह इनको अपने साथ ले गया,

और वहां सत्कार पूर्वक इनका उपदेश सुनता रहा। आप ही फिटन गाड़ी पर चढ़ा कर ले गये और आप ही फिटन पर चढ़ा कर स्टेशन पर सवार करा गये।

मथुरा से वापस आकर स्वामी जी आषाढ़ सं० १९३१ (जुलाई, १८७४ ई०) को इलाहाबाद पहुंचे, वहां पर व्याख्यान देते रहे, म्योर कालिज के विद्यार्थी प्रायः इनके पास आया करते थे, और उनसे अनेक प्रश्नों के उत्तर लेते थे। स्वामी जी जिधर जाते थे, विद्यार्थी इनमें अधिक श्रद्धालु हो जाते थे। क्योंकि स्वामी जी उनको अपने धर्म और वंश का मान करना सिखलाते थे। अपने धर्म की खूबियें बताते थे, जिससे वह अन्य धर्मावलम्बियों को उत्तर देने के योग्य हो जाते थे। इतिहासों से और प्रोफेसरों के व्याख्यानों से धार्मिक निन्दा के श्रवण से कुम्हलाये दिलों को स्वामी जी के व्याख्यानों ने फिर हरा भरा कर दिया। इस श्रेणी (पठित विद्यार्थियों) ने पहले पहल स्वामी जी के उपदेश को ग्रहण किया। इसी ने आर्यसमाज को पुष्टि दी और अब भी आर्य समाजों का यही अति सहायक हैं। इलाहाबाद में कुछ मास रह कर स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश रचा। और छपवाने के लिये राजा जयकृष्णदास जी को दे गये। वहां से बम्बई की यात्रा के लिये जबलपुर को ओर चल पड़े।

बम्बई की पहली यात्रा और आर्य समाज की स्थिति

पहली वार स्वामी जी कई प्रतिष्ठित गृहस्थियों की प्रेरणा से २६ अक्तूबर सन् १८७४ ई० को बम्बई में पहुंचे। एक सेठ गाड़ी लेकर स्टेशन पर आये हुए थे उन्होंने उनको बालकेश्वर पहाड़ी पर लेजा कर डेरा दिया। बम्बई में पहुंच निम्नलिखित आशय का विज्ञापन चार भाषाओं में छाप कर बटवाया। "जिसको धर्माधर्म सम्बन्धी विचार की अभिलाषा हो वह आवे और विचार करे" इस विज्ञापन के बटते ही सारे शहर में कोलाहल मच गया। और लोगों के झुण्डों के झुण्ड आने लगे। बम्बई में वल्लभाचार्य

सम्प्रदाय का बड़ा जोर था, इनको स्वामी जी ने कई वार चैलेन्ज दिये परन्तु किसी को साहस न हुआ कि आकर शास्त्रार्थ करें, हां एक पण्डित ग० न० मनुष्य ने वीस प्रश्न छपवा कर बांटे। जिनका उत्तर स्वामी जी ने विज्ञापन रूप में छपवा कर इस प्रकार दिया।

विज्ञापन पत्र

विदित हो कि जैसा कि स्वामी नारायण हैं वैसा मैं नहीं हूं। और जिस प्रकार जयपुर नगर के गोस्वामी ने हार मानी वैसा भी मैं नहीं हूं। बम्बई निवासी हरि के चरण अभिलाषी प० ग० न० नाम के गुप्त पुरुष के सं० १९३१ कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी शुक्रवार को ज्ञानदीपक यन्त्रालय से प्रकाशित कराये हुए २४ प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है।

१ प्रत्यक्षादि प्रमाणों को स्वीकार करता हूं।

२ चारों वेदों को प्रमाण मानता हूं।

३ परिशिष्ट को छोड़, ४ संहिताओं का प्रमाण मानता हूं। ब्राह्मण आदिकों को मैं मत की रीति से नहीं मानता। उनके कर्ता जो ऋषि हैं उनकी वेद विषयक सम्मति जानने के लिये विचारा करता हूं कि उन्होंने कैसा अर्थ किया और उनका सिद्धान्त क्या है।

४ इसे ३य, में समझ लेना।

५ शिक्षादि वेदांगों के कर्ता जो मुनि हैं उनकी वेद के विषय में कैसी सम्मति है, यह देखने को पढ़ता हूं उनको मत मान कर स्वीकार नहीं करता।

६ वेद वेदांग सम्बन्धी भाष्य और उनके जो आर्ष व्याख्यान हैं उनको मत मान कर स्वीकार नहीं करता। किन्तु परीक्षा के लिये कि (वह ठीक रचे गये हैं वा नहीं) मैं देखता हूं। वह मेरा मत नहीं है।

७ जैमिनी कृत पूर्व मीमांसा, व्यास प्रणीत उत्तर मीमांसा

उनको भी मत मान कर संग्रह नहीं करता। किन्तु उनके मत की परीक्षा के लिये ही देखता ।

८--पुराण तन्त्र ग्रन्थ इनके अवलोकन और अर्थों में श्रद्धा ही नहीं करता। इनके प्रमाणों की तो क्या कथा है।

९--सारी भारत और वाल्मीकि रचित रामायण का प्रमाण नहीं। क्योंकि लोक में बहुत प्रकार के व्यवहार हैं। उनके हाल का जानना ही उनका आशय है क्योंकि वे परलोक सिधार गये हैं।

१०-का उत्तर--भी ९म, में दिया गया।

११-का उत्तर--मनुस्मृति को मनु का मत देखने को पढ़ता हूं न कि इष्ट समझ कर।

१२--याज्ञवल्क्य और मिताक्षरा आदि का तो प्रमाण ही नहीं करता।

१३--का उत्तर बारहवें से समझ लेना।

१४-का उत्तर--विष्णु स्वामी आदि जो सम्प्रदाय हैं, उनका प्रमाण मैं लेशमात्र भी नहीं करता, वरंच उनका खण्डन करता हूं, क्योंकि वे सब सम्प्रदाय वेद विरुद्ध हैं।

१५ का उत्तर १४ से समझ लेना।

१६--मैं स्वतन्त्र नहीं हूं वरंच वेदानुयायी हूं और ऐसे समझना चाहिये, कि जड़ आदि षट् पदार्थों का जैसे वेद में कथन है वैसा मानता हूं।

१७--जगदुत्पत्ति जैसे वेद में लिखी है और जिसने की है, उसको उसी प्रकार मानता हूं।

१८--जिस समय से सृष्टि की उत्पत्ति हुई है, उस काल तक की कोई संख्या नहीं है। यह जानना चाहिये।

१९--वेदोक्त यज्ञादि कर्म यथाशक्य करने चाहियें।

२०--वेदोक्त रीति माननी चाहिये, अन्य नहीं।

२१--शाखाओं में प्रतिपादित कर्म वेदानुकूल तो प्रमाण और विरुद्ध अप्रमाण हैं।

२२—ईश्वर का कदापि जन्म मरण नहीं होता जिसका जन्म मरण होता है वह ईश्वर ही नहीं हैं, सर्व शक्तिमान् अन्तर्यामी, अनादि परिपूर्ण और न्यायकारी होने से।

२३—मैं संन्यासाश्रम में हूं।

२४—सद्धर्म विचार नामक पुस्तक जिस यन्त्रालय में छपाई है, उसका मत उसमें है मेरा उसमें आग्रह नहीं।

यदि हम आर्यावर्त्त वेदोक्त धर्म के विषय में प्रीति पूर्वक पक्षपात को छोड़ विचार करें तो सब प्रकार कल्याण ही है। यह मेरी इच्छा है, इसके लिये सदव नित्य सभा होनी चाहिये। जिस प्रकार बहुते धर्मों का नाश हो जाने वैसा सबको करना चाहिये। परन्तु १३, १४ और १५ प्रश्नों को पीसे को फिर पीसने के समान पुनरुक्ति दोष से दूषित को नहीं समझकर यह मैंने जाना, कि जिसको प्रश्न करने का ज्ञान नही, उसके समागम से उचित विचार किस प्रकार हो सकेगा। ऐसी मेरी मति है, क्योंकि जहां भोजन का ही सन्देह है, वहां घन का एकत्र होना असम्भव है, जिसने प्रश्न किये उसने अपना नाम भी नहीं लिखा, यह भी एक दोष है। ऐसा सज्जनों को समझना चाहिये इसमें स्वामी जी की सम्मति है। इसके अनन्तर जो कोई गुप्त नाम से प्रश्न करेगा उसका उत्तर उसी से दिलाऊंगा और जिस सम्प्रदाय को जो मानता है उसको सविस्तर जब तक न कहेगा तब तक उसका भी इसी रीति से उत्तर दिलाऊंगा।

प्रसिद्धकर्त्ता—स्वामी सम्पूर्णानन्द

कार्तिक शुक्ला ७, सोमवार (१६ नवम्बर १८७४)

इसके अनन्तर स्वामी जी ने एक और छोटा सा विज्ञापन छपवा कर प्रकाशित किया। जो कोई हमसे शास्त्रार्थ करना चाहे वह अपना नाम, अपना मत, अपना सम्प्रदाय बतला दे, तो हम उसको उत्तर देंगे छिप कर प्रश्न करना ठीक नहीं।

अन्त को व्याख्यान आरम्भ हुए, पहले घोबी तालाब पर एक अतीव विस्तृत मकान में व्याख्यान हुआ, जिसमें श्रोतागण की संख्या १० सहस्र के लगभग वर्णन की जाती है।

इसके उत्तर में पं० गुट्टूलाल मूर्त्तिपूजक ने लालबाग में एक व्याख्यान मूर्त्ति पूजन के मण्डन में दिया। इसके अनन्तर स्वामी जी के दो शास्त्रार्थ हुए, एक तो लायब्रेरी में पण्डितों से और २य, जयकृष्ण व्यास शिरोमणी वेदान्ती से नीलाम्बर सेठ के बाग में। इस यात्रा में स्वामी जी ने दो ट्रैक्ट छपवाकर प्रकाशित किये। १ वल्लभाचार्य मत खण्डन और २य वेदान्त मत खण्डन पर। अन्त को जब इसी प्रकार चर्चा करते कुछ काल व्यतीत हो गया तो कई मनुष्यों ने एक ऐसा समाज नियत करने की अभिलाषा प्रकट की जिससे स्वामी जी का मन्तव्य सदैव के लिये प्रचलित हो और उससे सदैव के लिए लाभ हो। स्वामी जी से ८ दिन पर्यन्त इस बात पर विचार होता रहा अर्थात् मार्गशीर्ष वदि प्रतिपदा स० १९३१ से ७ मार्गशीर्ष तक। लगभग ६० मनुष्यों ने हस्ताक्षर भी किये, परन्तु कई कारणों से (जिनमें हस्ताक्षर करने वालों की कायरता भी एक कारण था), समाज की स्थिति को प्रसिद्ध न किया, और स्वामी जी, गोपाल राव हरि देशमुख अहमदाबाद के जज की प्रार्थना से उनके पुत्र के साथ (जो बैरिस्टर एटला था) अहमदाबाद चले आये।

अहमदाबाद में जो भाटिया सेठ उनको स्टेशन पर लेने आया था, उसने उन्हीं दिनों में दो तीन लाख रु० की लागत से एक मन्दिर बनवाया था, वह स्वामी जी से अपने मन्दिर की श्लाघा करने लगा। स्वामी जी ने उसके व्यर्थ कथन पर अफसोस प्रकट किया। अन्त को उसने कहा कि मैं आपका पण्डितों से शास्त्रार्थ कराऊंगा। सो उसकी प्रेरणा से दो ढाई सौ पण्डित एकत्र हुए और पांच छः घण्टे शास्त्रार्थ होता रहा। जब वह मूर्त्ति पूजा सिद्ध न कर सके तो गोपालराव हरि देश मुख ने स्वामी जी की जय का फैसला किया।

अहमदाबाद से स्वामी जी राजकोट चले गये, इन दिनों में वहां एक गवर्नरी दरबार था, वहां दस बारह दिन व्याख्यान देते रहे, वहां के राजकुमार कालिज को देखा और प्रिन्सिपल साहब की प्रार्थनानुसार राजकुमारों को एक संक्षिप्त सा उपदेश दिया। आते समय प्रिन्सिपल

साहब ने ऋग्वेद की २ प्रतियां स्वामी जी की भेंट की।

१८ जनवरी स० १८७५ ई० राजकोट से चलकर २१ जनवरी को अहमदाबाद आ गये, और यहां सात दिन रह कर स्वामी जी नारायण मत का खण्डन करते रहे, फिर वहां से २९ जनवरी को वापस बम्बई को पधारे।

बम्बई में २य, बार आने पर समाज की स्थिति का विचार प्रवल हुआ। अन्त को वहुत से सोच विचार के पीछे लोगों के धर्म भाव और देश हित ने जोर दिया और कुछ पुरुषार्थी भाइयों ने समाज की स्थिति का विचार दृढ़ कर लिया। समाज के नियम बनाये गये, कई दिन तक उन पर विचार होता रहा, अन्त को चैत्र शुदि ५ञ्चमी सम्वत् १९३२ विक्रमी को (१० अप्रैल १८७५ ई०) सायंकाल के समय गिरगांव अर्थात् डाक्टर मानक जी के बगीचे में मिस्टर गिरधरलाल दयालदास कुठारी बी० ए० एल० एल० बी० की प्रधानता में एक पब्लिक जलसे में नियम पढ़कर सुनाये गये, और समाज स्थापित किया गया। वह नियम यह थे:—

(१) आर्य समाज सब मनुष्यों के हितार्थ अवश्य होना चाहिये।

(२) इस आर्य समाज में मुख्य (स्वतः) प्रमाण वेदों का ही माना जावेगा, साक्षी के लिये, वेदों के ज्ञान के वास्ते, और इसी प्रकार आर्य इतिहास के वास्ते, शतपथ ब्राह्मण आदि ४, वेदाङ्ग ६, उपवेद ४, दर्शन ६, और ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यान वेदों के आर्ष सनातन संस्कृत ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जायगा।

(३) इस समाज में प्रति देश के मध्य एक प्रधान समाज होगी और दूसरे शाखा प्रति शाखा होंगे।

(४) प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी। प्रधान समाज के अनुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार सदुपदेश के लिये पुस्तक होंगे और एक आर्य प्रकाश पत्र, यथाशक्य साप्ताहिक निकलेगा। यह सब समाज में प्रवृत्त किये जावेंगे।

(५) हर एक समाज में एक प्रधान पुरुष, २य, मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्रियें सब सभासद होंगे।

(६) प्रधान पुरुष उस समाज की यथावत् व्यवस्था का पालन करेगा और मन्त्री सबके पत्रों का उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लिखा करेगा।

(७) इस समाज में सत्पुरुष, सत्य नित्याचारी, सत्य आचरणी, और सर्व हितकारक समाजस्थ किये जावेंगे।

(८) जो गृहस्थ से अवकाश मिले सो जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इन समाजों की उन्नति के लिये करे। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति करें अन्यथा नहीं।

(१०) हर आठवें दिन प्रधान, मन्त्री और सब सभासद समाज मन्दिर में एकत्र हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

(११) एकत्र होकर सर्वदा स्थिर चित्त हो, परस्पर से पक्षपात छोड़कर प्रश्नोत्तर करें, फिर सामवेद गायन कर परमेश्वर, सद्धर्म, सत्यनीति और सदुपदेश के बाजा आदि के साथ गायन करें और व्याख्यान हों। फिर गायन फिर मन्त्रों का अर्थ फिर व्याख्यान फिर गायन आदि।

(१२) हर एक सभासद न्याय पूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से आर्यसमाज आर्य विद्यालय और आर्य प्रकाशपत्र के प्रचार और इनकी उन्नति के लिये आर्यसमाज धन कोष में एक सौ पीछे एक प्रीति पूर्वक देवे, अधिक देने से अधिक धर्म फल है। इस धन का उक्त विषयों में व्यय हो।

(१३) जो मनुष्य उक्त कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करे उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

(१४) इस समाज में वेदोक्त रीति से एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना की जावेगी। अर्थात् निराकार सर्व

शक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्व जगत् पिता, सर्व जगत् माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वभाव अनन्त, सुखप्रद और धर्मार्थ काम मोक्षप्रद, इत्यादि विशेषणों से परमात्मा की ही स्तुति, उसी के गुण कीर्त्तन, उसी की प्रार्थना, उसी से सब श्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना—उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षण वाले की ही भक्ति करनी उसके सिवा और कभी किसी की न करनी।

(१५) इस समाज में नैमित्तिक आदि अन्त्येष्टी पर्यन्त संस्कार वेदों से किये जावेंगे।

(१६) आर्य विद्यालयों में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन कराया जावेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्य शिक्षा सब स्त्री पुरुषों को दी जावेगी।

(१७) इस समाज में स्वदेश हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि का प्रयत्न किया जावेगा, एक परमार्थ और २ य, लौकिक व्यवहार इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति, तथा सब संसार के हित की उन्नति की जावेगी।

(१८) इस समाज में न्याय पक्षपात् रहित न्याय अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सद्धर्म वेदोक्त ही माना जावेगा। इससे विरुद्ध को यथाशक्य न माना जावेगा।

(१९) इस समाज की ओर से श्रेष्ठ लोग पवित्रोपदेश करने को भेजे जावेंगे।

(२०) स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिये भिन्न-भिन्न आर्य विद्यालय यथाशक्य हर एक नगर में खोले जावेंगे। स्त्रियों के लिये अध्यापिका स्त्रियें होंगे और सेवा प्रबन्ध भी स्त्रियों द्वारा ही किया जावेगा और पुरुष पाठशालाओं का पुरुषों द्वारा प्रबन्ध कराया जावेगा इससे विपरीत नहीं।

(२१) उन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्य समाज के अनुकूल पालन की जावेगी।

(२२) इस समाज में प्रधानादि सभासद परस्पर प्रीति के लिये अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि सब दुर्गुण छोड़कर उपकार सौहृदयता से सबसे सबको निर्वैर होकर स्वात्मवत् सम प्रीति करनी होगी।

(२३) विचार समय सब व्यवहारों में न्याय युक्त सर्व हित जो सत्य बात भली प्रकार विचार से ठहरे, उसी को सब सभासदों में प्रकट कर वही सत्य बात मानी जावे इसके विपरीत न मानी जावे। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

(२४) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूलाचरण करने वाला धर्मात्मा सतो गुणी हो उसको उत्तम समाज में प्रवेश करना, अन्य सज्जनों को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना होगा, परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना वरंच यह दोनों बातें श्रेष्ठ सभा सदों के विचार से ही की जावे और किसी प्रकार से नहीं।

(२५) आर्य समाज, आर्य विद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्य समाजार्थ धन कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान, आदि सब सभासदों का तन मन धन से यथावत् सिद्ध करें।

(२६) जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्य सभासद मिले तब तक और की नौकरी न करे न करावे। यह दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथावत् वरतें।

(२७) जब विवाह, पुत्र जन्म महालाभ या मृत्यु तथा अन्य समय कोई दान का हो तो आर्य समाज के लिये धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म काय और कोई नहीं है इसको जानकर यह कभी न भूलें।

(२८) इन नियमों से कोई नियम नया लिखा जावेगा या निकाला जावेगा, या न्यूनाधिक किया जावेगा, वह सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार, सब श्रेष्ठ सभासदों को सूचित करके ही यथायोग्य करना होगा।

उसी दिन अधिकारी भी चुने गये और नियम पूर्वक उत्सव आरम्भ हो गये। कुछ दिन पीछे स्वामी जी फिर अहमदाबाद चले गये, इनके चले जाने पर प्रतिपक्षियों ने शास्त्रार्थ के लिये फिर डंका मारा जिससे बम्बई समाज के अधिकारियों ने तार द्वारा स्वामी जी को बुलाया और पं० कमलनयन आचार्य को वकील द्वारा शास्त्रार्थ के लिये नोटिस दिया। यह शास्त्रार्थ ११ जून सन् १८७५ रविवार के दिन नियत हुआ। इस प्रकार शास्त्रार्थ के नियत हो जाने पर भी पं० कमलनयनाचार्य जी टालमटोला करके चले गये और शास्त्रार्थ न हुआ। इसके पश्चात् स्वामी जी ने उसी स्थान पर वेद मन्त्रों द्वारा मूर्त्ति पूजन का खण्डन किया। बम्बई में स्वामी जी ने पादरी विलसन को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, परन्तु वह नहीं आया अन्त को वह आप उनके स्थान पर गये और उनसे मिले वह बड़ी प्रतिष्ठा पूर्वक मिला।

२४ मार्च स० १८७६ ई० को एक और शास्त्रार्थ स्वामी जी का पण्डित रामलाल शास्त्री से हुआ, जिसको नदिया से बुलाया गया था, एक पण्डित जी भोजाऊ शास्त्री इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे, अन्त में शास्त्रार्थ की समाप्ति पर पण्डित जी ने फैसला दिया कि पं. रामलाल पाषाण पूजा सिद्ध नहीं कर सके।

१४ अप्रैल १८७६ ई० को भाई जीवन दयाल नरका दयाल ने एक विज्ञापन इस विषय का प्रकाश करवा के बटवाया कि मैं पहले मूर्त्ति पूजक था, दयानन्द जी की दया से अब मेरी श्रद्धा मूर्त्ति पूजन से जाती रही है। परन्तु अब भी यदि कोई पण्डित मूर्त्ति पूजन वेद से सिद्ध कर देवे तो मैं १२५) भेंट करूंगा। परन्तु यह किसकी सामर्थ्य थी कि मध्याह्न समय के दो पहर को रात्रि के समान कर दिखलावे कोई पण्डित सम्मुख न हुआ और स्वामी जी १ मई स० १८७६ ई० को फर्रुखाबाद की ओर चल दिये।

बम्बई में स्वामी जी पर दो वार धावा हुआ और यह दोनों आक्रमण वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के गुरु जी की ओर से थे। एक बार तो गुरुजी ने स्वामी जी के नौकर को प्रेरणा की कि स्वामी जी को

विष दे दे, इसके बदले में १०००) रु० का रुक्का भी उसको लिख दिया और ५) रु० नकद दे भी दिये, जो उसने लाकर स्वामी जी को दे दिये। जब इस प्रकार भी कार्य सिद्ध न हुआ तो उसने चार पांच बदमाश नियत किये जो सैर के समय स्वामी जी के पीछे ताक में लगे रहते, परन्तु इनको स्वामी जी पर वार करने का अवसर न मिला या यह समझें कि साहस न पड़ा।

स्वामी जी २० जून १८७५ ई० को बम्बई से पूना को आ गये, और यहां दो मास ठहर कर उपदेश करते रहे, वैष्णव शास्त्री से विधवा विवाह के विषय में शास्त्रार्थ हुआ। दक्षिणी हिन्द में पूना मूर्त्ति पूजन की राजधानी समझनी चाहिये। इससे बढ़कर पूने के निवासी दिल चले (साहसी) भी हैं। स्वामी जी के आने पर बड़ा फसाद हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि दो मनुष्यों को कैद काटनी पड़ी। स्वामी जी ने यहां १५ व्याख्यान दिये, जो उसी समय गुजराती भाषा में प्रकाशित हो गये और जिनको अब लाला मुन्शीराम जी ने उपदेश मंजरी के नाम से प्रकाशित किया है। उन उपदेशों में ५ व्याख्यान केवल ऐतिहासिक थे, एक अपने संक्षिप्त जीवन चरित्र में था, और बाकी ९ धर्म सम्बन्धी थे। एक महाराष्ट्री जी ने १८८३ ई० के एक पत्र में स्वामी जी की श्लाघा में पूने की यात्रा के विषय ऐसा लिखा है।

"१८७५ ई० के जून व जुलाई में प्रतिष्ठित धनियों और विद्वानों और गृहस्थ मंडली के बुलाने पर श्रीमान् स्वामी जी पूने में पधारे, उस समय यहां हिन्दु कलब में इनके १५ या १६ व्याख्यान हुए, इनमें श्रोताओं की बड़ी भीड़ थी। वक्ता के अपूर्व उपदेश से और कथन का उत्तम ढंग से उस समय यहां के प्रतिष्ठित मनुष्यों ने इनका बड़ा मान किया, एक बार तो इनको हाथी पर चढ़ाकर पूना के सारे नगर में फिराया। परन्तु यहां के मूर्ख, शरीर, बेविचार और स्वामी जी के विद्वेषी इनका सत्कार न सहार सके। इन लोगों ने जो कुछ नहीं करना था वह भी किया। इसलिये अन्त में पुलिस की

सहायता लेनी पड़ी।" इस लेख से यह भी विदित होता है कि स्वामी जी का गोपाल कृष्ण भंडार कर से जो संस्कृत के बड़े विद्वान् गिने जाते हैं किसी बात पर विवाद हो पड़ा, जिससे भण्डारकर जी स्वामी जी के सदैव विरुद्ध लिखते रहे और उनके विरोधियों को सहायता भी देते रहे।

केसरी दरबार देहली जनवरी १८७७

स्वामी दयानन्द जी मई १८७६ ई० को बम्बई के फरुंखाबाद में आये और लगभग छः सात मास पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध में प्रचार करते रहे। फरुंखाबाद, जौनपुर, अयुध्या, लखनऊ शाहजहांपुर, बांस बरेली, करनवास, मुरादाबाद, आदि आदि स्थानों पर गये और इन्हीं दिनों में वेद भाष्य भूमिका भी लिखते रहे और शास्त्रार्थ भी करते रहे। जैसा कि सृष्टि उत्पत्ति के विषय में एक पादरी जी से शास्त्रार्थ हुआ। मुरादाबाद में नाम मात्र का एक समाज भी खुला, जो कि थोड़े काल के पीछे टूट गया। अन्त को दिसम्बर सं० १८७६ ई० में केसरी दरबार के अवसर पर स्वामी जी प्रचारार्थ देहली पहुंचे। यह वह दरबार है कि जिसमें राजराजेश्वरी (मलका) इंगलस्थान की महारानी ने भारत महारानी की पदवी स्वीकार की थी। भारत के समस्त राजा महाराजा (एम्प्रैस) बड़ी सज धज से वहां आये हुए थे। यह दरबार सरकार अंग्रेजी के सब दरबारों में सबसे शायद बड़ा दरबार गिना जाता है। इन दिनों में लार्ड लिटन साहिब गवर्नर जनरल थे। देहली में पधार कर स्वामी जी देहली से नैऋत कोण अजमेरी दर्वाजे के बाहर कुतब की सड़क पर खेमों में उतरे। इस बाग की चारों ओर अवध के रईसों के तम्बू लगे हुए थे। स्वामी जी ने इस बाग के दर्वाजे पर एक बड़ा बोर्ड लगवा दिया, जिस पर लिखा हुआ था "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास स्थान" बाग में प्रतिदिन लोग आते थे और उपदेश सुनकर चले जाते थे। स्वामी जी ने विज्ञापन छपवाकर राजा महाराजा रईसों के डेरे पर पहुंचा दिये

और चैलेंज दे दिया कि जिसका जी चाहे--धर्म अधर्म का निर्णय कर ले। उनकी अभिलाषा थी कि समस्त राजा महाराजा एक दिन इकट्ठे होकर उनका व्याख्यान सुनें। सो महाराज इन्दौर ने कुछ यत्न भी किया परन्तु ऐसे राज दरबार के अवसर पर रईसों को इस काम के लिये अवकाश कहां था। इस अवसर पर स्वामी जी ने [एक खास-खास चुने हुए देश के प्रसिद्ध प्रतिष्ठित अग्रणियों का अधिवेशन इस आशा से कि यदि हो सके तो कोई ऐसी रीति सोची जावे, जिससे सब देश हितैषी मिलकर काम करें। यह अधिवेशन स्वामी जी के निवास स्थान पर हुआ और इसमें निम्नलिखित सज्जन उपस्थित थे।

१ मुन्शी कन्हैयालाल अखबारी, २ बाबू नवीनचन्द्र राय, ३ बाबू केशवचन्द्रसेन, ४ इन्दरमन मुरादाबादी, ५ मौ० सय्यद अहमद खां साहब, ६ बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और ७ स्वामी जी महाराज।

कहा जाता है कि इस सभा मे स्वामी जी ने यह तजबीज पेश की कि "यदि हो सके तो हम सब लोग एक मत हो जावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें, तो आशा है कि शीघ्र ही सुधार होगा।" "इण्डियन मिरर" कलकत्ता में इस सभा के विषय में निम्न लिखित समाचार प्रकाशित हुआ था।

'हमने सुना है कि एक पापूलर मीटिंग स्वामी दयानन्द जी के स्थान पर देहली में इसलिये हुई थी, कि इण्डिया के आधुनिक रिफार्मरों मे परस्पर संहिता (इत्तफाक) का नियम नियत किया जावे। हमारे मिनिस्टर (बाबू केशवचन्द्र सेन) भी उसमें विराजते थे।" बाबू नवीनचन्द्र राय जी ने अपने रिसाले ज्ञानप्रदशन ८५ ई० के में इस कमेटी के विषय में लिखते हुए वर्णन किया था कि चूंकि "स्वामी जी के साथ मूल विश्वासों में हम लोगों का विभेद था इसलिये जैसा वह चाहते थे एकता न हो सकी।"

चान्दपुर का मेला

देहली दरबार से अवकाश पा स्वामी जी मेरठ व सहारनपुर में उपदेश करते रहे, सहारनपुर में स्वामी जी ने कई व्याख्यान दिये। ब्राह्मणों ने मन्दिर के स्वामी (जहां स्वामी जी ठहरे हुए थे) को दिक्क करके स्थान खाली कराने को मजबूर किया। सहारनपुर से स्वामी जी चांदपुर के मेले में पधारे, यहां एक बड़ा शास्त्रार्थ हुआ। मौलवियों और ईसाइयों से यह शास्त्रार्थ आवागमन विषयों पर तीन दिन निरन्तर होता रहा स्वामी जी चाहते थे कि ८ दिन तक विचार हो, परन्तु प्रतिवादियों ने यह स्वीकार न किया। इसका सविस्तर वर्णन भिन्न प्रकाशित हो चुका है इसलिये पाठक महाशय वहीं देख लें। हम पुस्तक वृद्धि के भय से उसको यहां प्रकाशित नहीं कराते।

पंजाब में धम उपदेश और आर्य समाजों की स्थिति

देहली के कैसरी दरबार में मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी रईस लुधियाना, पंडित मनफूल जी लाहौर के रईस और मुन्शी हरसुखराय जी कोहनूर अखबार के मालिक स्वामी दयानन्द जी से मिले और इन्होंने उनको पंजाब में पधारने की प्रार्थना की। सो चान्दपुर के मेले से अवकाश पाकर स्वामी जी ३ मार्च १८७७ ई० को सीधे लुधियाने में आ गये, जहां उनके उतरने आदि का प्रबन्ध अलखधारी जी ने आगे ही किया हुआ था।

मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी जी के नाम से हमारे पाठक महाशय अवश्य परिचित होंगे। आप एक स्वतन्त्र विवेचक मनुष्य थे, इनकी रुचि वेदान्त की ओर अधिक थी, मूर्त्ति पूजन और मिथ्या विश्वास के परम विरोधी थे, पञ्जाब निवासी उनकी रचना, और उनकी जाति सेवा को भली भांति जानते हैं। लुधियाने में स्वामी जी २० दिन के लगभग ठहरे और उपदेश देते रहे। पादरी लोग भी आकर प्रश्नोत्तर करते रहे और मिस्टर कारस्टीफन साहब (एक्स्ट्रा जुडीशल

असिस्टेण्ट कमिश्नर लुधियाना) भी उनके दर्शन को आये।

लुधियाना से रवाना होकर स्वामी दयानन्द जी १९ अप्रैल सन् १८७७ ई० महाराज रणजीतसिंह पंजाब केसरी की राजधानी लाहौर में पधारे, मुन्शी हरसुखराय व पं० मनफूल जी उनके स्वागत के लिये रेलवे स्टेशन पर गये हुए थे। इन्होंने इनको लाला रतनचन्द दाढ़ी वाले के बाग में उतार दिया। जहां वह प्रतिदिन उपदेश करते रहे। पहला साधारण उपदेश स्वामी जी का डब्बी बाजार बावली साहब में २५ अप्रैल सं० १८७७ को हुआ जिसमें इतने लोग एकत्र हुए, कि पुलिस को प्रवन्ध करना पड़ा, इस व्याख्यान का विषय "वेद और वेदोक्त धर्म था" २य व्याख्यान उनका वहीं २७ अप्रैल को हुआ और उस दिन पहिले से भी अधिक मनुष्य इकट्ठे हुए।

इन व्याख्यानों का वर्णन निम्नलिखित संक्षेपों से प्रतीत होगा, जो उस समय की प्रेस रिपोर्टों से लिये गये हैं।

२८ अप्रैल सन् १८७७ ई० को कोहनूर में यह प्रकाशित हुआ था कि "एक प्रसिद्ध वेद वेत्ता स्वामी दयानन्द सरस्वती जी देहली से लुधियाने होते हुए १९ अप्रैल को लाहोर में पधारे हैं, रतनचन्द के बाग में विराजते हैं। इन्होंने २५ अप्रैल को बहुत से ब्रह्म और सद्धर्मियों आदि २ की प्रेरणा से "वेदोक्त धर्म" विषय पर ६ बजे सायंकाल से ८ बजे सायं तक बावली जी में व्याख्यान दिया। जिसके सुनने के लिये लगभग ५०० मनुष्य इकट्ठे हुए होंगे। उक्त व्याख्यान में पहिले तो स्वामी जी ने वेद, मन्त्रों (श्रुतियों) की व्युत्पत्ति और इनके अक्षरार्थ व्याकरण द्वारा प्रतिपादन किये। और कहा कि यह चारों वेद सृष्टि के परमाणुओं के समान अनादि हैं।

जब सृष्टि होती है तब यह भी प्रकट हो जाते हैं, और प्रलय के समय उसी में लीन हो जाते हैं जैसे कि वृक्षांकुर बीज में लीन होता है। ज्ञान रूप ईश्वर ने हम को ज्ञानी बनाने के लिये अग्नि, आदित्य, वायु और अंगिरस् चार महात्माओं के हृदय में प्रकाश कर सर्व साधारण में प्रकट किया। फिर प्रतिपादन किया कि वेद जो अनादि

है और उसको माननीय सब मानते हैं, जिससे यह बात प्रमाणानुसार सिद्ध होती है, कि आदि में केवल यही धर्म प्रचलित था और सब भिन्न २ धर्म इन्हीं से निकले हैं, वेदों की ११२७ शाखा हैं जिनमें असंख्य विद्याओं के नियम लिखे हैं। ऐसा कोई इल्म या हुनर नहीं जिसका वर्णन वेदों में न हो, जैसा कि भूमण्डल का भ्रमण, सूर्य में आकर्षण शक्ति के होने के नियम आदि २ वेदों में विद्यमान है और इस बात की वेदमन्त्र साक्षी देते हैं, कि चाहे उनके अर्थ मूर्खों ने उल्टे समझ रक्खे हैं।

राजा भोज के राज्य में जिसको लगभग १४ सौ वर्ष हुए हैं ऐसे विमान जारी थे, जो एक घण्टे में ५५ मील चलते थे, और जिसमें शहर के शहर (असंख्य मनुष्य) अपने असबाब सहित आकाश मार्ग से एक देश से दूसरे देश को जा सकते थे। और एक पंखा ऐसा रचा गया था जो एक बार कुञ्जी देने से १ मास तक अपना कार्य करता रहता था।

वेद ३ भागों में विभक्त हैं। उपासना, ज्ञान और कर्मकाण्ड। इनसे मनुष्य की हर प्रकार की चेष्टा का आशय है, उपासना से सब प्रकार का पूजन व स्तुति पाठ आदि, ज्ञान से बुद्धि और विद्या शक्ति से आशय है। परन्तु जैसे चेष्टा तीनों भागों में विभक्त हैं वैसे ही ज्ञान भी ; और इसी लिये जो चेष्टा बुद्धि के सहारे की जाती है, उसका नाम धर्म है और इसके विपरीत अधर्म। धर्म का २य अर्थ न्याय भी है, अर्थात् न्याय में धर्म और धर्म में न्याय हैं। चारों वेदों में २० सहस्र के लगभग ऋचा है। यह जो प्रसिद्ध है कि देवताओं की विशेष जाति थी, वास्तव में देवता का तात्पर्य बुद्धिमान् और आचारी मनुष्य है। प्राचीन समय में उनका पूजन होता था। जैसा कि शास्त्रों में लिखा है कि स्त्रियों का पूजन चाहिये, इससे यही मतलब है कि उनको आदर सत्कार कर सदा प्रसन्न रखना चाहिये। विश्वकर्मा एक महा-बुद्धिमान् सब प्रकार के शिल्प का बानी था, कोई देह हीन नहीं था। जैमिनी आदि ऋषियों ने वेदों का सार और आशय शास्त्रों और

स्मृतियों में प्रतिपादन किया है। कर्मकाण्ड का अधिक लक्षण देखना चाहो तो जैमिनी प्रणीत कर्मकाण्ड के १२ अध्याय पढ़ो। पूजन यज्ञ का नाम है, जो वेदोक्त किया जाता है। वह यज्ञ और अग्निहोत्र दुर्गन्धित, महामारी जनक वायु और वर्षा जल की शुद्धि के लिये प्रातः सायं किये जाते थे, अर्थात् १ सेर घृत में १ रत्ती कस्तूरी १ माशा केसर तथा अन्य नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थ मिला कर प्रत्येक नर नारी बारह बारह आहुतियां अग्नि में देते थे। यह हवन जलवायु की शुद्धि लिये के पर्याप्त समझा जाता था, जो वायु मनुष्यों के सड़े हुए बुखारों (प्रति श्व सों) से रात व दिन में दुर्गन्धित हो जाती थी, और जो कई जीवों के मल मूत्र से बुखार उत्पन्न होते थे उसके लिये पक्ष मास और पूर्णमासी के दिन एक बड़ा हवन होता था। जिसकी सुगन्धित पवित्र वाष्प से वह बुखार भी शान्त हो जाते थे, और प्रायः अन्य बुखार सग्रह की शान्ति के लिये षाण्माहिक और वार्षिक बड़े २ हवन भी किये जाते थे। जिसको अब दीपमाला और होली कहते हैं, और यह रीति उस समय से चली आती है। इस नियम से बुखारों के शुद्ध होने से, जैसी व्याधियें और आपत्तियें इस देश में होती हैं, उस समय इनका नाम निशान भी न था, और इसी का नाम पुरुषों का पुरुषार्थ था। यह जो प्रसिद्ध है, कि ब्राह्मणों के बिना वेदों का पढ़ना मना है, यह बात अनभिज्ञ मनुष्यों की स्वार्थता से सम्बन्धित है। जिसको इस पर विश्वास न हो वह यजुर्वेद के २६ अध्याय का २य, मन्त्र पढ़ ले, जिसका भाव यह है, कि ईश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है, कि जैसा मैं तुमको उपदेश करता हूं, वैसा ही तुम भी सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब लोगों को उपदेश करते रहो। खेद कि अपने वेदों का कोई नहीं देखता, और दूसरों के कहने पर भेड़ा चाल चल रहे हैं, अंधे का अन्धा मार्ग द्रष्टा होता है। इसलिये दोनों अज्ञान कूप में पड़े हुए हैं, स्वार्थता फैल रही है। जिसका अन्न खाया जाता है उसी से कृतघ्नता की जाती है। वेदों के असली अर्थों को न समझ कर जो चाहते हैं सो वेदोक्त वर्णन कर देते हैं। ऐसे कुपथ दरसाने वालों से

तब ही छुटकारा हो सकता है, जब कि वेद विद्या का प्रचार भली भांति हो। वैसे ही कई मूर्ख मनुष्यों ने वेदों के रूपक की रीति पर वर्णित किये हुए नियमों को पुराणों में धर्म सम्बन्धी कथा के नाम से नियत किया है। जैसा कि चन्द्रमा का गौतम की स्त्री से भोग करना, ब्रह्मा जी का अपनी कन्या के पीछे कामातुर होकर भागना आदि २ लिखा है। अब मैं आज का व्याख्यान समाप्त करता हूं। शेष वर्णन आगामी उत्सव पर शुक्र के दिन इसी स्थान में कहूंगा।

अखबार आम २ मई १८७७ में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था।

"एक सप्ताह से अधिक हुआ है कि यहां दयानन्द सरस्वती जी पधारे हुए हैं। यह साधु भेष में उपदेश करते फिरते हैं, चारों वेद इनके जिह्वाग्र हैं और सारे संसार की विद्या इनमें विद्यमान है, कोई विषय ऐसा नहीं जो इन पुस्तकों से बाहर हो, हिन्दुस्थान के प्राचीन निवासी प्रत्येक विद्या (हुनर) में निपुण थे। रेल चलाना यह जानते थे, तार खबर यह पहचानते थे। अमरीका से वह अभिज्ञ थे, चिकित्सा ज्योतिष आदि इनके यहां सब पूर्ण थे, परन्तु इनके बहुत से पुस्तक नष्ट हो गये, और फूट ने इनकी यह अवस्था कर दी जो आज हम देखते हैं। वेदों में मूर्त्ति पूजा का कहीं वर्णन नहीं और ना ही सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि की पूजा का कथन है, जो मनुष्य ऐसा समझे हुए हैं वह बड़ी भूल पर हैं, स्वामी जी वेद की टीका भी लिख रहे हैं और उसके कई भाग छप भी चुके हैं। इनकी दृष्टि में वैदिक धर्म ही एक सत्य धर्म है।

हमने भी दो चार व्याख्यान स्वामी जी के सुने हैं, सत्य तो यह है, कि आज इनके तुल्य भारत में वेदों के समझने वाला कोई नहीं सुना जाता है। परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वेद मन्त्रों की जो टीका वह करते हैं वही ठीक है, क्योंकि इन पुस्तकों की टीका जो अन्य आचार्यों ने की है, स्वामी जी की टीका उनसे भिन्न है। स्वामी जी हिन्दुस्थान के नव शिक्षित पुरुषों से इस बात में एक मत हैं, कि जाति कुछ नहीं है। इनके विचार में ब्राह्मण वही हैं जो ब्राह्मणों के से

काम करें अन्यथा वह शूद्रों से भी बहुत बुरे हैं, और शूद्र शब्द का अर्थ मूर्ख है, आपस में खाने पीने का यह प्रचार जो आज कल इस देश में प्रचलित है, और एक समय से चला आ रहा है, वह इनकी दृष्टि में झूठा है। यह कहते हैं कि वेदों में इस रीति (छूतछात) का नाम नहीं। विधवा विवाह उचित है। छोटे २ लड़के लड़कियों का विवाह नहीं करना चाहिये। इन सभ्यता के मन्तव्यों ने ब्राह्मणों को स्वामी जी का शत्रु बना दिया है। परन्तु उनको इनकी कुछ परवाह नहीं वह अपने काम में कटिबद्ध हैं—

जो लोग इस देश के शुभाकांक्षी हैं, और मन से इसकी उन्नति चाहते हैं, उनको उचित है कि वे तन मन धन से स्वामी जी की सहायता करें।"

इन व्याख्यानों के अनन्तर दो लेक्चर स्वामी जी ने ब्रह्म मन्दिर अनारकली में दिये। जिनमें वेदों का ईश्वर कृत होना, और आवागमन के विषय को सिद्ध किया गया। इन व्याख्यानों से लाहौर में बड़ा जोश फैल गया। ब्राह्मणों में तो कोलाहल मच गया। और चारों ओर स्वामीजी के उपदेशों की धूम मच गई। शहर में यही चर्चा थी। ब्राह्मणों ने दीवान भगवानदास से शिकायत की, कि आपके मकानमें ठहरकर स्वामी दयानन्द मूर्ति पूजा का खण्डन करताहै, ब्राह्मणों और देवताओं की निन्दा करता है। दीवान जी में इतना साहस कहां था, कि वह ब्राह्मण महाशयों को झाड़ते। उन्होंने तत्काल अपना स्थान खाली कराने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी के अनुयायी ने डाक्टर रहीमखां की कोठी अनारकली में इनके ठहरने का प्रबन्ध किया, और स्वामी जी बाग से डाक्टर साहिब की कोठी में आये, यह कोठी इतनी विस्तृत थी कि यहीं व्याख्यानों का प्रबन्ध भी किया गया और आगे को व्याख्यान होने लगे। इन दिनों की कार्यवाही प्रकट करने को हम फिर उन दिनों के अखबारों का संक्षेप लिखते हैं।

(५ मई सं० १८७७ ई० का कोहनूर)

"स्वामी दयानन्द जी अभी यहीं हैं और डाक्टर रहीमखां की

कोठी में उतरे हुए हैं, कभी २ वेदोक्त धर्म पर श्रोतागण की इच्छानुसार उपदेश करते हैं। इन उपदेशों के सुनने से लोगों के दो भाग बन गये हैं, एक वह जो उनके उपदेशों को ठीक और लाभदायक मानते हैं और २य, वह जो झूठे कपोल कल्पित समझ कर इनसे विरोध रखते हैं। पहिला विभाग तो नव शिक्षित नौकरी करने वालों का है २य, पुरानी रीति वाले वह मनुष्यों का है। इसके परिणाम के विषय में अभी हम कुछ नहीं कह सकते परन्तु यह अवश्य देखने में आता है कि अनुयायी विभाग उन्नति पर है और विरोधी विभाग अवनति पर है। जो कुछ यहां हो रहा है वह उसी ढंग पर है जैसा पिछले सप्ताह को वर्णन किया था।"

इससे भी सविस्तार वर्णन रसाला मादर हिन्द जून १८७७ में जो छपा था, इसके सम्पादक पण्डित शिवनारायण अग्नि होत्री थे, ऐसे लिखते हैं।

"१९ अप्रैल १८७७ को स्वामी दयानन्द सरस्वती लुध्याने से सायंकाल लाहौर में पधारे और रत्नचन्द दाहडी वाले के बाग में उतरे, कई मनुष्य उनके आगमन से पहिले ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब इनके आगमन की खबर मिली तो जन समुदाय आने लगा। ब्राह्म लोग विशेष करके उनके आगमन से प्रसन्न हुए क्योंकि इनकी ओर से यहां आगमन की अधिक प्रेरणा की गई थी। ४ दिन लोग वहीं स्वामी जी के पास जाते रहे फिर यह निश्चय हुआ कि पण्डित जी शहर में किसी योग्य स्थान में लोगों को धर्मोपदेश, जो कि इनके जीवन का मुख्य उद्देश्य है दें। सो सबकी सम्मति से बावली साहिब उपदेश के लिये स्थान नियत हुआ क्योंकि यह स्थान विस्तृत और शहर के मध्य में है। सो नियत होने पर विज्ञापन बांटे गये। और पण्डित जी ने वहां वेद वर्णन विषय पर व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान को सुनने के लिये मनुष्य संग्रह बहुत हुआ। क्योंकि यह प्रसिद्ध ही था कि पण्डित जी मूर्तिपूजा का खण्डन करतेहैं, इसलिये यहां की पुरानी टकसाल के लोग अधिकतर ब्राह्मण जिनकी उपजीविका का

बड़ा भाग मूर्ति पूजन पर निर्भर है, वे व्याख्यान से पूर्व ही इनके शत्रु बन गये और व्याख्यान होते ही इन्होंने कोलाहल मचाना आरम्भ कर दिया यहां तक कि यदि पुलिस का प्रबन्ध न किया जाता तो फसाद के हो जाने का भय था। इसके अनन्तर एक व्याख्यान उनका वहां और हुआ फिर यह निश्चय किया गया कि यहां प्राय. शोर होता है और फसाद होने का भी भय है इसलिये आगे से ब्राह्मसमाज में इन के व्याख्यान हुआ करें सो दो व्याख्यान ब्रह्म मन्दिर में भी हुए। वहां किसी प्रकार का झगड़ा फसाद न हुआ और आनन्द से सबने लैक्चर सुना, परन्तु इसी अवसर में जिस बाग में आप उतरे थे उसके स्वामी ने रईस होकर और पहिले आज्ञा देकर भी पक्षपाती हो स्थान खाली करा लेने को कहला भेजा। आनन्द को स्थान की क्या कमी थी। स्वामी जी के शुभ भिलाषियों ने इससे भी उत्तम कोठी का प्रबन्ध कर दिया. यह कोठी खानबहादुर डाक्टर रहीमखां साहिब की थी यह साहिब. भद्र स्वभाव और दयालु प्रकृति थे इनके उक्त गुणों की साक्षी इसी से प्रतीत हो रही है, जो कि मुसलमान होने पर भी अपनी कोठी इनके मांगने से स्वामी जी के लिये दे दी। इससे डाक्टर साहिब की कृतज्ञता के पण्डित के अनुयायी सदैव अनुग्रहीत रहेंगे। यह कोठी बड़ी विस्तृत थी इसलिये व्याख्यानों के लिए भी यही स्थान उचित समझा गया, सो अब से यहीं व्याख्यान होने लगे।

यहां आकर स्वामी जी ने इस वेग से मूर्ति पूजा के खण्डन में ऐसे प्रबल उपदेश किये कि जिनसे यहां के ब्राह्मणों में विशेष और अन्य लोगों में साधारण रूप से जोश उत्पन्न हो गया। ब्राह्मणों ने जब देखा कि बहुत सी भेड़ें उनके पंजे में से निकल गईं और निकलती जा रही हैं, तो वह चुप न रह सके। उन्होंने भी शहर के प्रतिष्ठित विद्वान् ब्राह्मणों की कमेटी की। इन पण्डितों ने सत्य सभा के आचार्य पण्डित भानुदत्त जी को बुलाया क्योंकि पण्डित भानुदत्त जी एक ऐसी सभा के आचार्य थे जिसका निराकारोपासना के प्रचार का उद्देश्य था, और साथ ही वह यहां के पढ़े-

लिखे मनुष्यों में प्रसिद्ध थे कि वह मूर्ति पूजा को अच्छा नहीं जानते, और साथ ही जब स्वामी जी आये तो यह उनके पास आया जाया करते थे। सभा के सब पण्डितों ने मिलकर इनसे बहुत कुछ झगड़ा किया कि तुम दयानन्द सरस्वती का मत रखते हो। पण्डितों का यह कहना था कि पण्डित जी घबराये और कहा कि मेरा मत उनके अनुसार क्यों होना था। मेरा वही मत है जो आप लोगों का है यदि आप उनके विपरीत कुछ कहना चाहते हैं तो मैं तन मन से आपके साथ हूं। यह सुन सब प्रसन्न हो गये और उक्त पण्डित जी को इस सभा का मन्त्री बना दिया।

पण्डित जी की इस सभा में (जिसका मूर्ति पूजा मण्डन और वेदानुकूल करणीय सिद्ध करना उद्देश्य था) मिलने की खबर लोगों को मिली तो पण्डित जी के मन्तव्य को पूर्ण रीति से समझने वाले लिखे पढ़े मनुष्यों को बड़ा विस्मय हुआ। हमें विशेष करके यह सुन विस्मय ही न हुआ वरंच खेद भी हुआ क्योंकि उक्त पण्डित जी हमारे विशेष मित्र थे। और जब कभी इनसे इस विषय पर बातचीत होती तो कभी मूर्ति पूजा का मण्डन न करते जैसा कि कुछ दिन पहले उन्होंने हमसे यह भी वर्णन किया था, कि पण्डित दयानन्द सरस्वती जी चाहते हैं कि मैं उनके साथ रहूं और उपदेशक के समान उनके साथ २ लोगों को उपदेश देने में उनके इस जातीय सुधार के काम में सहायक बनूं। परन्तु मैं गृहस्थ के प्रेम में कुछ ऐसा फसा हुआ हूं कि चाहे वह मेरे और मेरे परिवार के लिये पूर्ण निर्वाह का प्रबन्ध भी कर देने का भार अपने पर लेते हैं और मेरा मन भी इस काम को करना चाहता है, तो भी मेरे में इतना (साहस) दिलेरी उत्पन्न नहीं हुई कि मैं उसके साथ इस उत्तम कार्य में सहायक बन सकूं। हमारे पाठक इससे पूर्ण निश्चय कर सकते हैं कि पण्डित साहिब किसी लाभ को देखकर मूर्ति पूजक पण्डितों की श्रेणि में मिल कर उनकी सभा का मन्त्री बनना स्वीकार किया। इतना ही नहीं

साहिब भी उसी समय उसी बाग में थे और दूर से सुन रहे थे। स्वामी जी को किसी मनुष्य ने कहा कि स्वामी जी आपके ठहरने को न कोई हिन्दू न मुससमान और न ईसाई स्थान देता है, नवाब जी ने कृपा करके कोठी दी आप यहां भी इसलाम का खंडन करते हैं। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "कोठी में ठहरने के सुख के लिये मैंने अपने धर्म को बेच नहीं डाला, मैं किसी के भय से सत्य बात के प्रकट करने से नहीं रुकता, चाहे ऐसा करने में मुझे क्लेश भी क्यों न हो।

आर्य समाज लाहौर के उत्सव, पहिले पहल सत्सभा में होते रहे, जब स्वामी जी ने वहां भी मूर्ति पूजन व पुराणों का खण्डन आरम्भ किया तो सत्सभा के सभ्य भी डर गये और उन्होंने आर्य समाज के सभ्यों को नोटस दिया, कि अगले सप्ताह आप यहां अपना जलसा न करें, सो फिर आर्य समाज ने अपना स्थान अनारकली में किराये पर ले लिया। यह वही स्थान था जिस में अब भारत इन्शूरन्स का दफ्तर है, और जिसमें देर तक ट्रब्यून अखबार का यन्त्रालय रहा था।

स्वामी दयानन्द जी का लाहौर में आना और आर्य समाज को स्थापित करना, उन कामों में है जिनसे इतिहास बनता है, जिनसे वंश की काया पलट जाती है, जिससे देश और वंश में विपर्यय हो जाते हैं, जिससे समय इधर का उधर हो जाता है। अभी वह समय नहीं आया कि हिन्दू इतिहास लेखक इस समय को उस प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखें, जिससे देखना उचित है। परन्तु दूरदर्शी देखते हैं, कि आर्य समाज लाहौर की स्थिति का प्रभाव क्या हुआ और क्या होगा। हम भी इस समय इस विषय पर अधिक लिखना उचित नहीं समझते। श्री स्वामी दयानन्द जी पंजाब में एक वर्ष कुछ मास से अधिक नहीं रहे, परन्तु इतने अवसर में ही जो बीज उन्होंने बोया, वह आज एक बड़े वृक्ष का रूप धारे है, जिसकी भिन्न २ शाखाओं से नाना प्रकार के फल फूल फलते हैं।

अमृतसर

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज दो वार अमृतसर पधारे,

पहिली वार तो ५ जुलाई सन् १८७७ से १२ सितम्बर सन् १८७७ तक और २य, वार १५ मई सन् १८७८ से ११ जुलाई सन् १८७८ तक रहे।

पहिली वार सरदार दयालसिंह मजीठिये ने उनके निवासादि का प्रबन्ध किया, और २य, वार तो आर्य समाज ही स्थापित हो चुका था। स्वामी जी के उपदेशों से पहिली वार ही १२ अगस्त सन् १८७७ को अमृतसर में आर्य समाज नियत हो गया। इस समय लाहौर समाज के भी दो सभ्य गये हुए थे। स्वामी जी ने अपने हाथों से हवन कराया, फिर उपासना कराकर उपदेश दिया जिसके अनन्तर आर्य समाज स्थापित किया। ५० महाशय उसी समय सभ्य बने। उनमें से बाबू कन्हैयालाल जी वकील प्रधान बनाये गये। पण्डित सालिगराम जी उपप्रधान, बा० नारायणसिंह जी वकील मन्त्री और पण्डित हृदयनारायण उपमन्त्री नियत हुए।

इस वार बहुत मनुष्य स्वामी जी का उपदेश सुनते रहे, परन्तु किसी को शास्त्रार्थ करने का साहस न पड़ा। शहर में इन दिनों में दो प्रसिद्ध पण्डित थे, एक पण्डित तुलसीराम और २य, पण्डित रामदत्त जी। दोनों ने शास्त्रार्थ से इन्कार किया, वरं पण्डित तुलसीराम जी तो एक बाजार में स्वामी जी से मिले तो गाड़ी से उतार कर अपने घर ले गये और बड़ा आदर सत्कार किया।

२य, वार जब स्वामी जी मई सन् १८७८ को अमृतसर पधारे तो इन्होंने एक विज्ञापन दिया कि यदि शहर के पण्डित मेरी बातों को वेद विरुद्ध समझते हैं तो आकर निर्णय कर लें। इसमें कई दिन तक तो परस्पर नियम और शास्त्रार्थ के स्थान की नियति के लिये विज्ञापनों के विज्ञापन निकलते रहे, अन्त को सरदार भगवानसिंह का (घुड़शाल) स्थान नियत हुआ। ५००० मनुष्य शास्त्रार्थ सुनने को आये। जब समय व्यतीत हो गया तो स्वामी जी ने व्याख्यान देना आरम्भ किया, अभी थोड़ा ही व्याख्यान हुआ था कि बाबू मोहनलाल वकील आये और

उन्होंने कहा कि मैं पण्डितों की ओर से वकील हूं, वह सभा में आना चाहते हैं, जवाब दिया गया कि हमारे सिर माथे पर आवें। अन्त को पण्डित लोग बहुत सी सजधज के साथ जय जयकार की ध्वनियें निकालते हुए सभा में पधारे। पहिले पण्डित चन्द्रभान को शास्त्रार्थ के नियम दिये गये। और उन पर कुछ विवाद होने लगा। इतने में बदमाशों ने ईंटें वा रोड़े चलाने आरम्भ किये, जिनमें से एक स्वामी जी की ओर भी आया, परन्तु क्योंकि उनकी चारों ओर बहुत मनुष्यों की भीड़ थी इसलिये उनको किसी प्रकार की चोट न लगी। ईंट रोड़ों ने सारी सभा को तित्तर वित्तर कर दिया। उपस्थित मण्डली में से कईयों के रुधिर भी निकल पड़ा और झगड़ा बढ़ गया। अन्त को बड़ी कठिनता से यह झगड़ा (दंगा) रोका गया। दूसरे दिन बाबू मोहनलाल को नोटिस दिया गया, उन्होंने उत्तर दिया कि मैं केवल उस समय का वकील था, अब मेरा कुछ वास्ता नहीं है, पण्डित परस्पर झगड़ते हैं और उनका मनशा शास्त्रार्थ करने का नहीं, इस उत्तर के पीछे भी २० दिन स्वामी जो शास्त्रार्थ की प्रतीक्षा में रहे, परन्तु उधर से कुछ लिखा पढ़ी न हुई। अन्त को यह सब विवरण छाप कर बांटा गया। ऐच परकनस साहिब उन दिनों में कमिश्नर थे उन्होंने या तो आप अपने शौक से या सामयिक अफसरों के कहने से स्वामी जी से मिलने की अभिलाषा प्रकट की, और यह कहा कि हिन्दू धर्म तो सूत के धागे के समान कच्चा है, जिसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि नहीं वह लोहे से भी अधिक पक्का है। अमृतसर में मिशन का जोर है पादरियों ने कई बार स्वामी जी से शास्त्रार्थ करना नियत किया, एक बार तो उन्होंने पादरी खड्गसिंह को बुलाया। पण्डित लेखराम जी लिखते हैं कि "पादरी साहिब स्वामीजी के सामने जाकर उनके चेले ही हो गये और शास्त्रार्थ करना तो दूर उनका पक्ष लेने लगे।" शायद यह वही खड्गसिंह साहिब हैं जिन्होंने स्वामी जी की मृत्यु के पीछे कई ट्रैक्ट वेद विरुद्ध प्रकट किये हैं।

जब पादरी साहिबों ने देखा, कि खड्गसिंह से काम नहीं बना, तो उन्होंने डाक्टर के० ऐम० बैनरजी को कलकत्ते में तार दी परन्तु वहां से भी अन्त में यह उत्तर आया कि मैं नहीं आ सकता, इसलिये कोई शास्त्रार्थ न हुआ।

अमृतसर से पूर्व को चलते समय स्वामी जी ने निम्न लिखित पत्र आर्य समाज गुजरांवाला को लिखा था, जिससे विदित होता है कि आर्य समाज की शिकायत सामायक हाकिमों से भी की गई थी। क्या जानें इसीलिये स्वामी दयानन्द जी से कमिश्नर साहिब ने मिलने की इच्छा प्रकट की होगी।

उस चिट्ठी की निम्न लिखित नकल पण्डित लेखराम कृत जीवन-से लेते हैं।

मन्त्री और सभासद आनन्द रहो। विदित हो कि अब हम ११ जुलाई सन् १८७८ ई० बृहस्पतिवार यहां से पूर्व को प्रस्थान करेंगे और जालन्धर लुधियाना से होते हुए आगे को चले जावेंगे, शायद दो चार दिन के लिये अम्बाले ठहर जावें, अब हमारा आपका मिलाप पत्र द्वारा ही हो सकेगा, इसलिये आपने सदा पत्र भेजते रहना, तथा हम भी भेजा करेंगे, अब आपको लिखते हैं कि प्रतिदिन समाज की उन्नति करते रहना क्योंकि यह बड़ा काम आप लोगों ने उठा लिया है, इसको परिणाम पर्यन्त पहुंचाने ही से सुख और लाभ है। यहां का समाज प्रतिदिन उन्नति पर है। और कई प्रतिष्ठित पुरुष सभासद हो गये हैं। यहां के पण्डितों ने शास्त्रार्थ के लिये सम्मति की थी परन्तु वे सभा में न कुछ बोले और न उन्होंने उत्तर दिया केवल मुंह दिखला कर चले गये। और यहां तक कि उन मनुष्यों ने जो पोपों की ओर थे, हाकिम से आर्य समाज की चुगली खाई थी, जिसका परिणाम सत्य के प्रताप से यह हुआ कि अब कोई आर्य समाज की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता सब सभासदों को नमस्ते।

२६ जून १८७८ ई० अमृतसर दयानन्द सरस्वती

(३) पञ्जाब के अन्य नगर

लाहौर अमृतसर के सिवा स्वामी जी ने पञ्जाब के अन्य बड़े २ नगरों में भी धर्म प्रचार किया जिसका संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है।

डा० बिहारीलाल असिस्टैन्ट सरजन स्वर्गवासी के परिश्रम से वा लाला हंसराज जी साहनी व डाक्टर भक्तराम साहनी की प्रेरणा से स्वामी जी गुरुदासपुर में ८ अगस्त सन् १८७८ को पहुंचे। और प्रतिदिन व्याख्यान देने लगे। नियमानुसार यहां भी शास्त्रार्थ नियत हुआ मियां बिहारीसिंह ई० ए० सी० मूर्ति पूजक उन दिनों में यहां पर हाकिम थे। उनके परिश्रम से पण्डित लक्ष्मीधर व पण्डित दौलतराम दीनानगर से बुलाये गये। शास्त्रार्थ के समय दोनों मियां साहिबों (एक ई० ए० सी० और २य, डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टैण्डैण्ट पुलीस) ने अपने २ अधिकारों के अहंकार में बुरी रीति से काम लेना आरम्भ किया, उधर डाक्टर बिहारीलाल भी जोश में आ गया, परस्पर दुर्वचन तक कहने लगे। अन्त में २४ अगस्त को आर्य समाज नियत हो गया। जिसके अधिकारी निम्नलिखित हुए।

मुन्शी सूर्यशरण मुनसिफ प्रधान, दीवान कृष्णदास मन्त्री, एवं डा० बिहारीलाल असिस्टैण्ट सरजन, बाबू अमृतकृष्ण घोष हैडक्लर्क, जिला पैन्शनर, लाला हरचरणदास मुनसफ, लाला कन्हैयालाल साहूकार लाला फ़ाकामल, लाला रामशरणदास वकील, बाबा खजानसिंह साहूकार, डाक्टर भक्तराम साहनी, लाला हंसराज साहनी, लाला गौरचन्द्रदास वकील सभासद हुए।

१३ सितम्बर को स्वामी जी जालन्धर शहर पधारे और आहलूवालिया सरदारों के यहां उतरे। पहिले दिन कुंवर सुचेतसिंह के मकान पर व्याख्यान हुआ, वहां इतनी भीड़ भाड़ हो गई कि स्थान को पूरा न समझ २य दिन से सरदार विक्रमसिंह की हवेली में उपदेश होने लगा।

२४ सितम्बर को ७ बजे प्रातःकाल उक्त सरदार जी के सन्मुख

मौलवी महमद हुसैन से शास्त्रार्थ होने लगा। इस मुबाहसा के विवरण को मिरजा मोहम्मद प्रोप्राइटर वा सम्पादक वजीर हिन्द स्यालकोट ने रिसाले के आकार में भिन्न छपवा दिया। इस रिसाले में यह लिखा है कि "मौलवी साहिब सर्वसाधारण नगर निवासी हिन्दू मुसलमानों के सहित पधारे। मौलवीजी की इच्छानुसार "आवागमन" और स्वामीजी के कथनानुसार 'करामात" (सिद्धियें) शास्त्रार्थ के विषय नियत हुए। स्वामी जी की ओर से यह भी प्रकट किया गया कि इस शास्त्रार्थ की समाप्ति पर हार जीत किसी की न मानी जावे। जो प्रश्नोत्तर लिखे जावेंगे, वह पीछे हस्ताक्षर होकर ला० मेहरचन्द व मुन्शी महमूद हुसैन जी छपवा देंगे। शास्त्राथ के अन्त में मौलवी जी की ओर से एक काम विद्वान् जनों के अयोग्य हुआ। वह यह है कि शास्त्रार्थ समाप्ति के पीछे मौलवी जी ने अमीर नामुरूद्दीन के खानगाह के द्वार पर आकर घमण्ड से सुनाकर उपस्थित मुसलमानों से प्रतिष्ठा चाही। यद्यपि लिखे पढ़े मुसलमान तो प्रसिद्धि की इच्छा को मूर्खता का खेल समझ इधर उधर चले गये परन्तु अनपढ़ मण्डली ने मौलवी जी की जीत की धूम मच दी और घोड़े पर चढ़ा कर शहर के गली कूचों में खूब फिराया और जीत हार का शोर मचाया।"

जो प्रश्नोत्तर हुए उन पर ला० मेहरचन्द और मौलवी महमूद हुसैन मुहरिर के हस्ताक्षर मौजूद हैं। उस समय का शास्त्रार्थ साधारण सा है अर्थात् कोई प्रबल सिद्धि कर युक्ति करामात की सिद्धि में नहीं है, हां आवागमन में जो युक्तियें हैं वह कुछ मनोरंजक हैं। परन्तु हम इस पुस्तक में आवगमन के विषय पर एक और शास्त्रार्थ लिखेंगे जो स्वामी जी का पादरी स्काट से बरेली शहर में हुआ था। जालन्धर के प्रश्नोत्तर भी सब उसमें आ जाते है। इसलिये भिन्न नहीं लिखते।

जालन्धर में उस समय कोई समाज स्थित नहीं हुआ।

स्वामी जी २६ अक्तूबर १८७७ ई० को फीरोजपुर पहुंचे इन दिनों में फीरोजपुर में एक हिन्दू सभा थी, और लाला मथुरादास जी

उसके प्रधान थे, लाला मथुरादास जी को किसी ने लाहौर से आकर स्वामी जी का वृत्तान्त सुनाया, और उन्होंने गोविन्दलाल कायस्थ को स्वामी जी को लेने को लाहौर भेजा। सो वह २६ अक्तूबर को स्वामी जी को लेकर फीरोजपुर पहुंचे। ला० मथुरदास जी ने इनके आगमन की प्रसन्नता में एक नया मकान तैय्यार कराया, परन्तु क्योंकि वह स्थान शहर में था इसलिये स्वामी जी लाला बनवारी लाल की कोठी में तोपखाने के समीप ठहरे। व्याख्यानों का प्रबन्ध लाला मथुरादास के घर के सन्मुख सायबानों में किया गया। सो ८ दिन निरन्तर व्याख्यान होते रहे। अन्त को हिन्दू सभा का नाम आर्य समाज रख दिया और ठीक रीति से नियम उपनियम स्वीकार किये गये। और आर्य समाज छावनी फीरोजपुर अपने महान् कार्य अनाथालय फीरोजपुर के नाम से प्रसिद्ध है। यह अनाथालय लाला मथुरादास के पुरुषार्थ का परिणाम है।

फीरोजपुर से वापिस आकर ८ नवम्बर १८७७ ई० को स्वामी जी रावलपिण्डी पधारे और जसमल्ल जी सेठ की कोठी में उतरे, और यहां लगभग २० व्याख्यान हुए। इसके पीछे सरदार सुजानसिंह के बाग में जा ठहरे, और दिसम्बर के अन्त तक वहां रहे, दो दिन व्याख्यान होता था और एक दिन आराम करते थे, उनके वहीं होते ही समाज स्थापित हो गया था जो आज तक चला आता है। सबसे पहले लाला गणेशदास जी इस समाज के प्रधान हुए और भक्त कृष्णचन्द जी उसके मन्त्री हुए थे।

रावलपिण्डी से स्वामी जी ३० दिसम्बर १८७७ ई० को जेहलम में आये और वहां १४ दिन तक रहकर व्याख्यान देते रहे, उनके वहां होते ही यहां आर्य समाज खुल गया। जिसके पहिले मास्टर लछमण प्रसाद जी प्रधान नियत हुए। यह पहिले ब्रह्म थे और इसके मन्त्री लाला ज्वालाप्रसाद जी जो अब महकमा जंगलात के एक्स्टरा असि-स्टेण्ट कन्जरवेटर हैं नियत हुए। जेहलम में आर्यसमाज आजतक विद्यमान

है। यह बात नोट करने के योग्य है कि यह मास्टर लक्ष्मण प्रसाद जी फिर ब्रह्म हो गये हैं, यह कहते हैं कि स्वामी जी वेदों को ईश्वर प्रणीत नहीं मानते थे, और ना ही मैंने उनके सामने वेदों को ईश्वर प्रणीत माना। हालांकि १८८० ई० में आर्य दर्पण शाहजहानपुर में उक्त लाला जी ने यह मजमून छपवाया था कि "जो ईश्वरोक्त सद्विद्याओं से युक्त ऋग् यजुः साम और अथर्व चार पुस्तकें हैं और जिनसे मनुष्यों को सत्य ज्ञान मिलता है उनको वेद कहते हैं।"

जेहलम से अवकाश पा स्वामी जी १३ जून १८७८ ई० को गुजरात पहुंचे, और २ फरवरी १८७८ ई० तक यहां उपदेश करते रहे। नगर निवासियों ने ईंटों से स्वामी जी का आदर सत्कार किया, परन्तु वहां ईंटों पत्थरों से क्या होना था, कोई चीज उनको अपने उद्देश्य से हटाने की सामर्थ्य नहीं रखती थी। बहुत से पण्डित महाशय आये और वार्तालाप करके चले गये।

गुजरात से स्वामी जी २ फरवरी १८७८ ई० को वजीराबाद में पधारे, उनके आने से पूर्व ही यहां समाज स्थापित हो चुका था, लाला लब्धाराम जी जो उस समय अप्रैंटिस इञ्जीनियर थे, उस समाज के प्रधान थे, और लाला सुखदयाल जी मन्त्री थे, चुनांचि समाज के सभ्यों ने भली भांति स्वामी जी का स्वागत किया और राजा फकीरउल्लाह की कोठी में स्वामी जी को उतारा। एक दिन एक पण्डित से शास्त्रार्थ हो रहा था, उसने स्वामी जी के सन्मुख किसी मन्त्र की टीका पढ़ी, स्वामी जी ने उससे असली मन्त्र पूछा, वह न बतला सका, इतने में एक लड़का "छी छी" करने लगा, ला० लब्धाराम ने उसको लकड़ी से हटाना चाहा। लोगों ने स्वामी जी व राय साहब पर हमला किया, स्वामी जी ने सोटा लेकर घुमाया फिर किस हिन्दू की सामर्थ्य थी कि सामने ठहरे, सबने पीठ ही दिखलाई। फिर जब स्वामी जी ऊपर चले गये तो वजीराबाद के देश हितैषी पुरुषों ने ईंटों की वर्षा करनी आरम्भ कर दी। स्वामी जी का क्लर्क बिहारी बाबू उनको समझाने के लिये नीचे गया। इन बदमाशों ने उसको अकेला देखकर गिरा

लिया और बड़ा मारा। जब स्वामी जी को विदित हुआ तो लाठी लेकर नीचे आने लगे। परन्तु उनकी ललकार का शब्द सुन सब तितर बितर हो गये। आर्यसमाजियों ने नालिश करनी चाही, परन्तु स्वामीजी ने सबको समझा बुझा कर शान्त कर दिया। वजीराबाद में अब भी आर्य समाज है।

वजीराबाद से ७ फरवरी १८७८ को स्वामी जी गुजरांवाले पधारे, और सरदार महासिंह की समाधि पर उतरे। व्याख्यान नित्य होने लगे। पादरी साहब ने शास्त्रार्थ के लिये कहा, सो १९ फरवरी को गिरजाघर में शास्त्रार्थ हुआ, उस समय मिस्टर वाकर, मिस्टर ह्यूसन असिस्टेण्ट कमिश्नर व मिस्टर मोहनवीर व डिप्टी गोपालदास जी एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर वहां विद्यमान थे। डिप्टी गोपालदास जी मध्यस्थ नियत हुए। जिन्होंने इस दिन की वार्त्तालाप के अनन्तर स्वामी जी के पक्ष में सम्मति दी। लोगों का इतना संग्रह था कि गिरजे में स्थान न होने के कारण सहस्रों मनुष्यों को वापिस जाना पड़ा। सो इसलिये २य, दिन के लिये किसी अन्य स्थान का विचार किया गया। २य, दिन का समय ४ बजे नियत था, परन्तु पादरी जी ने १२ बजे ही गिरजे में इकट्ठे होकर स्वामी जी और डिप्टी साहब को बुला भेजा, दोनों ने कह भेजा कि यह समय शास्त्रार्थ का नहीं है, स्वामी जी ने यह भी कहा कि गिरजे में थोड़ा स्थान है शास्त्रार्थ किसी अन्य स्थान में होना चाहिये, परन्तु पादरी साहब ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि चूंकि स्वामी जी बुलाने पर नहीं आये इसलिये समझना चाहिये कि वह हार गये हैं। स्वामी जी ने ४ बजे दरी आदि बिछवा कर पादरी साहब को बुलाया परन्तु वह न आये। स्वामी जी की उपस्थिति में गुजरांवाले में समाज खुल गया था, जिसके मुन्शी नारायण-कृष्ण प्रधान, मास्टर पोहलोराम मन्त्री ला० आत्माराम कोषाध्यक्ष नियत हुए। और सरदार सन्तसिंह, सरदार हजूरासिंह, लाला मथुरा-दास और मास्टर दयाराम तथा कुछ अन्य महाशय सभ्य बने।

स्वामी जी अभी गुजरांवाले में ही थे कि उनको मुलतान से डाक्टर बसवन्तराय की चिट्ठी मिली। सो वह ४ मार्च को गुजरांवाले से विदा हो, लाहौर आ ठहरे, और फिर १२ मार्च के लगभग मुलतान जा पहुंचे, यहां पर स्वामी जी ३७ दिन रहे और इन ३७ दिनों में ३३ दिन बराबर उनके व्याख्यान होते रहे। कुछ व्याख्यान छावनी में भी हुए। जहां पर पारसी सेठ बड़ी प्रसन्नता से मिले। ४ अप्रैल १८७८ को मुलतान में आर्य समाज नियत हुआ। और पहिले पहल ७ सभ्य नियत हुए। किसी ने उपहास करके स्वामी जी से कहा कि केवल ७ ही सभ्य हुए, जिस पर स्वामी जी ने अति बुद्धिमत्ता से उत्तर दिया, कि मुसलमानों के पैगम्बरी के आरम्भ में एक स्त्री ही सहायिका बनी थी परन्तु इस पर भी देखो इस सम्प्रदाय ने दुनिया में कितनी वृद्धि की। इस समाज के सरदार प्रेमसिंह प्रधान और पं० कृष्ण नारायण जी मन्त्री नियत हुए। मुलतान में अब भी आर्य समाज है।

पश्चिमोत्तर प्रदेश व राजपूताने में धर्म प्रचार और आर्य समाजों का स्थापित करना

२५ जुलाई स० १८७८ से जनवरी १८७९ तक

लिखे-पढ़े हिन्दू बड़ी उत्कण्ठा से हर स्थान से स्वामी जी के उपदेश की प्रतीक्षा करते थे। इस कथन की साक्षी इस बात से मिलती है, कि स्वामी जी को स्थान २ से बुलावे आते थे। वह एक स्थान में अभी अपना प्रचार समाप्त नहीं कर चुकते थे, कि अन्य स्थान से लोगों के प्रार्थना पत्र बुलाने के लिये आ जाते थे। सो स्वामीजी पंजाब में उपदेश कर रहे थे कि पण्डित उमरावसिंह प्रभृति ने रुड़की में आगमन के लिये चिट्ठी लिखी। उस समय स्वामी जी चिट्ठी का उत्तर भी नहीं दे सके। परन्तु अन्त को उपदेश करते हुए २५ जुलाई सन् १८७८ को रुड़की पहुंच गये।

रुड़की निवासी सज्जनों ने लाला शम्भूनाथ का बंगला इनके उतरने को नियत किया। यहां पर स्वामी जी ११ अगस्त सन् १८७८

तक ठहरे और प्रायः नित्य उपदेश करते रहे। स्वामी जी के आगमन से पूर्व एक मौलवी जी यहां आये थे इन्होंने अपने लैक्चरों में ईसाई धर्म और हिन्दू धर्म की निन्दा की थी। जब स्वामी जी पधारे तो मुसलमानों ने यह समझा कि पण्डित जी को मौलवी जी के व्याख्यानों के खण्डन के लिये बुलाया गया है। इसलिये व्याख्यानों में वह कोलाहल मचाते रहे वरं दंगा भी करने को उद्यत रहे परन्तु प्रबन्ध कर्त्ताओं के सुप्रबन्ध से अमन चैन रहा।

एक दिन "कर्नल मार्शल" साहब कमाण्डिग आफीसर, कप्तान स्टूअर्ट साहब क्वार्टर मास्टर सहित व्याख्यान सुनने को आये। जब स्वामी जी बाईबल पर शंका उठाने लगे, तो कर्नल साहब घबराये, और बीच में ही प्रश्न करने लग गये। जिसका उत्तर स्वामी जी देते रहे, चर्चा के बीच भी कई बार साहब बहादुर को क्रोध आया पर कुछ बस न चला। अन्त को जब शंकाओं का उत्तर साहब बहादुर न दे सके, तो कल आने की प्रतिज्ञा करके चल दिये, परन्तु २य दिन कर्नल साहब तो न आये परन्तु कप्तान साहब आ गये और बड़े प्रेम से उपदेश सुनते रहे। मुसलमानों ने मौलवी मुहम्मद कासिम देवबन्द निवासी को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया और कई दिन शास्त्रार्थ के नियमों के विषय में ही लिखा पढ़ी करते रहे, अन्त को मौलवी जी की ओर से धुसाई पाई गई, तो लिखा पढ़ी बन्द कर दी गई २० अगस्त १८७८ को रुड़की में समाज नियत हुआ। जिसके प्रधान मास्टर शंकरलाल जी हुए जो अब भी रुड़की समाज के प्रधान हैं, मास्टर उमरावसिंह जी मन्त्री और मास्टर रंगीलालजी कोषाध्यक्ष नियत हुए। वहां आर्य समाज स्थापित कर स्वामी जी अलीगढ़ को चले गये।

अब के स्वामी जी केवल ४ दिन अलीगढ़ में ठहरे, एक ही व्याख्यान दिया। बम्बई से मिस्टर मूलजी ठाकुरजी, मिस्टर हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और पण्डित शामजी कृष्ण वर्मा स्वामी जी के दर्शनार्थ आये हुए थे। मौलवी अहमद खान ने उनके स्वागत के लिये प्रीति

भोजन किया परन्तु स्वामी जी शरीर की अस्वस्थता से न जा सके।

अलीगढ़ से स्वामी जी २६ अगस्त १८७८ ई० को मेरठ में पधारे, और हिन्दुस्तानी रिसाले की लाइन के निकट लाला दामोदरदास जी की कोठी में उतरे। पहिले १५ दिन वहीं और फिर लाला गणेशीलाल के स्थान पर उपदेश करते रहे। फिर १ सितम्बर से ४ सितम्बर तक "जलवातूर" के कारखाने में उपदेश दिया। उसके अनन्तर लाला रामशरण दास जी मेरठ के रईस की कोठी पर व्याख्यान हुए। फिर कुछ दिन कमसीट के गुमाश्ते ला० छेदीलाल की कोठी में धर्म उपदेश होता रहा। अन्त को २९ सितम्बर को यथायोग्य समाज नियत हुआ। जिसमें पहिले ही ८२ या ८३ मनुष्य सभासद बन गये। इस समाज के पहिले अधिकारी यह थे। पण्डित कुन्दनलाल जी बी० ए० सैकिण्ड मास्टर मेरठ स्कूल प्रधान, ला० रामशरण दास जी रईस उपप्रधान, बा० आनन्दलाल जी क्लर्क जरनैली आफिस मन्त्री, बा० छेदीलाल गुमाश्ता कोषाध्यक्ष, पं० जगन्नाथप्रसाद जी पुस्तकाध्यक्ष, प० अम्बा-शंकर जी उपमन्त्री।

मेरठ में किसी से वाद विवाद या शास्त्रार्थ नहीं हुआ। सब से पहिले मुसलमानों की ओर से मौलवी अब्दुल्ला साहिब ने शास्त्राथ का विज्ञापन दिया। परन्तु यह नियम नियत किया कि चर्चा जुबानी होगा लिखा नहीं जावेगा, फिर सनातन धर्म के पण्डितों ने मूर्ति पूजन, अवतार और तीर्थादि के विषय में कुछ प्रश्न लिखकर भेजे जिनके उत्तर पब्लिक के सन्मुख दिये गये फिर शास्त्रार्थ नियत हुआ, सो जब कई दिनों में लगभग शर्तें नियत हो चुकीं तो अन्त में पण्डितों ने यह बहाना बना कर जवाब दे दिया, कि जब तक स्वामी दयानन्द जी का वर्ण और आश्रम ठीक २ निश्चय न हो ले, तब तक शास्त्रार्थ नहीं हो सकता। और इसके सिवा उसमें यह लिखा था कि हमारे पण्डित विद्वान् हैं और आप मूर्ख (अनपढ़) हैं। मूर्खों का विद्वानों से शास्त्रार्थ होना व्यर्थ है। वाह वाह।

मेरठ से स्वामी जी ६ अक्तूबर को देहली पहुंचे और ६ नवम्बर तक वहां धर्म उपदेश करते रहे। शाह जी के छत्ता में जहां गवर्नमैण्ट स्कूल था उनके व्याख्यान होते थे। अन्त को यहां भी समाज खुल गया, जिसके प्रधान लाला मक्खनलाल जी और मन्त्री लाला हुकूमतराय जी नियत हुए।

देहली से ६ नवम्बर को चलकर ७ नवम्बर को स्वामी जी अजमेर पहुंच गये। अजमेर के विषय में एक बात वर्णनीय है जिससे विदित होगा कि स्वामी जी के विपक्षी कैसे निर्बल हो गये थे। यह बात इस प्रकार हुई कि जब स्वामी जी पञ्जाब में उपदेश कर रहे थे तो कई एक अजमेर निवासियों ने स्वामी जी को यहां लाने की प्रार्थना की। और यह भी लिखा दिया कि हम इस खर्च के लिये चन्दे आदि का प्रबन्ध कर लेंगे। सो जब शहर में इस आशय से चन्दा हुआ, तो स्वामी जी के विरुद्धियों ने एक बनावटी चिट्ठी लिखाकर स्वामी जी के पास भजवा दी, जिसका मजमून यह था "कि यहां चन्दे आदि का प्रबन्ध नहीं हो सकता आप न आवें" स्वामी जी ने जब इस चिट्ठी का उत्तर मुन्शी समर्थदान को लिखा और उनको यह विदित हुआ तो उन्होंने फिर पूरा ब्योरा लिखकर स्वामी जी को सूचित किया। अजमेर पहुंचते ही स्वामी जी पुष्कर के मेले में जा गरजे।

अजमेर से कुछ दूरी पर पुष्कर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है, यहां उस पर कार्तिक शुक्ल पूर्णमा को एक बड़ा भारी मेला था। पुष्कर में स्वामी जी महाराज जोधपुर के घाट पर जो नाथ जी के बगीचे के नाम से प्रसिद्ध है, उतरे। और सर्व साधारण को अपने आगमन की सूचना दी। जब तक मेला रहा वहां ठहरे रहे और धर्मोपदेश करते रहे, पुष्कर से लौटकर फिर अजमेर को आ गये।

१ दिसम्बर सन् १८७८ ई० तक वहां व्याख्यान देते रहे। राय भागमल जी एक्सटरा जुडीशल असिस्टैण्ट जो अब काश्मीर कौंसल के सभ्य हैं (सरदार बहादुर) अमीचन्द जी जज, सरदार भक्तसिंह जी, और मसूदाधिपति रावजी, प्रायः आपके व्याख्यानों में आते रहे।

राय भागमल जी तो देर तक अजमेर आर्य समाज के सभ्य भी रहे। एक महाशय १५ नवम्बर की डायरी में लिखते हैं कि स्वामी जी की ५० वर्ष के लगभग अवस्था होगी कि वह लंगोट बांधे हुए लेट रहे थे। विदित हुआ कि आपको अतिसार लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी दशा में भी ब्रह्मचर्य साधन के कारण किसी को विदित नहीं होता था कि यह रोगातुर हैं। शरीर के हृष्ट पुष्ट और कद के लम्बे थे।"

२८ नवम्बर को पादरी ग्रे साहिब से वार्तालाप हुआ। स्वामी जी ने तौरेत और अञ्जील पर शंका की जिनके पादरी जी ने संक्षिप्त से उत्तर दिये। एक २ शंका पर केवल दो प्रश्न की आज्ञा थी।

स्वामी जी अजमेर से मसूदाधीश रावसाहिब जी की इच्छानुसार मसूदा को चले गये। और वहां ९ दिसम्बर तक व्याख्यान देते रहे। मसूदा से १० दिसम्बर सन् १८७८ को नसीराबाद की छावनी में पहुंच गये। और १४ दिसम्बर तक वहां धर्मोपदेश करते रहे। नसीराबाद से जैपुर से होते हुए २४ दिसम्बर सन् १८७८ को रीवाड़ी में पहुंचे। यहां उनको राव तुलाराम के पुत्र राव युधिष्ठिरसिंह ने बुलाया था। यहां पर २४ दिसम्बर से ९ जनवरी तक ११ व्याख्यान हुए और साधारण धर्म चर्चा तो नित्य ही होती रही। रिवाड़ी से स्वामी जी देहली पहुंचे। यहां पर दो तीन दिन व्याख्यान देकर मेरठ चले गये। और वहां से सहारनपुर व रुड़की होते हुए हरिद्वार को जा निकले।

सन् १८७९ ई० के हरिद्वार कुम्भ पर धर्म प्रचार
११ अप्रैल सन् १८७८ तक

स्वामी जी सन् १८७९ को रुड़की से ज्वालापुर पधारे जो हरिद्वार के समीप पंडों का नगर है। वहीं ७ दिन ठहरे और २७ फरवरी १८७९ ई० को हरिद्वार में पधार कर श्रवणनाथ के बाग में, निरमलों की छावनी के सन्मुख मूले मिस्त्री के खेत में कलेक्टर साहिब के

डेरे के समीप अपने खैमें गड़वाकर उतरे। थोड़े दिनों में बहुत से आर्य महाशय भी बाहर से आ गये और स्वामी जी के पास ठहरे रहे। आते ही समस्त मार्गों, घाटों और पुलों तथा मन्दिरों पर एक विज्ञापन लगवा दिया। जिसमें पहले स्वामी जी के आगमन की सूचना यात्रियों को दी गई, फिर विज्ञापन में स्वामी जी ने अपने मन्तव्य भी लिख दिये थे और प्रत्येक मनुष्य को धर्म विचार में आने के लिये निमन्त्रण भी दिया. इस विज्ञापन का अन्तिम वचन यह था।

इसलिये आर्यों के इस महासमुदाय में वेद मन्त्रों द्वारा सब सज्जन मनुष्यों के हित के लिये ईश्वराज्ञा का प्रकाश संक्षेप से किया जाता है। फिर इसके नीचे ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ७१ मन्त्र ५, ६ व १० को लिखकर उनकी व्याख्या की, और ऐतरेय, तैत्तरेय आरण्यक उपनिषद का एक २ वाक्य भी लिख कर उनके अर्थ भी लिख दिये। और समाप्ति में यह प्रार्थना की कि :--

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सूर्य, चन्द्र, वर्षा, और ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि, प्रहर, मुहूर्त, घड़ी, पल क्षण, आंख, नाक आदि शरीर औषधि वनस्पति, खाना पीना आदि व्यवहार ज्योंके त्यों हैं (अर्थात् जैसे ब्रह्मा के समय से लेकर जैमिनी मुनि के समय तक इस देश में थे) फिर हम आर्यों की दशा क्यों पलट गई है। मनुष्यो! आप अत्यन्त विचार पूर्वक देखो कि जिसका फल दुःख वह धर्म और जिसका फल सुख वह अधर्म कभी हो सकता है? अपनी दशा अन्यथा होने का यही कारण है, जो ऊपर लिख आये हैं। अर्थात् वेद विरुद्ध चलना। और फिर उस प्राचीन अवस्था को प्राप्ति कराने वाले (रीति) वेदानुकूल आचार पर चलना है। और वह आचार यह है। जैसे आर्यावर्त निवासी आर्य, आर्य समाजों के सभासद करना और कराना चाहते हैं कि संस्कृत विद्या के जानने वाले स्वदेशीय मनुष्यों की वृद्धि के अभिलाषी परोपकारिक निष्कपट होकर सब को सत्यविद्या देने की इच्छा युक्त धार्मिक विद्वानों की उपदेशक मण्डली,

और वेदादि सच्छास्त्रों के पढ़ने के लिये पाठशालायें नियत किया चाहते हैं। इसमें जिस किसी को योग्यता हो वह अभिप्राय को प्रसिद्ध कर, इस परोपकारी महोत्तम कार्य में प्रवृत हो। जिससे मनुष्य मात्र की शीघ्र उन्नति हो सकती है" आदि २।

इस अन्तिम अपील में स्वामी जी ने प्रकट किया कि वह दो विषयों के संशोधन का मुख्य कारण समझते थे। एक उपदेशक मण्डली ऐसे मनुष्यों को होनी उचित थी जो (१) संस्कृत के वेत्ता, (२) स्वदेशीय मनुष्योन्नति अभिलाषी, (३) परोपकारी (४) निष्कपट (५) सबको सत्यविद्या के देने की इच्छा करने वाले (६) धार्मिक (७) विद्वान् हों। और साथ ही पाठशाला स्थापित करनी चाहते थे (वेदादि सच्छास्त्रों के पढ़ने के लिये) इस मेले में बड़ी भीड़ थी, स्वामी जी ने बारह अप्रैल को चिट्ठी में लिखा था कि २ लाख आदमी आ चुके हैं, और उस दिन पर्व में अभी १५ दिन बाकी थे, पर्व के दिन तक तो मनुष्य बहुत आये थे। सं० १९२४ के कुम्भ से लगभग द्विगुण भीड़ मानी जाती थी। गंगा के किनारे २ आठ दस कोस में यात्री ही यात्री दृष्टिगोचर होते थे। स्वामी जी ने इस पौराणिक दल में अपनी ध्वजा झुला कर वैदिक धर्म का डंका बजाया। मूर्ति पूजा आदि पौराणिक सिद्धान्तों का प्रत्यक्ष रूप से खण्डन किया और बहुत से ब्राह्मण, संन्यासी, वैरागी, और मिलने आते थे और दान्त पीस कर चले जाते थे। कई तो सन्मुख ही कह जाते थे कि "मन तो यह चाहता है कि तुझे मार डालूं क्योंकि तूने हमारी उपजीविका छीन ली है और अनर्थ मचा दिया है" हाय पेट! इस पापी उदर ने भारत के उस शिरोमणि वर्ण अर्थात् ब्राह्मणों से क्या २ नहीं कराया। पौराणिक विद्या भी अपने पूर्ण बल से मानो इस मेले में विद्यमान् थी। स्वामी विशुद्धानन्द बनारस वाले भी आये हुए थे। एक और सतुआ स्वामी जी कनखल के निकट उतरे हुए थे जो अच्छे विद्वान् गिने जाते थे। दो और सूर्य

विद्वान् सुखदेवगिरि जी और जीवनगिरि जो विराजते थे। स्वामी जी ने सब को पत्र भेजे। परन्तु किसी को साहस न हुआ कि सामने आता। पण्डित श्रद्धाराम आदि ने भी एक सभा रचाई और उस सभा की ओर से एक चिट्ठी लिखकर स्वामीजी की ओर भेजी, जो हम ठीक वैसी ही पण्डित लेखराम कृत पुस्तक से लेते हैं।

॥ श्री गणेशायनमः ॥

श्री दयानन्द सरस्वती प्रति

निवेदन मिदं लिखत साधु वर्ग तथा पण्डितजन और सभासद लोगों की प्रार्थना यह है कि तीन चार दिन से नित्य चार बजे से ६ बजे तक धर्म विषयक सदसत् विचार होता है। और यह भी ज्ञात हो कि जब से झूना अखाड़ा माया देवी के समीप अलीगढ़ सद्धर्मावलम्बी सभा प्रारम्भ हुई तब से इस सभा से आपके पास पत्र भेजे गये, अब यह पत्र भेजते हैं यदि इस सभा में आकर आप भी कुछ वक्तृता करें तो इसमें हमको दो फल दीखते हैं १ तो यह कि एकान्त बैठ कर वेद शास्त्र द्वारा व्याख्यान देते रहे हो, विद्वानों के सम्मुख वक्तृता करने में सब को यह ठीक निश्चय हो जावेगा कि आपका कथन वेद वा शास्त्र के कथनानुसार है या नहीं। २य यह कि यदि आपका कहना वेद व शास्त्र के अनुसार निकला तो हम सब आप के मत प्रतिपादन में सहत हो जावेंगे और इस एक भाव से आर्यावर्त को बड़ा भारी लाभ होगा। आप कृपा करके सभा में अवश्य पधारें यदि किसी हेतु से आना न हो तो वह हेतु लिखियेगा।

पण्डित गोविन्दलाल देवबन्दी, सतुवा स्वामी, केशवाश्रम स्वामी, चिद्घनानन्द स्वामी, पण्डित श्रीधर डासना वाले, वैकुण्ठ शास्त्री पूना, शालिग्रामाचार्य मथुरा, गोविन्दाचार्य चित्रकोट, गोपाल शास्त्री जम्बू, तारानाथ भट्टाचार्य, पण्डित सीताराम, पण्डित मनोहरदास, कौशल शास्त्री, पण्डित अयोध्यादास, पण्डित शत्रुघ्न शास्त्री, बांकेबिहारी

वाजपेई, श्री वैष्णवों के पण्डित नृसिंह शास्त्री, पण्डित सुखराम दास गदाधर शास्त्री, पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी, पण्डित जवाहरलाल अहमदाबादी, पण्डित शम्भुदत्त, पण्डित वीर भानु, पण्डित गणेशीलाल, ज्वालापुरी, उत्तल अवनाश काशी के पांड, पण्डित भृगुदत्त अलीगढ़, पं० वासुदेव शास्त्री, पं० केशवदत्त, पं० लेखराज जलालाबादी ।

इसके उत्तर में स्वामी जी ने निम्नलिखित पत्र भेजा

शास्त्रार्थ करने में मुझे किसी समय भी इन्कार नहीं मैं सदैवोद्यत हूं । परन्तु शास्त्रार्थ इस रीति से होना चाहिये, कि इसका प्रबन्धकर्त्ता कोई राजपुरुष होना चाहिये, और इस शास्त्रार्थ में पण्डितों के सिवा अनपढ़ कोई न हो, और शास्त्रार्थ का स्थान ऐसा हो जो न मेरा और न आपका गिना जावे । अब जहां यह सभा हुई है (जूना अखाड़े में) आने से मुझे प्राणों का भय है यद्यपि मुझे इसमें शोक नहीं कि मेरा शरीर पात हो जावे परन्तु इस बात का बड़ा शोक है कि मैं जिस परोपकार के अर्थ इस शरीर की रक्षा करता हूं, वह रह न जावे । इसलिये मैं वहां आना उचित नहीं समझता ।

स्वामी जो ने यह भी कहला भेजा कि यदि स्वामी विशुद्धानन्दजी यह कह दें कि यह पुरुष मेरे मुकाबले में वेदों के समझने की योग्यता रखते हैं, तो मैं उनसे शास्त्रार्थ करूंगा वरञ्च पं० विशुद्धानन्द जी को ही मैं मध्यस्थ नियत करता हूं । चुनांचि विपक्षी पंडित स्वामी जी की चिट्ठी लेकर स्वामी विशुद्धानन्द जी के पास गये । लाला जमीयत राय आरमन स्कूल रुड़की के अध्यापक उस समय वहीं थे जब यह पण्डित स्वामी विशुद्धानन्द जी के पास गये तो उस समय उक्त मास्टर जी कहते हैं, कि विशुद्धानन्द जी श्रद्धाराम फिलौरिये और पं० चतुर्भुज को जो इस चिट्ठी के लेखक थे, गाली देने लग पड़ें, और कहने लगे कि यह लोग स्वामी दयानन्द के मुकाबले में एक अक्षर भी नहीं जानते । स्वामी विशुद्धानन्द ने स्वामी दयानन्द को भी पत्र लिखा, जिसमें यह लिखा था "कि बहुत से अनपढ़ मूर्ख फसाद करने के लिये

एकत्र हुए हैं, और उनके कथन पर किंचित् ध्यान न दें। चुनांचि सायंकाल को पण्डित भीमसैन जी ने यह चिट्ठा सब लोगों को सुना दी। कहते हैं कि उस समय १०००० के लगभग मनुष्यों की भीड़ भाड़ थी। मास्टर जमीयतराय जी का कथन है कि यहां स्वामी जी प्रातःकाल ही आवश्यक नित्य नैमित्तिक कर्म से अवकाश पा ७ बजे से पहले ही आसन पर बैठ जाते थे और ११ बजे या १२ बजे तक पण्डितों, साधुओं और सर्व साधारण मनुष्यों से धर्म विषय पर वार्त्तालाप करते रहते थे, फिर एक बजे से पांच बजे तक सभा होती थी तदनन्तर ७ बजे से ९ बजे तक जो सामाजिक पण्डित व अन्य आर्य पुरुष आये हुए थे उनसे परस्पर धर्म चर्चा हुआ करता था।

सार यह है कि स्वामी जी सारा दिन धर्मोपदेश में ही लगे रहते थे। क्या जाने काम की अधिकता से या जलवायु के अनुकूल न होने से उनको अतिसार लग गये। यहां तक कि १५ दिन तक निरन्तर अतिसार की व्याधि से स्वामी जी पीड़ित रहे। इसलिये स्वामी जी २ अप्रैल के पत्र में लिखते हैं कि "हमको भी १५ दिन से अतिसार लगे हैं। दिन भर में १० या १२ बार जाते हैं, हां अब कुछ आराम है, परन्तु निर्बलता बहुत है।" वैशाख बदि १२ सं० १९३६ के पत्र में स्वामी जी ने लिखा था कि ४३० के लगभग दस्त आ चुके हैं। इतनी कड़ी व्याधि होने पर भी वह पुरुषरूप सिंह अपने स्थान से इस लिये न हिला, कि कहीं पौराणिक पण्डित यह प्रसिद्ध न कर दें, कि स्वामी मेला छोड़कर भाग गया है। अपने प्रथम विज्ञापनानुसार बराबर पर्व दिन तक स्वामी जी वहीं ठहरे रहे। पर्व के दिन अन्तिम व्याख्यान दे अपने उपदेश की समाप्ति की, और लोगों को यह शिक्षा दी, कि अब बहुत शीघ्र अपने २ घरों को चले जाओ, क्योंकि यहां महामारी (हैजा) फैलती जाती है। और अपने जाने से एक दिन पहले समस्त आर्य समाजियों को वहां से भेज दिया। पण्डित श्रद्धाराम जी ने एक और लीला रची अर्थात् कुछ साधुओं को सिखला कर यह

कहलाया कि हमने स्वामी दयानन्द जी से उपदेश सुन उनका मत स्वीकार कर लिया था, परन्तु अब हमको अपनी भूल विदित हो गई। हमको फिर अपने सनातन धर्म में ले लिया जावे। चुनांचे पण्डित श्रद्धाराम जी उनसे प्रायश्चित कराकर बड़ी धूमधाम से उनको हरिद्वार की पौड़ियों पर ले गये, और लोगों में इस बात का खूब चर्चा फैलाया। परन्तु अन्त में उन्हीं की मण्डली के एक पण्डित गोपाल शास्त्री ने यह सब भेद प्रकट कर दिया, (देखो रिसाला विद्या प्रकाशक जून सन् १८७९ ई०)

एक दिन एक परमहंस आनन्द घन नामक संन्यासी कफनी पहिने हुए स्वामी जी के डेरे में आये, स्वामी जी उनको आते देखकर खड़े हो गये और खेमे के द्वार तक आगे आ अन्दर ले जाकर उनको आसन पर बिठलाया। यह महाशय वेदान्ती थे, दो घण्टे तक दोनो महाशय परस्पर संस्कृत में वार्त्तालाप करते रहे। स्वामी जी पुस्तक निकाल २ कर उनको प्रमाण दिखलाते थे। दोनों ने भोजन वहीं पाया। अन्त को दो बजे के समय खड़े हो गये और उस वृद्ध परमहंस ने जिसकी आयु ८० वर्ष की थी, अपने शिष्यों से कहा कि मैंने दयानन्द के मत को स्वीकार कर लिया, तुम भी ऐसा ही मानो।

इस मेले में मेरठ के कमिश्नर साहब, सहारनपुर के कलेक्टर, और जंगलात् महकमे के कन्सरवेटर साहब भी स्वामी जी से मिलने आये थे। स्वामी जी उस समय उपासना कर रहे थे, उक्त साहब प्रतीक्षा करते रहे, और जब स्वामी जी अवकाश पाकर उठे तो उक्त साहबों से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए। और उक्त साहबों ने अपने आप पुलिस के पहरे का प्रबन्ध कर दिया।

जब मेले में विशूचिका फैलने लगी तो स्वामी जी को विदित हुआ कि पाखाना जलाया जाता है, जिस पर उन्होंने कलैक्टर साहब से कहा पाखाने के जलाने से विशूचिका अधिक फैलेगी, आप इसको कहीं दूर फिकवाने का प्रबन्ध कीजिये। इसी प्रकार उन्होंने पाखाना भूमि में

दबाने के विषय में फिर हाकिमों को लिखा। और उनको शिक्षा से पाखाना भूमि में दबाना बन्द हो गया। स्वामी जी को पहिले ही भय था कि इतनी बड़ी भीड़ में विशूचिका अवश्य फैलेगी। सो उन्होंने एक पत्र में कर्नल अलकाट को ऐसा ही लिखा था। हरिद्वार में भी वह डाक्टरों से इस विषय में चर्चा करते रहे कि तुम्हारा प्रबन्ध ऐसा बुरा है कि इससे विशूचिका अवश्य फैलेगी। ११ अप्रैल को स्वामी जी वहां से देहरादून को चले गये। यद्यपि उनका विचार सीधा बम्बई जाने का था, क्योंकि कर्नल अलकाट प्रभृति साहब बम्बई में पहुंच गये थे, और वह स्वामी जी को पत्रों पर पत्र लिखते थे। परन्तु स्वामीजी ने बीमार होने के कारण सीधा बम्बई जाने का विचार छोड़ दिया और कर्नल साहब को इस बात की सूचना दे दी।

पश्चिमोत्तर प्रदेश व अवध तथा बिहार प्रान्त में धर्म्म प्रचार

१४ अप्रैल सन् १८७९ से मार्च सन् १८८१ ई० तक।

स्वामी दयानन्द जी १४ अप्रैल को हरिद्वार के मेले से छुट्टी पाकर देहरादून पहुंच गये। वहां के प्रेमी सज्जनों ने पहले बुलावा भी दे रक्खा था। स्वामी जी ने विचारा कि उनकी अभिलाषा भी पूर्ण हो जावेगी और कुछ काल विश्राम भी कर लेंगे। क्योंकि हरिद्वार में अतिसारों से बड़े निर्बल हो गये थे। देहरादून में पहुंच कर भी यह दशा थी कि वार्तालाप करते २ भी इनको कई बार दिशा जाना पड़ता था, इसीलिये देहरादून में दो तीन मुख्य मनुष्यों से वार्तालाप करने के सिवा धर्म प्रचार का काम दो चार दिन तक नहीं किया गया। दो चार दिन के पीछे जब दस्तों में कुछ आराम आया तो व्याख्यानों की विज्ञप्ति दी गई। स्वामी जी मिस्टर डक साहिबा के बंगले पर उतरे हुए थे। दूसरे दिन व्याख्यान में जब बाइबल का खण्डन हुआ तो एक पादरी जी बड़े क्रोध में आये और व्याख्यान की समाप्ति पर कहने लगे

कि "पण्डितजी ने केवल धूलि उड़ाई, और अपने वैदिक मत को धूलि में ढांप लिया" आनन्द तो यह कि यह केवल क्रोधवचन था, परन्तु इसके आगे जो था कि "आज तक किसी पण्डित ने हमको ऐसी वेदों की शिक्षा नहीं दी" वह इसका कथन वास्तव में सत्य था। पादरी जी ने स्वामी जी के व्याख्यान का खण्डन करना आरम्भ किया। और जब खण्डन कर चुके और स्वामी जो उत्तर देने लगे तो पादरी साहब झट जामे से बाहर हो गये, क्रोध को न रोक सके और उत्तर के बीच में ही बोलने लगे हर एक वाक्य पर व्यर्थ टिप्पणीं करने लगे, यहां तक कि उनके साथी अंग्रेजों ने भी उसके इस अनुचित व्यवहार को देख कर उसको ऐसा करने से रोकना चाहा। जिससे वह क्रोधित होकर चले गये।

उनके चले जाने के अनन्तर उनके साथी अंग्रेजों में से दो साहबों ने एकान्त वार्तालाप करने की इच्छा प्रकट की, चुनांचि उनकी अभिलाषा पूर्ण की गई, परन्तु उनके साथ ही सोशियल मिशन स्कूल के हैड मास्टर मिस्टर बोस साहब शुद्ध हिन्दुस्तानी ईसाई भी साथ आये। मिस्टर कालटोन साहब ने अभी वार्तालाप आरम्भ भी नहीं किया था कि मिस्टर बोस ने बाईबल का मण्डन करना आरम्भ किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मिस्टर बोस और कालटोन का अन्त में शास्त्रार्थ होने लग पड़ा और इसी वार्तालाप में लगभग आधो रात्रि व्यतीत हो गई।

इस व्याख्यान में स्वामी जी ने कई मतों का खण्डन किया, मुसलमानों के मत का चूर्ण कर, ब्रह्म धम की भी खूब धूलि उड़ाई। जिससे देहरादून में कुछ थोड़े से सत्य विवेकी मनुष्य के बिना सब लोग इनके शत्रु बन गये। मुसलमान तो रुधिर के प्यासे हो गये, इसी लिये उस रात्रि को तो यह भय था कि बगले को जो फूंस का बना हुआ है कोई अग्नि न लगा देवे। दूसरे दिन दोपहर को एक बड़ा मुसलमानों का जन समुदाय स्वामी जी के बंगले में आ घुसा, परन्तु केवल

शास्त्रार्थ के नियमों पर ही कुछ बात चीत हुई, और दंगा फसाद कुछ न हुआ। देहरादून में स्वामी जी ने केवल ९ व्याख्यान दिये। क्योंकि स्वामी जी निर्बल पहले ही थे और बीमारी ने अभी पूरे तौर पर पीछा नहीं छोड़ा था। काम की अधिकता से फिर व्याधि बढ़ गई और दस्त आवे लग गये। इसलिये यहां से ३० अप्रैल को स्वामी जी ने सहारनपुर की यात्रा कर दी, उनके जाने से पीछे २९ जून सन् ७९ ई० को आर्य समाज वहां स्थापित हो गया।

सहारनपुर में कर्नल आलकट साहिब व मैडम ब्लैवटस्की आये हुए थे, उनसे स्वामी जी का मिलाप हुआ, दो दिन वहां ठहरे फिर सबके सब मेरठ को चले गये।

२ मई को स्वामी जी कर्नल और मैडम साहिबा के सहित मेरठ आ पहुंचे। पहले दिन तो स्वामी जी ने अपने विषय पर व्याख्यान दिया और अपने व्याख्यान में कर्नल साहिब व मैडम ब्लैवटस्की साहिबा का भी वर्णन किया। व्याख्यान समाप्ति के अनन्तर कर्नल जी ने कुछ अंग्रेजी में वक्तृता की और दूसरे दिन व्याख्यान देने का प्रण किया। सो ५ मई को कर्नल जी का व्याख्यान हुआ, जिसमें इन्होंने अमरीका देश का वर्णन कर ईसाई मत पर कुछ कहा, और प्रतिपादन किया कि जब समुदाय किस प्रकार सन्मार्ग से कुमार्ग में पड़ा है और साथ ही थ्यासोफीकल सोसायटी के स्थापित करने के अभिप्राय को भी प्रतिपादन किया और फिर यह भी वर्णन किया कि अब क्यों मनुष्यों ने स्वामी दयानन्द को अपना अध्यापक और मार्ग दृष्टा माना है। कर्नल साहिब के लेक्चर का अनुवाद पीछे उर्दू में किया गया। फिर थोड़े से मिनट स्वामी जी ने वक्तृता की और फिर मैडम ब्लैवटस्की ने कुछ कहा। इस प्रकार उस दिन की कार्यवाही निर्विघ्न समाप्त हो गई। मेरठ में कर्नल साहिब व मैडम साहिबा को बड़ी धूम धाम से प्रीति भोजन दिया गया। ७ मई को वह तो बम्बई को पधारे और स्वामी जी २५ मई तक वहीं ठहरे।

वहां से चलकर मेरठ की राह स्वामी जी औषधि कराने और आराम करने के लिये छलेसर आ गये और यहां लगभग एक मास तक ठहरे रहे। ३ जुलाई को छलेसर से चलकर मुरादाबाद पहुंचे।

इससे पहले भी स्वामी जी एक बार मुरादाबाद हो गये थे, जिसका संक्षिप्त वर्णन तुम पढ़ चुके हो। अब के भी स्वामी जी पहले के समान ही राजा जयकृष्णदास जी सी० ऐस० आई० के बंगले पर ठहरे। क्योंकि बीमारी से निर्बल थे, इसलिये २७ दिनों में केवल ३ व्याख्यान दिये। एक व्याख्यान कलक्टर साहिब के प्रबन्ध से राजनीति विषय पर छावनी में भी हुआ। व्याख्यान समाप्ति पर कलक्टर साहिब ने बड़ी बड़ाई की। यहां पर पहले आगमन में ही मुन्शी इन्द्रमणि और साधु श्यामसुन्दर जी इनके अनुयायी हो गये थे, मुन्शी इन्द्रमणि जी ने मुसलमानों के धर्म विरुद्ध पुस्तक प्रकाश करने से अपना नाम प्रसिद्ध किया हुआ था। अब स्वामी जी के साथ मिलने से मुन्शी जी ने और भी मान पाया। मुंशी जी केवल फारसी व अर्बी के पण्डित थे, इसलिये चाहे मुसलमानी धर्म का खण्डन तो कर सकते थे परन्तु अपने धर्म का यथोचित् प्रतिपादन नहीं कर सकते थे। स्वामी जी के मिलाप से उनकी यह न्यूनता दूर हो गई। अन्त को इन्होंने १८७६ ई० में समाज की सभ्यता स्वीकार कर ली। परन्तु यह समाज कुछ दिन ही चला और फिर बन्द हो गया। इस बार फिर २० जौलाई को हवन और यज्ञ के अनन्तर समाज खोला गया। मुन्शी इन्द्रमणि प्रधान, श्यामसुन्दर जी उपाध्यक्ष, कंवर परमानन्द व ठाकुर शंकरसिंह जी मन्त्री और राजा जगन्नाथ पुस्तकाध्यक्ष नियत हुये। इनके बिना २८ महाशय सभासद बने। समाज के सभ्यों को उपदेश करते हुए एक बार स्वामी जी ने प्रतिपादन किया कि यह तुम कभी न कहो कि हम स्वामी दयानन्द के मत में हैं, तुम्हारा मत वेद है। स्वामी जी अभी मुरादाबाद में ही थे कि बदाऊं से एक सभासद् उनके लेने को आ गया और उसके साथ स्वामी जी ३० जुलाई को बदाऊं को चले गये।

स्वामी जी जब बदाऊं में पहुंचे और यद्यपि अभी पूर्ण आरोग्य नहीं हुए थे तो भी १४ अगस्त तक निरन्तर नित्य व्याख्यान देते रहे। एक दिन वहां के पण्डितों से "ईश्वर साकार है या निराकार, अवतार और वेदों के पढ़ने में अधिकार" इन विषयों में वार्तालाप होता रहा। पण्डितों ने पुरुष सूक्त के "सहस्रशीर्षा आदि मन्त्र पढ़कर कथन किया कि ईश्वर के सिर हैं। जिनके उत्तर में स्वामी जी ने सिद्ध कर दिया कि इस मन्त्र का अर्थ यह है कि "समस्त जगत् जिसके असंख्य सिर नेत्र और पाद हैं। उस परमेश्वर में ठहरा हुआ है" इसी प्रकार अवतार और वेद पढ़ने में अधिकार इन विषयों पर भी वेद मन्त्रों द्वारा वार्तालाप होता रहा।

सलोनों का त्योहार भी स्वामी जी को वहीं आया, जब उन्होंने बूढ़े ब्राह्मणों को मौली हाथ में लिये भिक्षा मांगते देखा तो बड़ा अफसोस हुआ कहने लगे कि 'अविद्या ने ब्राह्मणवंश की कैसी दुरवस्था कर दी है। यह त्योहार शालाओं के विद्यार्थियों की रक्षा और सत्कार के लिये था, आज बूढ़े और युवा सब ही सूत बांधते फिरते हैं।" १३ अगस्त तक स्वामी जी बदाऊं में रहे फिर वहां से बरेली को चले गये।

बरेली में स्वामी जी १४ अगस्त सन् १८७८ को पहुंचे और लक्ष्मी नारायण खजांची के यहां उतरे और नियमानुसार धर्मोपदेश व व्याख्यान देने लगे। एक दिन व्याख्यान में पादरी स्काट, मिस्टर रीड कलैक्टर साहिब और मिस्टर एडविड साहिब कमिश्नर भी विद्यमान् थे। जब तक पुराणों का खण्डन होता रहा तब तक तो साहिब प्रसन्न हो हंसते रहे और जब ईसाई धर्म की धूल उड़ने लगी और हजरत मसीह की उत्पत्ति का भेद खुला तो जरा घबराये। ला० मुन्शीराम लिखते हैं कि कमिश्नर साहिब ने लाला लक्ष्मीनारायण को बुलाकर कहा कि "पण्डित जी से कह देना चाहिये कि बड़ी कठोरता से काम न लिया करें। यदि मूर्ख अनपढ़ हिन्दू और मुसलमान बिगड़ गये तो तुम्हारे स्वामी पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जावेंगे

खजांची ने बड़ी हलीमी और भय से यह संदेश स्वामी जी को पहुंचाने का यत्न किया। परन्तु अभी पूरा वाक्य उसके मुख से नहीं निकला था कि स्वामी जी उनके वादविवाद और बेचैनी को देखकर समझ गये और हंस पड़े। उस दिन व्याख्यान आत्मा के स्वरूप पर था। स्वामीजी व्याख्यान में कहने लगे कि "लोग कहते हैं कि सत्य प्रतिपादन न करो, कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर क्लेश देगा, अरे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न क्यों न हो, हम तो सत्य का ही प्रतिपादन करेंगे।" लाला मुंशीराम जी लिखते हैं कि इसके अनन्तर उस उपनिषद् वाक्य को पढ़कर (जिसमें लिखा है कि आत्मा को न कोई शस्त्र काट सकता है न अग्नि जला सकती है,) गर्ज कर बोले कि "यह शरीर अन्त में छूटना ही हैं इसकी रक्षा में प्रवृत्त हो, अधर्म करना व्यर्थ है, इसे जिसका जो चाहे नाश कर दे परन्तु वह शूरवीर पुरुष दिखलाओ जो यह दावा करता है, कि वो मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर संसार में दिखलाई नहीं देता मैं यह भी नहीं सोच सकता कि मैं सत्य का दमन करूंगा या नहीं।" पादरी स्काट साहिब सदैव उनके व्याख्यान में आते थे, उस दिन रविवार होने से नहीं आये थे। स्वामी जी का उनसे कुछ प्रेम हो गया था और उनको भक्त स्काट कहा करते थे। जब व्याख्यान के अन्त में स्वामी जी ने पूछा कि आज भक्त स्काट क्यों नहीं आये तो उत्तर मिला कि आज उनका गिरजा है। तो स्वामी जी ने कहा कि चलो आज उनके गिरजे में चल। सो तीन चार सौ मनुष्यों की भीड़ उनके साथ चली गई। जब गिरजे में पहुंचे तो पादरी स्काट जी अपना स्मरण समाप्त कर चुके थे। स्वामी जी को देखकर इनके स्वागत के लिये नीचे उतर आये और लेजाकर वेदी पर इनको बिठला दिया, फिर कुछ उपदेश देने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने खड़े खड़े मनुष्य पूजा पर कुछ विचार प्रकट किये। २५ अगस्त १८७९ को स्वामी दयानन्द और पादरी स्काट का परस्पर आवागमन विषय पर लेख द्वारा शास्त्रार्थ हुआ। २६ अगस्त को फिर

शास्त्रार्थ इस बात पर होता रहा कि क्या ईश्वर देह धारण करता है या नहीं ? २७ अगस्त को इस प्रश्न पर विचार होता रहा कि क्या ईश्वर पाप भी क्षमा करता है या नहीं ? इन ३ दिनों का शास्त्रार्थ ट्रैक्ट के रूप में छपकर प्रकाशित हो चुका है।

बरेली से स्वामी जी शाहजहांपुर चले गये वहां १७ सितम्बर तक ठहरे, यहां पर ६ सनियमक व्याख्यान हुए और वार्तालाप नित्य होता रहा, पौराणिक लोगों ने एक पौराणिक पंडित अंगद शास्त्री को जो कभी पीलीभीत की सरकारी पाठशाला में १५) मासिक पर नौकर था बुलाया। पंडित जी सामान्य ब्राह्मणों की सी चालें चलते रहे, और कभी सामने न आये। समस्त समय नियम प्रबन्ध में ही खो दिया, पंडित जी का वास्तव में यह अभिप्राय था, कि एक आम जलसा करके उसमें कहा जावे कि स्वामी जी इससे बचना चाहते थे। सार यह है कि पंडित जी अपने पत्रों में ही निज पंडिताई प्रकट करते रहे। इन चिट्ठियों में पण्डित जी कठोर भाषण भी करते रहे, स्वामी जी कठोर भाषण के श्रवण करने और सहन करने के सहनशील हो गये थे। इसलिये यह अतीव नम्रता से प्रेममय वचनों में उत्तर देते रहे।

शाहजहांपुर में स्वामी जी के आगमन से पूर्व ही समाज स्थापित हो चुका था। जिसके मंत्री ला० बखतावर सिंह जी आर्य दर्पण के स्वामी व प्रबन्धकर्ता थे।

शाहजहांपुर से १८ सितम्बर को चलकर स्वामीजी २५ सितम्बर को फर्रुखाबाद पहुंचे। यहां भी आर्य समाज तो पहले ही खुल चुका था, परन्तु स्वामी जी के आगमन से उसकी बड़ी पुष्टि हुई। सब सभासदों ने मिलकर एक बड़ी रकम चंदे की इकट्ठी की, समाज के लिये एक सविस्तार स्थान का प्रबन्ध किया गया। वेद भाष्य की छपाई के लिये भी इस समाज ने १०००) एक सहस्र रुपया प्रदान किया। ५ अक्तूबर १८७९ ई० को स्वामी जी ने समाज के नये मकान में व्याख्यान दिया। जब स्वामी जी चलने के लिये तैयार हुए तो

पौराणिक पण्डितों ने २५ प्रश्न लिखकर धर्म सभा की ओर से स्वामी जी के पास भिजवा दिये। सो ७ अक्तूबर को स्वामी जी उनके उत्तर देकर ८ अक्तूबर का फतहगढ़ चले गये।

इन प्रश्नों के उत्तर स्वामी जी की रचना से मिलते हैं। इनमें कोई भी ऐसी बात नहीं जो उनकी शिक्षा के विरुद्ध हो, या जिसका उन्होंने अपनी कृति में उत्तर न दिया हो इसलिये उन प्रश्नोत्तर का यहां लिखना आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

एक प्रश्न यह किया गया था कि कोई महमदी या ईसाई आपके मत में आ सकता है या नहीं और इसका सिद्ध किया हुआ भोजन आप या आपके मत में खा सकते हैं या नहीं? इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि मेरा कोई मत नहीं जो वेदों की आज्ञा पर चले, वह वैदिक मतानुयायी है। क्या तुमने अविद्या में पड़कर खाना पीना, मलमूत्र त्यागना जूति धोती अंगरखे का पहिरना आदि धर्म मान रक्खा है। हा खेद! सुनो आंख खोलकर देखो! कि यह सब अपनी अपनी देशाचाल है।" इस बार भी स्वामी जी ने यहां पर कई मनुष्यों को यज्ञोपवीत कराया। सरकारी अफसर भी उनके व्याख्यानों में आते रहे।

८ अक्तूबर को फर्रुखाबाद से चलकर स्वामी जी कानपुर प्रयाग होते हुए २३ अक्तूबर को मिर्जापुर आ पहुंचे और वहां २९ अक्तूबर तक व्याख्यान देते रहे। अभी तक शरीर ठीक स्वस्थ नहीं हुआ था निर्बलता अभी बाकी थी और कुछ बीमारी भी थी, परन्तु तो भी कार्य निरन्तर करते रहे। व्याख्यान और वार्तालाप का ही काम इतना था कि साधारण मनुष्य तो घबरा जाता था, परन्तु स्वामी जी इसके अतिरिक्त वेदभाष्य नित्य लिखते थे। मिर्जापुर में समाज तो उनके आगमन से पूर्व ही खुल गया था। मिर्जापुर में दानापुर के सभ्य उन को ले जाने के लिये पधारे। सो उनके साथ स्वामी जी ३० अक्तूबर को दानापुर चले गये।

दानापुर में स्वामी जी १९ नवम्बर तक रहे और २४ व्याख्यान भिन्न-भिन्न विषयों पर इन्होंने दिये, इन व्याख्यानों में एक देशोन्नति और एक पाठ्य प्रणाली पर भी था। दानापुर में आर्य समाज अप्रैल १८७८ में ही जब कि स्वामी जी अभी पंजाब में ही थे, नियत हो चुका था। यहां पहले एक हिन्दू सतसभा चर्चा के लिये खुली हुई थी, उसका नाम बदल कर आर्य समाज रक्खा गया था। यहां पर भी विपक्षियों ने कई प्रकार की अनुचित धमकियें दीं, परन्तु स्वामी जी ने कदापि अपनी गर्ज को धीमे न किया। एक युवा ने मुसलमानों के जोश से भयभीत हो उठकर स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप मुसलमानों के धर्म का खंडन न करें। जिसके उत्तर में उन्होंने व्याख्यान में ही सबके रुबरू कहा "कि जब मुसलमानों का बल था, खण्ड से हमारा खंडन किया अब जब राज्य अच्छा है और धार्मिक (नुक्ताचीनी) दोषान्वेषण कर प्रकट करने की आज्ञा है तो क्या मैं जुबान से भी उनकी पोल प्रकट न करूं।" दानापुर में भी कई अंग्रेज और पादरी साहिब उनके व्याख्यान सुनने और वार्तालाप से लाभ उठाने को आते रहे। जैसा कि एक दिन जब जोन्स साहिब ने छूत छात के विषय में शंका उठाई तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हम किसी के साथ खाने या न खाने में धर्म अधर्म नहीं मानते यह सब बातें देश व जाति के रिवाज से सम्बन्धित हैं। जो समझदार हैं वह भी बिना आवश्यकता के अपनी देशचाल के विरुद्ध काम नहीं करते।" इसी कथन के बीच में ही स्वामी जी ने यह भी कहा, कि मूर्ति पूजन भी हिन्दू जाति का सच्चा धर्म नहीं है।

यहां के पौराणिक पण्डितों ने पं० चतुर्भुज को स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिये बुलाया, वह आ तो गया परन्तु इतना साहस न पड़ा कि स्वामी जी के पास आकर शास्त्रार्थ करे। इसलिये स्वामी जी के पास नित्य सन्देश आने लगे कि आप किसी दूसरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करें, चुनांचि अन्त को स्वामी जी, उस मकान में जो शास्त्रार्थ

के लिये परस्पर नियत हुआ था चले गये। परन्तु पण्डित चतुर्भुज जी फिर भी न आये और अपने स्थान धर्म सभा के मन्त्री को भेज दिया और मकान के दूसरे द्वार से हिन्दु मुसलमानों का एक बड़ा समुदाय दंगा फसाद करने के लिये खड़ा कर दिया। जब स्वामी जी ने मन्त्री जी से शास्त्रार्थ करने से इन्कार किया, तो मन्त्री महाशय ने दीपक बुझा दिया, एकाएक ताली बजाकर हल्ले का सामान खड़ा कर दिया। परन्तु स्वामी जी इतने डरपोक न थे जो इस काम से घबरा जाते, अच्छी तरह सावधानी से विपक्षियों को डांटते हुए अपने साथियों के साथ वहां से निकल आये। मूर्ख विपक्षियों ने ईंटें चलाईं परन्तु किसी को भी चोट न लगी।

दानापुर से स्वामी जी १६ नवम्बर को बनारस (काशी जी) आ गए और छः मास तक ठहरे। वैदिक प्रेस खोला, उसका प्रबन्ध करते रहे और रचना भी करते रहे, इसके सिवा पण्डितों को भी शास्त्रार्थ के लिये ललकारते रहे, परन्तु कोई सामने न आया। युगल-किशोर नामक एक पण्डित ने विचित्र लीला कर दिखलाई। कुछ मनुष्यों के नाम से एक बनावटी विषय का छपवाकर बांटा कि हम दयानन्द सरस्वती के पास गये थे, जब उनको वेद विरुद्ध और शिष्टा-चार के विपरीत वार्त्तालाप करते सुना, तो हमने काशीस्थ ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा के विद्वानों से अपने संदेह निवृत्त करने की प्रार्थना की, जब वहां से हमारे पूर्ण संदेह निवृत्त हो गये तो पण्डित युगलकिशोर के उपदेश से प्रायश्चित किया और देवताओं के दर्शनों से अपने पाप निवृत्त किये।" आदि २।

जब यह विज्ञापन ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा में पढ़ा गया तो सभा ने निम्नलिखित कार्यवाही की जो मई १८८० ई० के आर्य दर्पण में प्रकाशित हुई थी।

'बाबू नारायणसिंह सभासद आर्यसमाज बनारस ने पण्डित युगल-किशोर से पूछा कि वे मनुष्य कहां हैं, पंडितजी क्रोध में आकर बोले कि

आगामी सभा में हम उनको ले आवेंगे। उक्त पण्डित जी ने तो यह विज्ञापन कपोल कल्पित ४ नाम ही रचकर एक खेल करने के लिये लिख दिया था, अब चारों को लावें कहां से। अब तो पण्डितजी घबराये और इधर-उधर के लड़कों को पढ़ाने लगे कि तुमने वहां जाकर ऐसा ऐसा कह देना। परन्तु ऐसे बुरे काम में पण्डित जी की कौन मानता था। प्रायश्चित के नाम से ही मनुष्य कांप उठते हैं, इस कारण से कि हर एक में बदनाम हो जावेंगे और लोग घृणा की दृष्टि से देखेंगे। अन्त को पण्डित जी येन केन एक मनुष्य को अगली सभा में लाये। जब उससे उसका नाम पूछा गया तो उसने अपना नाम रामकृष्ण दुबे बतलाया (पण्डित जी ने रामप्रसाद दुबे पढ़ाया होगा परन्तु बनावटी नाम कब लग याद रह सकती है वह भूल गया) फिर पूछा गया कि तुम स्वामी जी के पास गये थे ? उसने उत्तर दिया कि कभी नहीं। जब यह बात हुई तो पण्डितजी का भेद खुल गया। फिर लोगों ने कहा कि आपने विज्ञापन झूठा क्यों छपवाया है, इससे पण्डित जी गुस्से में आकर अस्तव्यस्त कहने लगे और उनके मुख से यह वाक्य निकल गया कि "जिसने दयानन्द का मुख भी देखा हो वह हिन्दू वीर्य नहीं" इस बात के कहने पर बाबू नारायण सिंह ने कहा कि सं० १९२६ वि० को काशी जी में काशी नरेश जी के समक्ष पण्डित बाल शास्त्री और स्वामी विशुद्धानन्द आदि सहस्रों मनुष्य एकत्र हुए थे, आप उन सबको मानों ऐसे बुरे दुर्वचन निकालते हैं। इस सभा ने सम्मति कर पण्डित युगलकिशोर को सभा में से निकाल दिया। निकलते समय उन्होंने बड़ा रौला मचाया और सम्भव था कि मार पीट होने लगे परन्तु ईश्वर की दया से झगड़ा अधिक न बढ़ा।"

सन् १८८० के आरम्भ में लगभग २० व्याख्यान स्वामी जी ने बनारस में दिये, जिनकी समाप्ति पर १५ अप्रैल सन् १८८० ई० को वहां समाज स्थापित हो गया। और वैदिक प्रेस भी खोला गया, काशी जी में अब भी आर्य समाज और समाज मन्दिर है।

बनारस से स्वामी जी महाराज ५ मई सन् १८८० ई० को रवाना होकर १९ मई तक लखनऊ में उपदेश करते रहे और फिर वहां से फर्रुखाबाद आ गये। फर्रुखाबाद में ३० जून सन् १८८० ई० तक व्याख्यान देकर मैनपुरी को चले गये। मैनपुरी में कुछ दिन व्याख्यान देते रहे, उनके जाने से ११ दिन पीछे वहां आर्य समाज भी खुल गया।

मैनपुरी से स्वामी जी ८ जुलाई को मेरठ में पहुंच गये। मेरठ में रमाबाई पण्डिता स्वामी जी से मिलने को आई, और उसने आर्य समाज में स्त्री शिक्षा पर कई व्याख्यान दिये। स्वामी जी ने एक २ प्रति अपनी पुस्तकों की उक्त पण्डिता जी को भेंट की। और मेरठ समाज ने १२५) रुपये पथ व्यय के लिये स्वामी जी को भेंट किये।

स्वामी जी अभी मेरठ में ही थे कि कर्नल अलकाट और मैडम ब्लैवटस्की भी वहां आ गये। और ईश्वर विषय पर स्वामी जी ने आर्य समाज और थ्यासोफीकल सोसायटी के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट रीति से वर्णन किया। यह उस फूट का मानो बीज था, जो पीछे आर्य समाज और थ्यासोफीकल सोसायटी में पड़ गई थी। इस वर्ष स्वामी जी मेरठ के वार्षिकोत्सव में विराजते थे।

मेरठ निवास के दिनों में ही स्वामी जी मुजफ्फर नगर के रईस ला० निहालचन्द जी की प्रार्थना से मुजफ्फरनगर पधारे, वहां पर लगभग १० व्याख्यान इनके हुए।

मेरठ से स्वामी जी देहरादून चले गये, अब उनके विपक्षियों ने एक नई चाल ग्रहण कर ली थी कि शास्त्रार्थ के लिये सन्मुख तो न आते थे, किन्तु शास्त्रार्थ के लिये शर्त शरायत (नियम प्रबन्ध) में इतनी कठिनता डाल देते थे कि जिनका फैसला होना कठिन होता था। चुनांचे अब भी पौराणिक पण्डितों व मौलवी साहबों ने ऐसा ही किया। हां एक पादरी साहब अवश्य पधारे, परन्तु अपना सा मुख ले लज्जा के वस्त्र धारण कर चले गये। यहां पर २० नवम्बर सन् १८८१ ई० तक उपदेश होता रहा।

यहां से स्वामी जी मेरठ की राह आगरे आ गये और २० मार्च १८८१ तक यहीं विराजे। यह वही आगरा है जहां से स्वामी जी ने मानों परोपकारी जीवन में प्रवेश किया था। अब १७ वर्ष के निरन्तर परिश्रम और दिग्विजय के पीछे फिर यहां आ पधारे। और लगभग साढ़े तीन मास यहां ठहरे रहे। २५ नवम्बर को आये थे २८ से व्याख्यान आरम्भ किये और २२ दिसम्बर तक निरन्तर २५ व्याख्यान दिये। २२ दिसम्बर से १० दिन की अवधि, शंका निवृत्ति के लिये लोगों को दी गई। अन्त को २६ दिसम्बर को आगरे शहर में भी एक आर्य समाज स्थापित हुआ।

२३ जनवरी सन् १८८१ ई० को २य, वार व्याख्यानों की प्रणाली आरम्भ हुई, जो २९ जनवरी को समाप्त हुई। इसी प्रकार फरवरी और मार्च भी व्याख्यानों में व्यतीत हो गये।

रोमन कैथोलिक लार्ड विशप की प्रार्थना से उन्होंने रोमन कैथोलिक गिरजे को देखा, और वहां पादरी साहब से कुछ काल वार्तालाप करते रहे।

पौराणिक लोगों ने नियमानुकूल आडम्बर रचा और शर्तों के फैसले में ही सारा बल लगा दिया। पण्डित चतुर्भुज जी यहां भी पधारे और स्वामी जी के उत्तर में व्याख्यान देते रहे। उन्होंने दो मनुष्यों से बड़ी धूमधाम से प्रायश्चित्त कराया। एक मनुष्य इनमें तो वह था जिसने स्वामी जी के उपदेश से कण्ठी तोड़ डाली थी, और २य, महाशय आर्य समाजियों को संस्कृत पढ़ाने से पापी हो गये थे।

पश्चिमोत्तर प्रदेश में या यह समझो कि अपर इण्डिया में स्वामी जी महाराज का यह अन्तिम दौरा था, इसके पीछे उक्त प्रदेश निवासियों ने उनके चरणों का दर्शन नहीं किया।

१८८१ ई० में राजपूताने में धर्म उपदेश

१० मार्च सन् १८८१ ई० को आगरे से चलकर भरतपुर पहुंचे, और २८ मार्च तक यहां धर्मोपदेश करते रहे और २९ मार्च को वहां से चलकर जयपुर पधारे। यहां एक माह से कुछ अधिक व्याख्यान दिये और आर्य समाज भी स्थापित किया।

जयपुर से ५ मई सन् १८८१ को फिर अजमेर में आये, यहां उनके आगमन से पूर्व ही फरवरी सन् १८८१ को समाज स्थापित हो चुका था। ८ मई से व्याख्यान आरम्भ हुए और ३० मई १८८१ तक २२ व्याख्यान हुए। फिर कुछ दिन शास्त्रार्थ के लिए वार्तालाप होता रहा। और २२ जून १८८१ तक १५ व्याख्यान और हुए। इन व्याख्यानों के प्रबन्धकर्ता कश्मीर की कौंसिल के सभ्य राय भागमल जी थे। जिन दिनों में स्वामी जी अजमेर में ठहरे हुए थे, उन्हीं दिनों में नये दरवाजे के बाहर मण्डी में आग लग गई। जिससे लोगों की बड़ी हानि हुई। स्वामी जी को दया आई और चन्दा करवाकर उनकी सहायता की।

२३ जून सन् १८८१ को मसूदा के अधिपति रावजी के यहां पधारे, और १७ अगस्त तक वहां विराजे। व्याख्यान तो प्राय: होते रहे परन्तु इन दिनों में दो बड़े यज्ञ भी हुए। एक श्रावण शुद्धि पुष्या १९३८ को जिसमें राव मसूदा आप यज्ञकर्ता और स्वामीजी कार्यकर्ता थे। उस दिन ३२ मनुष्यों ने यज्ञोपवीत धारण किये, जिनमें राव मसूदा जी भी विद्यमान थे। और १६ से अधिक जैनी थे। २य, यज्ञ भाद्रपद कृष्णा पंचमी अर्थात् १४ अगस्त सन् १८८१ को हुआ, इसमें भरतपुर से आये हुए कई मनुष्यों ने यज्ञोपवीत धारण किये।

ब्यावर से एक अंग्रेज और एक देवी पादरी स्वामी जी के पास आये और वार्तालाप करते रहे। इन्हीं दिनों जैनियों के प्रसिद्ध साधु सिद्धकरण जी से भी शास्त्रार्थ हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि ३५ मनुष्यों ने जैनमत त्याग वैदिक मत ग्रहण किया।

यात्रा के समय राव मसूदा ने ५००) रुपये वेद भाष्य प्रकाश के लिये भेंट किये।

मसूदा से स्वामी जी रायपुर जा पहुंचे और वहां १८ अगस्त से ८ सितम्बर तक उपदेशादि करते रहे। रायपुर राजपूताना की एक छोटी सी राजधानी है। वहां के मन्त्री उन दिनों में एक यवन महाशय थे। जब स्वामी जी ने यह सुना तो वहां के ठाकुर जी से कहा कि यवनों को राज्य प्रबन्ध कार्य नहीं देना चाहिये क्योंकि यह दासी पुत्र हैं। (स्वामी जी का कटाक्ष हाजरह बीबी हजरत इब्राहीम की ओर था) इस पर मुसलमानों को बड़ा जोश आया, और ईद के दिन मौलवी साहब को लेकर शास्त्रार्थ के लिये स्वामी जी के पास आये। परन्तु जब स्वामी जी ने अपना आशय प्रकट किया तो निरुत्तर होकर चले गये।

रायपुर से वापिस आकर स्वामी जी १५ दिन नयानगर (ब्यावर) में ठहरे और उपदेश करते रहे। वहां से मसूदा की राह ६ अक्तूबर को बनेड़ा राज में जा निकले। इस राज में यजुर्वेद का अधिक प्रचार था। राजाजी को भी वेद पर विश्वास था। वरंच उनके दोनों पुत्रों ने स्वामी जी को सामवेद सुनाया। परन्तु खेद यह है कि यहां महीधर भाष्य ही माना जाता था। स्वामी जी २० दिन यहां रहे और महीधर भाष्य का खण्डन कर यथार्थ अर्थ वेदों के प्रतिपादन करते रहे। महाराज के पुस्तकालय में अच्छे २ पुस्तक थे। सो सामवेद और निघण्टु की पड़ताल करके संशोधन करते रहे। और २६ अक्तूबर को वहां से चल पड़े।

बनेड़ा से चलकर स्वामी जी चित्तौड़ गढ़ २७ अक्तूबर १८८१ को पहुंचे। इन दिनों में लार्ड रिपन वहां आने वाले थे। महाराजा साहब भी अपनी राजधानी के राजाओं, ठाकुरों, सरदारों व जागीरदारों सहित यहीं विराजते थे। कविराज श्यामलदास जी मेम्बर कौंसिल मेवाड़ से स्वामी जी की लिखा पढ़ी थी, परन्तु दर्शन अभी नहीं हुए थे।

जब स्वामी जी चित्तौड़ पहुंचे तो कवि जी ने खेमे, फरश फानश

आदि का पूरा २ प्रबन्ध कर दिया। १५ नवम्बर को गवर्नर जनरल के दरबार की तिथि नियत थी। इसलिये इसके पहिले महाराणा जी से भेंट न हो सकी। परन्तु इस समय में भी कविराज तथा अन्य कई रईस आते रहे, और धर्मोपदेश सुनते रहे। जो रईस आते थे उनमें निम्न लिखित प्रसिद्ध व बड़े २ रईस थे :

(१) राव अर्जुनसिंहजी रईस आसींद।
(२) राजा फतहसिंह जी रईस देलवाड़ा।
(३) राजाधिराज नाहरसिंह जी शाहपुराधीश।
(४) रावत उम्मेदसिंह जी कानोड़ अधिपति।
(५) राजा अंगदसिंह जी सादड़ी के मालिक।

१५ नवम्बर के पीछे स्वामी जी की महाराणा जी से भेंट हुई। स्वामी जी भी महाराणा जी के पास गये, महाराणाजी भी स्वामी जी के पास आते रहे। सो पहले दिन ही राजनीति के उपदेश में स्वामी जी ने परस्त्री गमन निषेध का उपदेश दिया।

फिर दूसरी बार ४ दिसम्बर को स्वामी जी के पास स्वामी जी के निवास स्थान नदी पर राजा जी दरबारियों सहित पधारे। और उपदेश सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। दरबार ने स्वामी जी को उदयपुर में आने के लिये प्रार्थना की। परन्तु स्वामी जी ने कहा कि मैं अब बम्बई को जाता हूं। उधर से होकर उदयपुर आऊंगा। महाराणा साहिब ने और अन्य दरबारियों ने स्वामी जी को चलते वक्त पथव्यय के लिये २००) रु० भेंट किये।

चित्तौड़ से स्वामी जी २१ दिसम्बर को इन्दौर में पहुंचे। परन्तु राजा जी उस समय राजधानी में नहीं थे, इसलिये २७ दिसम्बर तक ही वहां ठहर कर बम्बई को चले गये। इन्दौराधीश स्वामी जी की बड़ी बड़ाई करते थे इनको स्वामी जी के उपदेश सुनने की बड़ी अभिलाषा थी। केसरी दरबार के समय भी इन्होंने बहुत यत्न किया कि समस्त राजा महाराजा इनके उपदेश को सुनें, परन्तु यह यत्न

उनका फलीभूत न हुआ।

स्वामी जी के चले जाने पर जब महाराजा राजधानी में पधारे तो स्वामी जी के चले जाने का व्यौरा सुनकर बड़ा अफसोस किया, स्वामी जी को पुनरागमन के लिये तार द्वारा प्रार्थना की। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं बम्बई में अपना काम करके लौटता हुआ आऊंगा। परन्तु खेद कि वापसी के समय भी महाराज राजधानी में नहीं थे। और इतनी अभिलाषा होने पर भी स्वामी जी को अपनी राजधानी में बुलाकर उपदेश सुनने का और उनका मान करने का महाराजा इन्दौर को अवसर न मिला।

बम्बई की २य, यात्रा

३१ दिसम्बर सन् १८८१ से २२ जून सन् १८८२ ई० तक

इन्दौर से स्वामी दयानन्दजी २य, वार ३१ दिसम्बर सन् १८८१ को बम्बई में पहुंचे। यहां लगभग छः मास तक ठहरे। जिस दिन स्वामी जी बम्बई पहुंचे उसी दिन कर्नल आलकाट व मैडम साहिबा भी इनके स्वागत के लिये स्टेशन पर आये परन्तु इन (कयास) बम्बई निवास के दिनों में जो अनाद पहिले छुप रहा था, भटक उठा। कर्नल साहिब व मैडम साहिबा की सुसायटी अब भारतवर्ष में अच्छी अवस्था में चल पड़ी थी। इसलिये अब उनको यह आवश्यकता न रही थी कि वह स्वामी जी या आय समाज से सम्बन्ध रखें, जिसकी अमरीका से चलते समय उन्होंने आशा की थी, और जिसके आश्रय उन्होंने भारत में काम करना आरम्भ किया था। स्वामी जी ने सुसायटी के संस्थापकों से ईश्वर विषय पर चर्चा कर इस विषय को स्पष्ट करने का बहुत यत्न किया, परन्तु जब उनकी ओर से बराबर पहिले जैसी बात होती रही, तो स्वामी जी ने यह निश्चय किया कि नास्तिकता व आस्तिकता का मेल नहीं रह सकता। इसलिये स्वामी जी ने थ्यासोफीकल सुसायटी से पूर्ण सम्बन्ध छोड़कर विज्ञापन आदि देकर उक्त नास्तिक सुसायटी के विरुद्ध व्याख्यान दिये। जिससे

परस्पर विद्वेष अधिक बढ़ गया और दोनों ओर से लेखनी द्वारा युद्ध होने लगा।

२ मार्च सन् १८८२ ई० को आर्य समाज बम्बई का वार्षिकोत्सव हुआ, जिसमें स्वामी जी भी विराजते थे और इसमें इन्होंने व्याख्यान भी दिये।

अब तक आर्य समाज बम्बई ने लाहौर के बनाये हुए नियम उपनियम स्वीकार नहीं किये थे, सो अब के स्वामी जी के उपदेश ने समस्त आर्य समाजों को एक मत बनाने के लिये वही नियमोपनियम स्वीकार करा दिये। उपनियमों में से बम्बई को देशाचालानुकूल कुछ परिवर्तन के लिये एक उपसभा नियत हुई जिसमें यह पुरुष थे। १ रायबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख, २ राजमान् राजा श्री आत्माराम बापूदेवी, ३ राजमान् बहादुर इच्छाराम भगवानदास बी० ए०, ४ राजमान् सेवकलाल कृष्णदास, ५ प्राणजीवनदास कृष्णदास। इन्होंने कुछ थोड़ा सा परिवर्तन उप नियमों में किया।

इस बार बम्बई के उत्साही पुरुषों ने समाज मन्दिर बनाने के लियें गिरिग्राम की पुलीस की कचेहरी के पीछे एक अच्छा विस्तृत भाग भूमि का मोल ले लिया और उस जमीन पर पुस्तकालय व शाला बनाने के लिये पांच ट्रस्टी नियत कर दिये :

एक भाटिये सेठ ने विज्ञापन दिया कि यदि कोई पण्डित वेदों से मूर्ति पूजा सिद्ध कर देवें तो मैं उसको ५००) रुपये भेंट दूंगा।

बम्बई से स्वामी जी रतलाम व जावरा (मालवा) के रास्ते से होते हुए २५ जुलाई सन् १८८२ ई० को उदयपुर जाने के लिये चित्तौड़गढ़ जा पहुंचे।

उदयपुर (मेवाड़) में धर्मोपदेश और उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह को पढ़ाना

२५ जुलाई सन् १८८२ ई० से पहली मार्च सन् १८८३ ई० तक

पाठकगण ! क्या आपने कभी चितौड़ का नाम नहीं सुना। यह वह स्थान है जहां पर लाखों वीर क्षत्री योधा अपनी २ धर्मपत्नियों सहित अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये लड़ कर प्राण दे गये। यह वह स्थान है जहां स्वतन्त्रता के पुत्रों ने रुधिर बहा दिये, परन्तु जीते जी दास नहीं बने। यह वही बस्ती है जहां मुगल वंश का सरदार सारे राज्य के वीर योधा लेकर राजपूत वीरों की १२ वर्ष तक वीरता देखता रहा। यह वह स्थान है जहां पद्मनी महारानी सहस्रों राजपूतों की पत्नियों सहित जलकर दग्ध हो गई परन्तु शत्रु को यह अवसर न दिया कि राजपूती वंश को कलंकित करे। यह वह स्थान है जहां जैमल ने वीरता दिखाई और रण में अपने राजपूती रुधिर की साक्षी दी। यह वह गढ़ है जिसके लिये फतहसिंह अपनी नवोढापत्नी और माता को संग लेकर लड़ता लड़ता परलोक सिधार गया। हां यह वह भूमि भाग है जो स्वतन्त्रता के लिये बलिदान होते हुए योधाओं के रुधिर से रक्तवर्ण हो रहा है। मानो जिसकी इंच इंच भूमि धरमों पली है। यह वह स्थान है जहां सिसोदया वंश के महाराणा प्रताप ने जन्म लिया, पले, और जहां स्वतन्त्रता के अर्थ जीवन पर्यन्त लड़ते रहे। और जिसकी चप्पा चप्पा भूमि उस अद्वितीय वीर के पदों से पवित्र हो चुकी है। सिसोदिया वंश हिन्दुस्तानी राजपूत वंशों का मुकट है। यह वह वंश है कि जिसने शत्रुओं से युद्ध करते हुए कष्ट क्लेश विपदा और देश निकाले की कुछ परवाह न की परन्तु भारत को मुसलमान बादशाहों को डोली न दी। कुछ विचित्र नहीं कि उन्नीसवीं शताब्दी में हम इस वंश के प्रतिनिधि सायक महाराणा को उन्नीसवीं शताब्दी के आर्य स्वामी दयानन्द सरस्वती का शिष्य और वैदिक धर्म का सब से बड़ा दृढ़ सहायक देखते हैं, यदि ऐसा न होता तो शायद हम समझते

...दोनों ओर से लेखनी द्वारा युद्ध

...ब

...राजा

...नन्द स

...जीवनदास

...।

...नाने के

...विस्तृत

...व शाला

...पण्डित वेदों से

...दूंगा।

...) के रास्ते

...पुर जाने के लिये

के उपदेश के योग्य श्लोक, थोड़ा सा व्याकरण का विषय और कुछ अन्वय रीति भी श्रीमान् ने मुझ से पढ़ी।"

पढ़ाने के सिवा स्वामी जी ने महाराणा को उपासना विधि भी बतलाई, और दिनचर्या समय विभाग सहित लिखा दी, जिस पर महाराणा जी ने वर्ताव करना आरम्भ कर दिया। इसके सिवा राजाओं को जो ऐब लग जाते हैं उनके विपरीत स्वामीजी ने महाराणा को उपदेश दिया। परस्त्री गमन (रण्डीबाजी) से पूर्ण घृणा करा दी, बहुत विवाहों की बुराइयां बतला दीं, अधिकतर स्त्री भोग की बुराई को भली भांति समझा दिया। जिससे महाराणा जी को बड़ा लाभ हुआ। स्वामी जी आप अपने पत्र में लिखते हैं कि--

"महाराणा जी ने सत्संग किया वह केवल श्रवण मात्र ही नहीं किन्तु उसका अधिष्ठान और मनन भी उन्होंने किया" सो महाराणा जी ने केवल दिनचर्या के उपदेश पर चलकर अपने जीवन को नियमानुसार ही नहीं बनाया, वरञ्च वेश्यादि के दर्शन को भी छोड़ दिया। स्वामी जी महाराज की महाराणा सज्जनसिंह के विषय में जो सम्मति हो गई थी, वह निम्नलिखित संक्षेप से प्रकट होती है, जो उनकी एक चिट्ठी से लिया गया है "जैसे श्रीमान् आर्यकुल दिवाकर, सुशीलता, शीलता, कृतज्ञता, सभ्यता, प्रसन्नता, ज्ञानता आदि शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त मैंने देखे ऐसे बहुत विरले होंगे।"

महाराणा जी के सिवा अन्य बहुत से राजकर्मचारियों ने भी स्वामी जी से विद्या पढ़कर लाभ उठाया।

इस पढ़ने पढ़ाने के सिवा स्वामी जी ने एक महायज्ञ कराया जो नीलकण्ठ के मन्दिर के समीप कई दिन तक होता रहा। चारों वेदों के पाठक यज्ञ में विद्यमान थे। होत्री आदि सब नियमानुकूल नियत किये गये। वसन्त पञ्चमी के दिन महाराणा जी भी पधारे। पूर्णाहुति उन्हीं के हाथ से कराई गई और यज्ञ शेष बांटा गया। इसके अनन्तर महाराणा जी ने महलों में नित्य अग्निहोत्र की

कि आर्य रुधिर और महत्वता का बीज देश से उठ गया। हमारे पाठकगणों को विदित होगा कि स१ १८८१ के नवम्बर में पहिले पहिल स्वामी दयानन्द का मिलाप महाराणा सज्जनसिंह से हुआ था। उस समय दो चार बार ही महाराणा जी स्वामी जी से मिल सके, यद्यपि सत्य का बीज तो उसी समय बोया गया था परन्तु उस बीज को जल देने की आवश्यकता थी। उस समय भी महाराणा जी की यह अभिलाषा थी कि स्वामी जी उनके साथ राजधानी में चलें परन्तु स्वामी जी ने महाराणा जी की इस प्रार्थना को स्वीकार न किया, और फिर आने का प्रण करके बम्बई की ओर चले गये। चुनांचि उसी प्रणानुसार बम्बई से चित्तौड़ गढ़ पधारे। महाराणा ने चित्तौड़ गढ़ के हाकिम को आज्ञा पत्र लिख दिया था। जिससे उसने पहले ही यथोचित् प्रबन्ध कर दिया। स्वामी जी स्वामी आत्मानन्द, ब्रह्मचारी रामानन्द, और पण्डित भीमसेन जी के सहित ११ अगस्त को उदयपुर में पधारे और नौलक्खा बाग में राजधानी के प्रबन्धानुसार उतरे।

कुछ दिन के सत्संग से ही महाराणा ऐसे श्रद्धालु हुए कि नित्य प्रति प्रातः और सायंकाल स्वामी जी के दर्शन को आते। प्राय उनके साथ प्रातः भ्रमण करने जाते और सायकाल उनसे पढ़ते थे। महाराणा जी ने स्वामी जी से पतञ्जलि योग सूत्र वैशेषिक और गौतम सूत्र पढ़े। और भी कुछ शास्त्र पढ़े और कुछ सुने। मनुस्मृति के वह अध्याय जो राजनीति से सम्बन्धित हैं अपने समस्त राजपुरुषों के सहित अच्छी तरह से सुने और समझे। कुछ मनुस्मृति भी पढ़ी, कुछ व्याकरण भी अध्ययन किया और महाभारत का वनादि भी देखा। सार यह है कि सात मास में जितना लाभ उठा सकते थे उठाया। स्वामी जी ने आप अपने एक पत्र में (४ मार्च सन् १८८३) यह लिखा है कि राव जी दरबार से उठकर नित्य तीन चार या पांच घण्टे मेरे पास बैठ प्रेम पूर्वक सद् ग्रहण किया करते थे। छः शास्त्रों का मुख्य २ विषय, मनुस्मृति के राजधर्म विषयक तीनों अध्याय और विदुर प्रजागर आदि

के उपदेश के योग्य श्लोक, थोड़ा सा व्याकरण का विषय और कुछ अन्वय रीति भी श्रीमान् ने मुझ से पढ़ी।"

पढ़ाने के सिवा स्वामी जी ने महाराणा को उपासना विधि भी बतलाई, और दिनचर्या समय विभाग सहित लिख दी, जिस पर महाराणा जी ने वर्ताव करना आरम्भ कर दिया। इसके सिवा राजाओं को जो ऐब लग जाते हैं उनके विपरीत स्वामीजी ने महाराणा को उपदेश दिया। परस्त्री गमन (रण्डीबाजी) से पूर्ण घृणा करा दी, बहुत विवाहों की बुराइयां बतला दीं, अधिकतर स्त्री भोग की बुराई को भली भांति समझा दिया। जिससे महाराणा जी को बड़ा लाभ हुआ। स्वामी जी आप अपने पत्र में लिखते हैं कि--

"महाराणा जी ने सत्संग किया वह केवल श्रवण मात्र ही नहीं किन्तु उसका अविष्ठापन और मनन भी उन्होंने किया" सो महाराणा जी ने केवल दिनचर्या के उपदेश पर चलकर अपने जीवन को नियमानुसार ही नहीं बनाया, वरञ्च वेश्यादि के दर्शन को भी छोड़ दिया। स्वामी जी महाराज की महाराणा सज्जनसिंह के विषय में जो सम्मति हो गई थी, वह निम्नलिखित संक्षेप से प्रकट होती है, जो उनकी एक चिट्ठी से लिया गया है "जैसे श्रीमान् आर्यकुल दिवाकर, सुशीलता, शीलता, कृतज्ञता, सभ्यता, प्रसन्नता, ज्ञानता आदि शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त मैंने देखे ऐसे बहुत विरले होंगे।"

महाराणा जी के सिवा अन्य बहुत से राजकर्मचारियों ने भी स्वामी जी से विद्या पढ़कर लाभ उठाया।

इस पढ़ने पढ़ाने के सिवा स्वामी जी ने एक महायज्ञ कराया जो नीलकण्ठ के मन्दिर के समीप कई दिन तक होता रहा। चारों वेदों के पाठक यज्ञ में विद्यमान थे। होली आदि सब नियमानुकूल नियत किये गये। वसन्त पञ्चमी के दिन महाराणा जी भी पधारे। पूर्णाहुति उन्हीं के हाथ से कराई गई और यज्ञ शेष बांटा गया। इसके अनन्तर महाराणा जी ने महलों में नित्य अग्निहोत्र की

आज्ञा दी और हवन के पीछे हवन कुण्ड (तांबे का कुण्ड) सारे महलों में फिराया जाता था।

स्वामी जी जैसे आप बाल जितेन्द्री थे और वीर्य रक्षा का बड़ा ध्यान रखते थे वैसे ही उनको इस बात का बड़ा विचार था कि वीर्य रक्षा का प्रचार देश में भली भांति फैला दिया जावे, इसलिये जहां जाते थे इस विषय में अवश्य उपदेश देते थे। राजाओं, महाराजाओं और रईसों को तो विशेष करके बड़े जोर से वीर्य रक्षा का उपदेश देते थे। रण्डियों को कुतिया कहा करते थे और रईसों को समझाते थे कि ऐसा उत्तम रत्न जैसा कि वीर्य है, रण्डियों को प्रदान करना या व्यर्थ खोना महापाप है।

स्वामी जी के उपदेश से राज्य प्रबन्ध में देवनागरी अक्षर चलाये गये। राज्य में पठन पाठन के प्रबन्ध में भी स्वामी जी के उपदेशों का बड़ा प्रभाव हुआ। चुनांचि वहां की सरकारी पाठशालाओं का श्रेणी बंधन स्वामी जी ने अपने हाथ से किया। राज्य के अमीर और धनियों के लिये एक भिन्न शाला खोलने की युक्ति के नक्शे बनाये गये। विचार था कि इस शाला में सांसारिक, पारलौकिक और युद्ध सम्बन्धी शिक्षा दी जावे, शस्त्र विद्या भी पढ़ाई जावे और शस्त्रों की शिक्षा भी हो। परन्तु खेद! कि महाराणा सज्जनसिंह की अकाल मृत्यु ने इस विचार को पूरा न होने दिया।

महाराणाजी ने एक दिन प्रार्थना की कि आप मूर्त्ति पूजन का खण्डन छोड़ दें। इस राज्य का देवता एक लिंग महादेव है जिनके नाम पर बहुत सी जागीरे हैं और इसके मन्दिर के साथ कई लाख रुपयों की आमदनी है, आप वहां के महन्त बन जावें।

पाठक महाशय आपने इतनी जीवनी स्वामी जी की पढ़ली क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि यह सुन स्वामी जी की क्या दशा हुई होगी मानों कि वज्र पात हुआ बड़े क्रोध में आये और महाराणा जी को अस्तव्यस्त कहने लगे। जिस पर महाराणा जी को यह ही कहना

पड़ा, कि मैं तो केवल आपकी परीक्षा करता था।

यहां पर स्वामी जी ने स्वीकार पत्र (वसीयत नामा) लिखा, जिसके द्वारा परोपकारिणी सभा स्थापित की गई। इस स्वीकार पत्र को दरबार में महाराणा जी से स्वीकार कराया और उसके साथ ही परोपकारिणी सभा का उद्देश्य पूर्ण करने को एक वैदिक निधि जारी किया।

पं० मोहनलाल विष्णुलाल जी पाण्ड्या लिखते हैं कि 'स्वामी जी के उपदेश से महाराणा जी ने अपना जीवन सुधार लिया" खेद! कि देश और राज्य के मंदभाग्य से महाराणा जी भी इस जीवन के नये परिवर्तन से कुछ काल लाभ न उठा सके। २४ दिसम्बर १८८४ को स्वामी जी की मृत्यु से १ वर्ष दो मास के भीतर ही शरीर त्याग गये, आर्यसमाजों को सदैव के लिये विछोड़ गये।

चलते समय महाराणा जी ने अपने हाथ से धन्यवाद पत्र लिख, स्वामी जी को भेंट किया। उक्त पत्र में महाराणा जी ने उस शिक्षा व उपदेश का बहुत धन्यवाद किया जो स्वामी जी से उनको प्राप्त हुई थी और लिखा कि यद्यपि आप से भिन्न रहने को मन नहीं चाहता परन्तु आपका शरीर परोपकार के लिये है, इसलिये आशा है कि फिर पधार कर कृतार्थ करेंगे। ६००) रु० फिरोजपुर अनाथालय के लिये प्रदान किये और २०००) रु० वेद भाष्य की सहायता के अर्थ दिये तथा स्वामी जी के साथियों का भी यथायोग्य आदर सत्कार किया। स्वामी जी १ मार्च सं० १८८३ ई० तक उदयपुर में रहे।

शाहपुरा (राजपूताना) में राजाजी को पढ़ाना और उपदेश देना।

स्वामी जी पहली मार्च सं० १८८३ ई० को उदयपुर से चलकर चित्तौड़ की राह ६ मार्च को शाहपुरा में पहुंचे। उसी दिन महाराजा जी दर्शन के लिये और दो घण्टे तक वार्त्तालाप करते रहे। इसी प्रकार ५ दिन तक नित्य आते रहे, फिर यह नियम कर लिया कि नित्य ३ बजे सायंकाल आते और ६ बजे तक वहीं रहते। इसी समय में उपदेश लेते और पढ़ भी लेते। राजा जी ने स्वामी जी से मनुस्मृति, योग

सूत्र और कुछ वैशेषिक सूत्र भी पढ़े। प्राणायाम की विधि भी उनसे सीखी। यहां पर स्वामी जी ने ईश्वरानन्द को संन्यास देकर प्रयाग राज में विद्या पढ़ने के लिये भेज दिया।

महाराजाधिराज शाहपुरा को स्वामी जी के सत्संग से बड़ा लाभ हुआ। आप में धर्मोत्साह बहुत अच्छा है। स्वामी जी से मिलने के पीछे भी निरन्तर धर्म प्रचार में प्रेम प्रगट करते रहे हैं। यहां स्वामीजी महाराज २६ मार्च तक रहे, क्योंकि महाराज जोधपुर को स्वामी जी के दर्शनों की इतनी लगन लगी थी कि उन्होंने अपने कर्मचारी स्वामी जी के लाने के लिये भेजे।

शाहपुराधीश ने चलते समय २५०) रु० वेद भाष्य की सहायता के लिये और ३०) मासिक उपदेशक मण्डली के लिये देने स्वीकार किये। इसके सिवा चलते समय अपने हाथ का धन्यवाद पत्र दिया, जिसका आशय यह था कि "चाहे आपके उपदेशों से मेरी आत्मा अभी तृप्त नहीं हुई, परन्तु क्योंकि महाराज जोधपुर आपके दर्शनाभिलाषी हैं और आप से क्रोड़ों मनुष्यों को लाभ पहुंचता है। इसलिये मैं अधिक ठहराने का हठ नहीं करता, आशा है कि आप फिर अपने शुभागमन से मुझे कृतकृत्य करेंगे।

जोधपुर में धर्मोपदेश और व्याधि

स्वामी जी जब शाहपुरा में विराजते थे कि वैशाख वदि १० सं० १९४० को जोधपुराधीश जसवन्तसिंह महाराज के भाई महाराजा प्रतापसिंह का पत्र आया, जिसमें यह प्रार्थना की थी कि आप जोधपुर में पधार कर धर्मोपदेश करें।

जोधपुर राठौर वंश के राजपूतों की राजधानी है, भारतके इतिहास का एक भाग उनकी शूरवीरता के कार्यों से परिपूरित है, राठौरों के वंश में चिरकाल से राज्य चला आता है। और क्या जानें सारे भारत में राठौरों के समान एक दो ही घराने हों जो ऐसे प्राचीन निरन्तर राज्य का दावा कर सकते हों। एक समय था कि राठौर कनौज के राजसिंहासन पर विराजमान् थे, और उनका राजा सारे आर्यावर्त के महाराजाधिराज के पद से सुशोभित था। आर्यावर्त के समस्त राजे

महाराजे उनको कर देते थे, कई पश्चिमी महाराजे भी इनका सिक्का मानते थे, और कनौज के राजाओं के वंश में सम्बन्ध करने को अपनी बड़ी प्रतिष्ठा समझते थे।

फिर वह समय आया कि कनौज और देहली को राठोरों और चौहानों की ईर्षा ने विनाश कर हिन्दुओं के बल, प्रताप व ऐश्वर्य को, और बड़ाई व राज्य को फूंक कर धूलि में मिला दिया। यह वही ईर्षा की अग्नि थी जिसने मुहम्मदगोरी को देहली के सिंह चौहानों पर धावा करने का साहस प्रदान किया। यह वही ईर्षाग्नि थी कि जिसने देहली की राजपूती ध्वजा को भस्म करके सारे भारत में अग्निदाह मचा दिया। और इसी अग्नि से अन्त में कनौज को भस्म होना पड़ा। इस प्रज्वलित महा अग्निपुंज ने न देहली को छोड़ा न अजमेर को और न ही कनौज को। राठौर कन्नौज से निकलकर मरु भूमि में आ बसे, और उसदिन से आजतक निरन्तर मारवाड़ राठोड़ोंके आधीन है। जोधपुर मारवाड़ की राजधानी है, जो कि एक बड़ा दर्शनीय नगर है। देर तक तो किसी मुसलमान बादशाह को मारवाड़ की ओर देखने का भी साहस न हुआ। सबसे पहिले बड़ा भारी संग्राम हुमायूं के विजेता शेरशाह अफगान का राठौरों से हुआ। मुसलमानों को ऐसे प्रबल शत्रुओं से सामना कभी नहीं करना पड़ा था और उसके भाग्य का ही प्रताप था कि शेरशाह राठौरों के पञ्जे से निकल गया, अन्यथा मुसलमानी राज्य की क्या जानें समाप्ति ही हो गई होती। इस धावे के वर्णन की तुलना इस बात से हो सकती है कि शेरशाह ने इस विपद से छूटकर यह कहा कि 'मैंने जौं की मुट्ठी के लोभ में भारत का राज्य ही खो दिया था" (मारवाड़ में प्रायः जौं अधिक उत्पन्न होते हैं, और अन्य अनाज बहुत थोड़ा उपजता है) यह प्रदेश प्रायः जंगल, बञ्जर और मैदान है, यहां कोसों तक जल का नाम नहीं, तो भी जोधपुर की राजधानी बहुत बड़ी राजधानी है, इसके आधीन बड़ा प्रदेश है। बीकानेर, रतलाम और कृष्णगढ़ आदि सब जोधपुर के बड़े राज घराने की शाखा हैं। सं० १९४० में महाराजा जसवन्तसिंह जी जोधपुर की राज गद्दी पर विराजते थे। महाराजा ने एक रण्डी

रक्खी हुई थी, इसने महाराज को बड़ा अधीन किया हुआ था, यहां तक कि राज्य प्रबन्ध में भी उसका दखल था। एक मनुष्य वजीर उल्लाखां महामन्त्री था। और सारे राज्य में मुसलमानों का ही जोर था। महाराज के भाई बन्द बहुत बुरी अवस्था में थे और इनको कोई नहीं पूछता था, प्रजा दुखित थी, जो चाहता था जिसको लूट लेता था, न्याय का नाम न था राजपूतों को कोई नहीं पूछता था। रास्ते डाकुओं और चोरों ने बन्द कर रक्खे थे। चारों ओर लूटमार होती थी। परन्तु इस पर भी महाराजा जी का चित्त धर्म और दानशीलता की रेखा से शून्य नहीं था। दान के लिये तो महाराजा जसवन्तसिंह जी बड़े प्रसिद्ध थे। धर्म के नाम पर कानफटे जोगियों फकीरों और ब्राह्मणों का जोर था। सार यह है कि यह अवस्था थी कि जब राजा प्रतापसिंह और राव राजा तेजसिंह की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द जी शाहपुरा से जोधपुर की ओर पधारे तो लोगों ने बहुतेरा जोधपुर की दुर्दशा दर्शाकर वहां के जाने से रोकना चाहा परन्तु वह सिंह कब डरता था उसने एक न मानी और सीधा जोधपुर को चल पड़ा। अभी जोधपुर की रेल पूरी नहीं बनी थी। २७ मई १८८३ ई० ज्येष्ठ वदि सं० १९४० को स्वामी जी पाली के स्टेशन पर पहुंचे। वहां पहले ही राजधानी की ओर से हाथी, घोड़े, ऊंट, और गाड़ियों का प्रबन्ध था। यहां से सवार होकर २९ मई को स्वामी जी महाराज जोधपुर आ विराजमान हुए। राजधानी की ओर के एक राज कंवर स्वागत के लिये आये और अतीव मान प्रतिष्ठा से स्वामी जी को भय्या फैजूल्लाखान के बंगले में उतारा, वहां स्वामी जी के पहुंचते ही महाराज प्रतापसिंह व राव राजा तेजसिंह जी उनके दर्शनार्थ पधारे और सब आवश्यक प्रबन्ध कर गये।

महाराजा जसवन्तसिंह जी जिन्होंने नन्ही जान को निज प्राण बनाया हुआ था, यह भूल गये थे कि धर्ममर्यादा में संन्यासियों और योगियों का पद महाराजा से बहुत उच्च होता है। जब राजाओं पर भीड़ पड़ती है तो संन्यासियों को बुलाते हैं उनके

दर्शनों को जाते हैं और बड़ी प्रतिष्ठा पूर्वक उपदेश ग्रहण कर उनके सत्संग से लाभ उठाते हैं। उन्होंने क्या जाने यह विचार कर कि साधारण साधुओं और योगियों की भांति स्वामी दयानन्द जी भी महाराजा के दान के भूखे और उनकी केवल प्रसन्नता के अभिलाषी होंगे, और इतने में ही अपनी प्रतिष्ठा समझेंगे कि जो महाराजा की ओर से इतना मान सत्कार किया गया है। सार यह है कि इसी प्रतीक्षा में १६ दिन व्यतीत हो गये, न तो महाराजा जी स्वामी जी के दर्शनों को आये और न ही स्वामी जी ने वहां जाना उचित समझा, वह आप पहले राजा जी के घर जाकर अपने संन्यास को कलंकित क्यों करते। अन्त को या तो आर्य रुधिर ने जोश किया और या यह समझें कि महाराजा जी के धर्मभाव ने प्रेरणा की, जिससे वह आप स्वामी जी के दर्शनार्थ पधारे। या महाराजा प्रतापसिंह जी प्रभृति की निरन्तर प्रेरणा ने अपना प्रभाव डाला, और उन्होंने आप स्वामी जी के आसन पर जाना स्वीकार किया। सत्य यह है कि १७वें दिन महाराजा जसवन्त सिंह जी स्वामी जी के दर्शनार्थ आये और जब आये तो ठीक उसी रीति से पधारे जो कि उनके घराने और महाराजाओं के योग्य थी।

महाराजा आये और आते ही भेंट चढ़ा भूमि पर बैठने लगे। स्वामी जी कुर्सी पर विराजते थे, उन्होंने महाराजा जी को कुर्सी पर बैठने के लिये कहा। जिस पर महाराज जसवन्तसिंह जी ने अतीव नम्रता से यह कहा, कि आपके सन्मुख हमको कुर्सी पर बैठना उचित नहीं है। अन्त को स्वामी जी ने अपने हाथ से पकड़कर उनको कुर्सी पर बिठा दिया। और तीन घण्टे मनुस्मृति का उपदेश देते रहे, जिससे महाराजा अतीव प्रसन्न हुए और जाते समय आम व्याख्यान देने की आज्ञा दे गये। उपदेशों की निरन्तर वर्षा से उस मरुभूमि में जहां कभी वर्षा नहीं हुई थी मानों जल थल हो गया। समस्त स्वार्थी, फरेबियों, दम्भियों और बदमाशों की छातियें फट गईं हाहाकार करने लगे। ब्राह्मण,

योगी, नाथ, मुसलमान सब चकराने लगे और भांति २ के मनसूबे बांधने लगे। महामन्त्री फैजुल्लाखां तो इतने जोश में आ गये, कि अपने अधिकार और नन्ही जान की पुष्टि के अभिमान से एक दिन वार्तालाप में स्वामी । से कहने लगे, कि यदि 'मुसलमानों का राज्य होता तो तुमको मार डालते" स्वामी जी ने अतीव सावधानी से कहा कि "मैं भी उस समय ऐसी ही कार्यवाही करता, दो राजपूतों को तुम्हारे पीछे लगा देता।" सार यह है कि स्वामी जी के विरुद्ध रचना घड़ी जा रहीं थीं कि दैवात् एक दिन जब स्वामी ी म ।राजा ी के पास आ रहे थे, तो नन्ही जान भी वहीं बैठी हुई थी। महाराजा साहिब ने स्वामी जी के आगमन की खबर पा, साथियों को इशारा किया कि इसको यहां से ले जाओ। जब उसको चौपाल में बैठा कर उठाने लगे तो एक ओर चौपाल झुक गया, महाराजा जी ने आप अपने हाथ का सहारा दिया। इतने में स्वामी जी आ पहुंचे और यह सब कार्यवाही देख ली। राठौरों के सरदार, महाराजा कनौज के प्रतिनिधि, महाराज प्रतापसिंह, अजीतसिंह, जसवन्तसिंह आदि प्रसिद्ध राजाओं की राजगद्दी पर विराजमान सिंह वीर की इस दुर्गति को देख अतीव भृकुटी चढ़ाकर स्वामीजी कहने लगे कि "हा खेद सिंह की ध्वजा पर कुतिया का इतना जोर, ऐसे समागम से कुत्ते उत्पन्न न हों तो और क्या हों।"

महाराजा जी पर जो प्रभाव पड़ा होगा सो पड़ा होगा, परन्तु नन्हीजान को जब विदित हुआ तो वह बड़ी भटकी और बदला लेने को विचारने लगी। उसने और उसके अन्य सहायकों ने सोचा, कि यह साधु क्या आया है यह तो कोई बला आ गई है। जिसको न महाराज का भय है और न नन्हीजान का डर है, न जीवन की परवाह है और न मृत्यु से भय है। सार यह है कि जब इन स्वार्थियों ने अपने चिरस्थित बल को उखड़ते देखा, तो सब मिल गये और बुराई की युक्तियें सोचने लगे।

जिन दिनों में स्वामी जी जोधपुर में पधारे थे, उन दिनों में वहां मदिरा पीने और (रंडीबाजी) व्यभिचार का बड़ा जोर था प्रायः राजकुमार कंचनियों के आधीन हो मदिरा में उन्मत्त रहते थे। राजधानी की अवस्था उपर वर्णन की गई है। स्वामी जी ने इस बुरी अवस्था की निवृत्ति के लिये बहुत यत्न किये, जुबानी उपदेश तो प्रत्येक को देते ही थे परन्तु राजा महाराजाओं को एकान्त में भी समझाते थे। उन्हीं दिनों में स्वामी जी ने महाराज प्रताप सिंह जी को निम्न लिखित पत्र लिखा, जिससे प्रकट होता है कि योगी दयानन्द को एक आर्य राजधानी की दुर्गति देख कैसा क्लेश होता था।

श्रीयुत मान्यवर्य शूरवीर महाराजा प्रतापसिंह जी सदा आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा जी (रावराजा तेजसिंह) महाराज को भी दृष्टि-गोचर करा दीजियेगा।

मुझको इस बात से बड़ा शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस आदि में वर्तमान आप और बाबा साहिब दोनों रोग युक्त शरीर वाले हैं। अब कहें, कि इस राज्य का जिसमें १६ लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं उनकी रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं, सुधार और बिगाड़ भी आप ही दोनों महाशयों पर निर्भर है, तथापि आप लोग अपने शरीर की आरोग्यता और संरक्षण तथा आयु वृद्धि कारक कामों पर बहुत थोड़ा ध्यान देते हैं, यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझसे श्रवण कर सुधार लेवें, जिससे मारवाड़ ही क्या वरं अपने आर्यावर्त देश मात्र का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य मनुष्य जगत् में बहुत थोड़े उत्पन्न होते हैं, और जन्म लेकर भी बहुत थोड़े चिरंजीवी होते हैं, इसके हुए बिना देश का सुधार कभी नहीं होता। उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवें उतनी ही देश की उन्नति होती है। इस पर आप लोगों को अवश्य ध्यान देना चाहिये, आगे जैसी आप लोगों की इच्छा हो वैसा कीजिये।"

दयानन्द सरस्वती—जोधपुर मिति आश्विन वदि ३
शनिवार सं० १९४० वि० (२२ सितम्बर १८८३ ई०)

नोट—आज इस पत्र को लिखे हुए १५ वर्ष व्यतीत हो गये, और इतने समय में जोधपुर राज्य में जो २ कुछ उन्नति हुई और महाराज प्रतापसिंह जी ने अपने प्रबन्ध, अपनी हृदय की शुद्धता और वीरता से जो नाम पाया, उसको देखकर हम यह कह सकते हैं कि महाराजा जी को स्वामी दयानन्द जी के उपदेशों का अत्यधिक फल हुआ। महाराज प्रतापसिंह को जो भक्ति और प्रेम आर्यसमाज से है उससे प्रकट होता है कि महाराज प्रतापसिंह जी का स्वामी जी के उपदेशों से क्या लाभ हुआ। समस्त भारतवर्ष में एक भी राज पुरुष उस यश और कान्ति का दावा नहीं कर सकता। जो महाराज प्रतापसिंह को प्राप्त है और हम निसंदेह यह कह सकते हैं कि यह सब स्वामी दयानन्द जी के उपदेश का फल है। आजकल जोधपुर की राजधानी बहुत उन्नति पर है, बहुत से राजकुमारों ने अपना आचार सुधार कर वेश्यागमन के स्थान शस्त्र विद्या को धारण किया है और बहुत से वीरता के कर्तव्यों में नाम पाया है।

इधर तो स्वामी जी दिन रात इस विचार में मग्न थे, और उधर स्वार्थी अपनी सांठ गांठ रहे थे, इस चिट्ठी को लिखे १२ दिन भी नहीं हुए थे कि भारत के मन्द भाग्य से श्रावण वदि चतुर्दशी सं० १९४० (२९ सि० १८८३) की रात्रि भी आ गई, कुछ प्रतिश्याय तो पहले से ही हो रहा था, रात्रि को नियमाकूल दूध पीकर सो गये, जब कुछ रात्रि व्यतीत हुई तो उदर पीड़ा ने आ घेरा और चित्त मितलाने लगा। तीन वमन हुए। परन्तु उस सिंह पुरुष ने किसी के आराम में विघ्न न डाला, और साधारण सा क्लेश समझ चूली कर-फिर लेट गए। प्रातः काल नियम विरुद्ध अतिकाल करके उठे, उठते ही फिर वमन हुआ, द्वितीय वेर आर वमन किया। परन्तु फिर भी शांति न हुई, मन उछलता था, कोठा में कुछ सुगन्धित पदार्थ जलाए

गये, स्वामी जी ने अपनी युक्ति से एक अजमोदा आदि औषधियों का क्वाथ बनाकर पी लिया, परन्तु पीड़ा में तनिक भी आराम न हुआ वरं अधिक ही होती गई। अन्त को डाक्टर सुर्य्यमल को बुलाया गया, जिन्होंने वमन रोकने की औषधि दी और साथ ही तृषा शान्ति का उपाय किया, परन्तु इसमें भी पीड़ा शान्ति न हुई, श्वांस लेने के साथ बड़ी पीड़ा होती थी, खांसी का भी जोर हो गया। ३० सितम्बर ४बजे सायंकाल महाराज प्रतापसिंह जी को खबर मिली उन्होंने तत्काल डाक्टर अलीमर्दान खां को इनकी औषधि के लिए नियत किया। जिसने उदर पर पट्टी बंधवाई,। २य, दिन १ अक्तूबर को डाक्टर साहिब ने प्लास लगाया। जिस से खांसी को तो कुछ आराम हुआ परन्तु उदर पीड़ा को तो कुछ भी फायदा न हुआ। २ अक्तूबर को भी डाक्टर जी का उपाय किया गया। डाक्टर जी ने कुछ गोलियें दीं और अगले दिन जुलाब दिया परन्तु ९ बजे रात्रि तक दस्त न आया। रात्रि के १० बजे दस्त आने लगे और सारी रात्रि दस्त आते ही रहे और ३० के लगभग आ गये। दूसरे दिन सारा दिन दस्त आते रहे और शरीर इतना निर्बल हो गया कि हर एक दस्त के साथ बेसुधी होने लगी। ५ अक्तूबर को भी अतिसार आते रहे, श्वांस इतना बढ़ गया कि हिच-कियें आने लगीं। १५ अक्तूबर तक निरन्तर यही दशा रही, १०-१५ अतिसार नित्य आते थे,मुख कण्ठ जिव्हा सिर और माथे पर छाले पड़ गये न हिचकियें बन्द हुयीं और न पीड़ा दूर हुई और न दस्त बन्द वरंच निर्बलता बहुत बढ़ गई। १५अक्तूबर को महाराजा जी की आज्ञा से डाक्टर एडम साहब इलाज के लिए नियत किये गये। क्योंकि जीवन की निराशा प्रतीत होने लग गयी थी। स्वामी जी ने कई एक आर्य पुरुषों की सम्मति से जोधपुर से चले जाने का निश्चय किया और महाराजा जी को इस विचार की सूचना दी। महाराज आप आये और बहुतेरा कहा कि इस अवस्था में मेरे राज्य से जाने से मेरी बड़ी बद-नामी (अपवाद) है। परन्तु स्वामी जी के हठ करने से अन्त को मान लिया। और १६ अक्तूबर जाने की तिथि नियत हुई। उसी समय

२५०० ढाई सहस्र रुपया और दो दुशाले भेंट किये। १६ अक्तूबर को तीसरे पहर महाराजा प्रतापसिंह जी और जसवन्त सिंह जी भी पधारे एक पालकी स्वामी जी के लिए तैयार कराई गई। दो खसखसी खैमे और सिपाही आदि भी भेज दिये और प्राबू की तैयारी हो गई। इस समय जो अवस्था राजा जसवन्त सिंह जी की थी, उसका चित्र खींचना कठिन है। अन्त को उच्च घराने के राजपूत थे, अपने राज्य में आये हुए इस प्रसिद्ध संन्यासी के इस क्लेश को देख बड़े क्लेशित हुए। नेक-नामी व बदनामी का जो विचार राजपूत वंश को होता है वह शायद ही दुनियां के किसी वंश में होता हो। बदनामी (अपवाद) के विचार से राजपूतों ने लाखों स्त्रियों का वध किया, अग्नि में जला दीं, अपनी बहू वेटियों और भगिनियों को खड्ग से काट दिया, अपने आप को अपने भाई बन्धुओं, सम्बन्धियों को धूल में मिला दिया, परन्तु निन्दा न होने दी। महाराजा जसवन्त सिंह १६ अक्तूबर सं० १८८३ को समझ रहे थे कि मानो पृथ्वी उनके पांव के नीचे से निकल रही है। अपने बुलाने से एक जगत् प्रसिद्ध सबका प्यारा उनके राज्य में उपदेश करने आया और वहां से असाध्य रोग में फंस कर जीवन से हाथ धोकर गया। परन्तु ऐसी दशा में रोकना भी उचित नहीं समझते थे, लाचार चलते समय अपनी श्रद्धा और भक्ति को इस प्रकार प्रकट किया, कि अपने हाथ से अपनी पेटी स्वामी जी को बांधी जिससे उनके लेटने में कष्ट न हो। आप अपने साथ उठवा कर उनको नीचे लाये, अपने सन्मुख पालकी में चढ़वाया पांव से चलकर पालकी के साथ-साथ बाग के बाहर ले दरवाजे तक आये और स्वामी जी को विदा करते समय भी बड़े क्लेश से यह कहा, कि इस अवस्था में आपका पधारना मेरे लिए कलंक का कारण है। डाक्टर सूर्य्यमल आज्ञानुसार साथ था। गरमी का जोर था इसलिए पंखा झोलने वाला साथ किया। चाहे रात्रि की यात्रा थी, और पंखा होता जाता था, सिर पर भीगा हुआ वस्त्र भी धरा था, परन्तु तो भी चैन न थी॥

खारची के स्थान पर एक सभासद अजमेर समाज का एक यूनानी

हकीम की औषधि लेकर आया, जिससे कुछ थोड़ासा आराम हुआ परन्तु अधिक आराम न हुआ, खारची से स्वामी जी ने रामानन्द विद्यार्थी को ६ रुपये देकर रवाना कर दिया कि अब हम नहीं पढ़ा सकते, काशी जा कर पढ़ो। २१ अक्तूबर को स्वामी जी आबू रोड से चल आबू जा पहुंचे। मार्ग में डाक्टर लक्ष्मणदास अजमेर को जाते हुए मिले। चाहे वह सरकारी आज्ञा से अजमेर जा रहे थे, तो भी स्वामी जी की इस दशा को देख कर इनके साथ हो लिए। और आबू में दो दिन इनकी औषधि की। डाक्टर लक्ष्मणदास की औषधि से इनको कुछ लाभ होने लगा था कि हमारी देश के मन्दे भाग्य से (गुलामी) परतन्त्रता ने हमारी रही सही आशा को धूल में मिला दिया, डाक्टर लक्ष्मणदास सरकारी नौकर थे और उनको अजमेर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी। [illegible] श प्रेम से आबू को लौट आये थे, जब वहां पहुंचकर उनके अफसर को विदित हुआ, तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और इनको शीघ्र ही अपने स्थान पर जाने का हुकम दिया। दिल चले पंजाबी मुंहयाल ने तत्काल इस्तीफा लिख कर भेज दिया परन्तु इतनी शीघ्रता से इस्तीफा भी कब स्वीकार होता था। अफसर ने इस्तीफा न मन्जूर किया और डाक्टर जी अपने वंश के शिरोमणि धर्म के रक्षक, संस्कृत विद्या में सूर्य्य, भारत के सच्चे पवित्र स्वामी दयानन्द को उसी व्याधि पीड़ित अवस्था में छोड़ कर, नेत्रों से जल भरे हुए अपनी नौकरी पर धिक्कार करते हुए अजमेर को चल पड़े। रास्ते में कई भद्र आर्य सज्जन मिले, जो स्वामी जी की बीमारी सुन कर उनकी सुध लेने को आ रहे थे। दुःखित लक्ष्मणदास ने मानो रुदन कर उनको सारा हाल सुनाया, और इनसे प्रार्थना की कि स्वामी जी को जैसे हो सके अजमेर में ले आवें। इधर महाराज जसवन्त सिंह को बड़ी बेचैनी थी उनका विचार था कि यदि इसी व्याधि से स्वामी जी का देह पात हो गया तो यह जोधपुराधीशों की वंश के लिए सदैव का कलंक रहेगा। दो तीन बार डाक्टर ऐडम साहब और बाबू गुरुचरण दास असिस्टैंट सरजन को देखने के लिए

भेजा। २६ अक्तूबर को महाराज प्रतापसिंह जी भी सुख पूछने आए और खबर लेकर चले गये। अन्त को २६ अक्तूबर को स्वामी जी आबू से चलकर २७ की प्रातः को अजमेर में पहुंच गए ॥

स्वामी दयानन्द की मृत्यु ३० अक्तूबर १८८३ ई०

पाठक गण ! हमने आपको स्वामी दयानन्द जी के जन्म का हाल सुनाया, उनके बालकपन की अवस्था दिखलाई, उनके संन्यास के आरम्भ का समय दरसाया विद्याग्रहण का वर्णन सुनाया और विरजानन्द से शिक्षा पाकर स्वामी दयानन्द ने किस प्रकार उस प्रतिज्ञा का पालन किया, जो उसने विद्या समाप्ति के अनन्तर अपने गुरु से गुरुदक्षा की रीति पर की थी। किस प्रकार वह सिंह पुरुष प्राणों के भय को छोड़ कर जीवन और मृत्यु से बे परवाह (निर्भय) हो अपने उच्च मंतव्य (मिशन) को पूरा करता रहा। किस प्रकार उसके शक्तिमान वाक्यों से राजा महाराजा और रईस तथा सर्वसाधारण को लाभ प्राप्त हुआ। किस प्रकार उसकी विद्या के सन्मुख भारत के पाखण्ड चकनाचूर हो गये। किस प्रकार उसने सकड़ों शत्रुओं को मित्र बनाकर अपने अनुयायी बना लिया और किस प्रकार वह अपने देश के और धर्म के शत्रुओं को लताड़ता रहा। हमने उनकी ६० वर्ष कीअवस्था का काम विस्तर वर्णन कथा के रूप में सुना दिया और १९सवीं शताब्दी के महर्षि का महा कार्य दिखला दिया है। अब हम आपको यह दिखलायेंगे कि जो मनुष्य अपने जीवन में महान था, जिसने महान काम करके परोपकारी ऋषि की पदवी पाई, वह अपनी मृत्यु में भी कैसा महान था। स्वामी दयानन्द की मृत्यु का दृश्य उसके सारे जीवन की कुंजी है, वह दृश्य हमको साक्षी देता है, कि स्वामी दयानन्द कैसे उच्चपद का योगी और भक्त था, कैसा निर्लेप और विरक्त था। सारी आयु दिग्विजय करता रहा शास्त्रार्थों से धूम मचाता रहा। जहां जाता था कोलाहल मच जाता था, मानों भूकम्प आ जाता था। जिस समय देह त्याग का समय आया तो कैसे विश्वास और शांति से प्राण त्यागे, कि देखने, सुनने वाले चकित रह गये।

२६ अक्तूबर तक का हम वर्णन पहले अध्याय में लिख आये हैं, २७ वा २८ को डाक्टर लक्ष्मणदास जी की औषधि करते रहे परन्तु कुछ लाभ न हुआ और २९ अक्तूबर को सारे शरीर पर फफोले पड़ गये। जो देह सारे जीवन के ब्रह्मचर्य और बालजितेन्द्रता से सिंचा हुआ था, वह अन्त समय में अनेकानेक व्याधियों का ग्रास हुआ, उसको अन्त में नाना प्रकार के क्लेश सहने पड़े। परन्तु तो भी बाल जितेन्द्रता का बनाव दूर नहीं हुआ। २९ अक्तूबर को एक मास व्याधि पीड़ित हुए व्यतीत हो चुका था। इतने समय में सैकड़ों अतिसार आये, कई वमन भी हुए, हिचकियें भी नितान्त आती रहीं, श्वास से खेद रहा, सारे शरीर पर फफोले पड़ गये, भोजन बन्द हो गया, क्षण क्षण में बेसुधी हो जाती थी, परन्तु फिर भी इतनी निर्बलता होने पर भी २९ अक्तूबर को स्वामी जी अन्तिम समय पलंग पर उठकर बैठे और कुछ देर तक बिना सहारा लिये समाधि लगाकर बैठे रहे।

३० अक्तूबर को डाक्टर न्यूटन को बुलाया गया, उस दिन कफ का अधिक जोर हो गया था, बोलने की सामर्थ्य नहीं रही थी डाक्टर साहब उनको यह दशा देखकर हैरान हुए। और कहने लगे कि इस मनुष्य में कठिनता झेलने और दुःख सहन की असाधारण सामर्थ्य है। डाक्टर जी ने तीन चार सेर दूध में अलसी पकवाकर छाती पर बंधवाई, परन्तु उससे भी कुछ लाभ न हुआ। मूत्र का रंग भी कृष्ण हो गया था। ११ बजे स्वामी जी अन्तिम समय शौच गये, अपने आप पानी लिया और शौच की, दातुन करके फिर पलंग पर लेट गये, श्वास बड़े वेग से चलता था और ऐसा जान पड़ता था कि ऋषि ईश्वर ध्यान में मग्न है।

इसी दिन ४ बजे स्वामी जी ने आत्मानन्द और गोपालगिरि को बुला और पूछा कि क्या चाहते हो? उन्होंने कहा कि ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप आरोग्य हों। इसके उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि इस शरीर का अब क्या अच्छा होना है. तुमने आनन्द से रहना। फिर अलीगढ़, मेरठ, लाहौर, कानपुर प्रभृति से आये हुए आर्य समाजियों की ओर दृष्टि की और कुछ काल तक उनकी ओर निहारते

रहे, मानो कि दृष्टि से उपदेश कर रहे थे। इसके पीछे उन्होंने आज्ञा दे दी कि अब मेरे सामने कोई न आवे। चारों ओर के द्वार खुलवा दिये, ऊपर छत के दो द्वार भी खुलवा दिये और पूछा कि कौन सा पक्ष और कौनसी तिथि है, उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष अमावस मंगलवार है। फिर वेद मन्त्र पढ़ने लगे। थोड़ी देर संस्कृत में ईश्वर स्तुति करने लगे, इसके अनन्तर भाषा में ईश्वर के गुण गाकर फिर स्वर सहित गायत्री मन्त्र पढ़ते रहे, गायत्री मन्त्र पढ़ समाधिस्थवत् कुछ काल मौन हो गये। फिर आंखे खोलकर कहा 'हे सर्व शक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो" इतना कहकर करवट ली और श्वास को रोक कर एकाएक ही निकाल दिया। दीपमाला का दिन था। कार्तिक बदि अमावस सं० १९४० वि० (३० अक्तूबर १८८३) सायंकाल के ६ बजे का समय था, जिस समय परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने प्राण त्याग कर इस शरीर को छोड़ा।

लोगों ने सूर्य के प्रकाश में असंख्य दीपक और उनके जलाने की सामग्री तेल आदि एकत्र कर सायंकाल के छः बजे सूर्य के अस्त होते ही दीपक जलाने आरम्भ कर दिये और इधर प्राचीन विद्या का सूर्य अस्त हो गया। जिस समय सारी आर्य सन्तान दीपमाला के प्रकाश में आर्य वंश के वर्द्धक श्री रामचन्द्र जी के अयोध्यापुरी में लौटने की यादगार मना रहे थे, ठीक उसी समय मानो अपने प्यारे मित्र महर्षि दयानन्द के आगमन से प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। भारत सन्तान को उस समय यह विदित नहीं था कि ठीक इसी प्रसन्नता और प्रकाश के समय उनका प्यारा मित्र, उनको समस्त वंश का भूषण, उनकी आशाओं का स्रोत, उनकी डूबती बेड़ी का (मल्लाह) रक्षक, उनकी पुरानी नौका का बादबान (पाल) उनके जहाजों का मल्लाह, उनके धर्म का सहारा, उनकी पवित्र संस्कृत भाषा का प्राड्विवाक (वकील) गौओं और विधवाओं का सहायक उनसे जुदा हो गया। स्वामी दयानन्द क्या मरा मानों भारत जननी का हृदय

फट गया !!! देर के पीछे एक सुपात्र पुत्र उत्पन्न हुआ था कि जिसने माता के दुःख अपने पर लेकर माता को शान्ति पहुंचाने का श्रम किया था, जो इस अवस्था में मानों माता का सहारा बना था, जिसने मृत्यु शय्या से माता को उठाकर उमेद के पलंग पर बिठा दिया था, जिसने माता के लिये बहुत परिश्रम और यत्न करके अमृत ढूंढा था, जिसने प्राणों से दुःखित अपने देशीय बहन भाइयों के लिये अमृत श्रोत खोल दिया था, जिसने माता और अपने माता जनित बहन-भाइयों के सुख के लिये अपने जीवन को न्यौछावर कर दिया था, जिसने कुपात्र पुत्रों को माता से हित करना सिखाया था, जो माता के नाम से दुःखित थे और उनके दर्शन करना नहीं चाहते थे उनको माता के चरणों पर ला गिराया। जो माता तथा अन्य बहन भाइयों से दुःखित हो गये थे उनके विरोध को शांत कर जिसने सम्बन्ध को स्थापित कर दिया। जिसने आर्य सन्तान को मातृभूमि के शब्द से प्यार करना सिखलाया जिसने आर्य सन्तान को मातृभाषा के अमृत पीने की प्रेरणा की, हाय वह प्यारा भाई नहीं नहीं हमारी प्रतिष्ठा व प्राणों का रखवाला हमारा धार्मिक गुरु, इतना शीघ्र हमसे छिन गया। समस्त भारत में हाहाकार मच गया !!! जिन मनुष्यों ने आयु भर उनको गालियें दी थीं, जो सारी आयु उनके रुधिर के तृषातुर थे, जिन्होंने नितान्त कभी विष से, कभी ईंट पत्थरों से, कभी तलवार और डंडे से उसकी जान पर धावें किये थे और जिन्होंने उनके जीवन में कठिन से कठिन दुर्वचन उनके नाम पर निकाले थे, उन्होंने भी इस समय शोक किया और समझा कि भारत भानु, आर्य सन्तान का प्यारा मित्र, आर्यवंश का सच्चा आचार्य, आर्य नाम को प्रतिष्ठा कराने वाला जाता रहा। जिस समय भारत में यह तार रूप से खबर फैली मानों—आर्य सन्तान की आशा पर वज्रपात हो गया। चारों ओर से हाहाकार का शब्द सुनाई देने लगा। आर्यों की प्रसन्नता शोक में बदल गई, आर्यों की हरिभरी लहलहाती खेती पर अश्रुपात से ओस पड़ गई। चारों ओर से निराशता ही निराशता दीखने

लगी। क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या बाल, क्या पुरुष और क्या स्त्री सबने इस महा शोक को अनुभव किया और हिन्दू वंश ने तो इतना शोक किया, जैसा कि समीपि सम्बन्धी की मृत्यु पर किया जाता है। हर एक स्थान पर शोक द्योतक कमेटियें की गईं। समस्त देशों के समाचार पत्रों ने शोक के वस्त्र पहरे, प्रत्येक स्थान में पहले शोक और फिर उनके काम को प्रचलित रखने के लिये जोश फैल गया।

स्वामी दयानन्द की मृत्यु को सुन, दो संन्यासी उनकी मृतक देह को लेने आये, क्योंकि यह अपने सम्प्रदाय के अनुसार उनका मृतक शरीर समाधिस्थत करना चाहते थे। परन्तु आर्य पुरुषों ने उनको देने से इन्कार किया और महाराणा सज्जनसिंह के अपने गुरु के अन्तिम दर्शन के लिये कुछ दिन मृतक देह को रखने की प्रार्थना करने पर भी आर्य मनुष्यों ने यही उचित समझा, कि उनकी देह का संस्कार कर दिया जावे। इसलिये १ तारीख को प्रातःकाल ही विधिपूर्वक स्नान आदि करवा कर, वैकुण्ठी तैयार की गई और १० बजे दिन के अर्थी को उठाया, उस समय असंख्य मनुष्य अर्थी के साथ थे। राय बहादुर पण्डित भागराम व राय बहादुर पण्डित सुन्दरलाल और अन्य कई आर्य सज्जन भी साथ थे। ४ वेदपाठी पण्डित वैकुण्ठी के आगे आगे वेदपाठ करते जाते थे। स्वामी जी की आज्ञानुकूल नगर की दक्षिण दिशा में संस्कार करने का प्रबन्ध किया गया था, वहां पहुंचकर वेदी बनाई गई, शव को सम्मुख धर पण्डित भागराम ने उस महा कष्ट दुःख वा क्लेश को प्रकट किया, जो हिन्दू जाति को स्वामी जी की मृत्यु से हुआ था। इसके अनन्तर दो मन चन्दन, १० मन पीपल काष्ठ, ४ मन घी, ५ सेर काफूर, १ सेर केशर, २ तोले कस्तूरी आदि सामग्री से संस्कार विधि के अनुसार संस्कार किया गया। क्षण मात्र में वह महान् शरीर जो ६० वर्ष तक एक महान् आत्मा का आधार रहा था जलकर भस्म हो गया।

साधारण रीति (आम तौर) पर यह कहा जाता है, कि स्वामी जी को जोधपुर में विष दी गई, पण्डित लेखराम जी लिखते हैं, कि मैंने विवेचना की और विदित हुआ, कि कांच पीस कर दूध में मिलाकर दिया गया था। परन्तु निःसन्देह उनकी मृत्यु सन्देह से खाली नहीं, अच्छा होता कि यदि अजमेर के आर्य महाशय उनके देह की परीक्षा कराकर इस सन्देह को निवृत्त कर लेते।